# जीवन्मुक्ति-विवेक

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वती

# जीवन्मुक्ति-विवेक

प्रवचन :

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री :

डॉ० लीना ग्रोवर

*प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :*

**सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट**

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालाबार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो.: 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

●

प्रथम संस्करण : 1100
23 फरवरी 2002
द्वितीय संस्करण : 1100
होली, मार्च 2012

तृतीय संस्करण : 500
जनवरी 2019



●

मूल्य : रु0 150/=

●

*मुद्रक :*
**आनन्दकानन प्रेस**
डी. 14/65, टेढ़ीनीम
वाराणसी - 221001
मो. : 9415624020

*द्वितीय संस्करण :*

## प्रकाशकीय

*पूज्य महाराजश्रीके 'आनन्द महोत्सव' पर अनेक ग्रन्थ जनता जनार्दन द्वारा खरीद लिये गये। फलस्वरूप 40 से अधिक ग्रन्थ अनुपलब्ध हो गये।*

*पुनर्प्रकाशनका कार्य* ***परमपूज्य महन्तश्री स्वामीश्री सच्चिदानन्द सरस्वतीजीके*** *निर्देशनमें द्रुत गतिसे हो रहा है। अगले 3 माहमें सभी ग्रन्थ उपलब्ध हो सकें, ऐसा प्रयास है।*

*इसी शृंखलामें प्रस्तुत ग्रन्थके द्वितीय संस्करणका प्रकाशन किया जा रहा है।*

**–सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट**

॥ ॐ ॥

# जीवन्मुक्ति विवेकके मूल श्लोक

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।
अस्तंगतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते॥1॥

नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।
यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते॥2॥

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते॥3॥

रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि।
योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते॥4॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते॥5॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयान्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥6॥

शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥7॥

यः समस्तार्थजातेषु व्यवहार्य्यपि शीतलः।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते॥8॥

●

# मंगलाचरण

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

## अनुक्रमणिका



●

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

# जीवन्मुक्ति-विवेक

## 1

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!**

अन्नका बीज होता है। खेत भी होता है। खेती करनेवाला किसान भी होता है। खाद भी होती है। पानी भी होता है। यदि किसान खेतीके लिए कोशिश न करे, तो खेत-बीज-पानी-खाद-सब कुछ वर्तमान रहने पर भी खेती नहीं हो सकती है। शरीरमें रोग है। डॉक्टर है। दवा है। यदि रोगकी निवृत्तिके लिए प्रयत्न न किया जाये, तो रोगकी निवृत्ति नहीं हो सकती है। आप खेतमें बीज बोयें-सींचें-खाद दें। अन्न पैदा होवे। यदि आप उसको काटकर घर न ले आवें, दावें नहीं, तो वह खेतमें पैदा होनेके बाद भी नष्ट हो जाता है। कोई आपके सामने थाली लाकर परस दे। उसमें अच्छा भोजन है। यदि आप भोजनको हाथसे उठाकर मुँहमें न डालें; मुँहमें डालनेपर भी उसको दाँतसे-जीभसे निगलने योग्य न बनावें; और, उसको भीतर ले जानेका प्रयास न करें, तो वह भोजन भीतर नहीं जाता है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि प्रारब्ध चाहे जितने अच्छे हों और इच्छा चाहे प्रवृत्तिकी हो अथवा निवृत्तिकी, इच्छा अपनी पूर्तिके लिए प्रयत्नकी अपेक्षा रखती है। स्वेच्छा प्रारब्ध अपने प्रयत्नसे पूर्ण होता है। परेच्छा प्रारब्धमें दूसरेका प्रयत्न होता है। अनिच्छा प्रारब्धमें प्रकृतिका-ईश्वरका प्रयत्न होता है। सूर्योदय और सूर्यास्त, पृथिवीका सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण-यह ईश्वरेच्छासे सम्पन्न हो रहा है। जब कोई हमको मार देता है, तब वहाँ उसकी इच्छा प्रयत्नवती होकर हमारे प्रारब्धको सफल करती है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि चाहे कोई कितना भी प्रारब्धवादी क्यों न हो, उसको कहीं-न-कहीं प्रयत्नका आश्रय लेना पड़ता है। चाहे स्व-प्रयत्न हो, चाहे पर-प्रयत्न हो, चाहे ईश्वर-प्रयत्न हो, प्रयत्नका आश्रय लिये बिना अभीष्ट-वस्तुकी-अभीष्ट-स्थितिकी प्राप्ति नहीं होती है। खेती भी प्रयत्नसे होती है। रोगकी निवृत्ति भी प्रयत्नसे होती है। आप अपने जीवनका कुछ लक्ष्य रखते हैं कि नहीं? आपके जीवनका कोई आध्यात्मिक उद्देश्य है कि नहीं? यदि आपको प्रवचन श्रवण करना है, तो घरसे निकलकर-चलकर सभा-मण्डपमें आना पड़ता है। सभा-मण्डपमें सावधान होकर बैठना पड़ता है। सुनी हुई एक-एक बातको समझनेमें बुद्धि लगानी पड़ती है। अपनी इष्ट-वस्तुकी प्राप्तिके लिये, चाहे वह इच्छाकी पूर्ति हो और चाहे इच्छाकी शान्ति हो-दोनोंके लिये जीवनमें प्रयत्न-साधन-उपाय करने पड़ते हैं।

अब आपको एक आगेकी बात सुनाता हूँ। मनुष्य इस हड्डी-मांस-चामके शरीरसे एक होकर-अभिनिविष्ट होकरके बैठा है। योगदर्शनकी भाषामें, हड्डी-मांस-चामके शरीरसे एक होना, जन्म-मरणसे भयभीत होना, कर्मेन्द्रियोंके द्वारा किये हुए कर्मको अपना स्वीकार करना, ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा किये हुए भोगको अपना स्वीकार करना, देहमें अभिनिवेशकी दशा है। देहमें बिलकुल डूब जानेके कारण यह होता है। शास्त्रमें '**कर्तृत्वाभिनिवेश**'-'**भोक्तृत्वाभिनिवेश**' शब्दका प्रयोग होता है। शरीरमें बैठकरके हम कर्त्ता बनते हैं। शरीरमें बैठकरके हम भोक्ता बनते हैं।

आपका यह शरीर पिण्ड है। पंजाबमें गाँवको 'पिण्ड' बोलते हैं। जब पितरोंके लिए 'पिण्ड-दान' करते हैं, तब चावल पका करके बहुतसे चावलोंका एक गोला बना लेते हैं या चरु पका करके बहुतसे चरुओंका एक गोला बना लेते हैं और गोल-गोल बना करके पितरोंके लिए पिण्ड-दान करते हैं। संस्कृत भाषामें, यह शरीर 'पिण्ड' है। बहुतसे लोग जहाँ रहते हैं, उस स्थानको पिण्ड बोलते हैं या पितरोंके लिए पिण्ड बनाया जाता है या बूँद-बूँद जलको जमाके एक बर्फका गोला बना लिया जाये, तो वह पिण्डीकृत जल होता है। इसी प्रकार, यह शरीर बना हुआ है। यह पिण्ड है।

यह कहाँ है? एक आकाशमें है। जैसे यह पिण्ड आकाशमें रहता है, वैसे ही कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड भी आकाशमें रहते हैं। पिण्डाकाश-ब्रह्माण्डाकाश। उसके बाद होता है-महाकाश, जिसमें पिण्ड और ब्रह्माण्डकी कोई गणना नहीं होती है। जब आत्मचैतन्य महाकाशसे एक होता है, तब उसकी संज्ञा 'ईश्वर' होती है। जब आत्मचैतन्यका तादात्म्य महाकाशसे छूट जाता है, तब उसकी संज्ञा 'ब्रह्म' होती है। ब्रह्म अद्वितीय है। उसमें न महाकाश है। न ब्रह्माण्डाकाश है, न पिण्डाकाश है। सब कुछ दीखता हुआ भी केवल प्रतीतिमात्र है।

आपके जीवनका लक्ष्य कहाँ है? पिण्डाकाशकी कोई अवस्था है? अथवा ब्रह्माण्डाकाशकी कोई अवस्था है? अथवा महाकाशकी कोई अवस्था है? अथवा स्वयं स्वस्वरूप चिदाकाश, जो आप यहाँ भी हैं; अभी भी हैं; और, यह सब सृष्टिके पदार्थोंके भासमान होते हुए भी हैं। अपने महाचिदाकाश स्वरूपके बारेमें जो अज्ञान-अविद्या-भ्रान्ति-आवरण है, उसको भंग करना है। यदि आप पिण्डाकाशमें धर्मनिष्ठ-भगतराज-योगीराज बनना चाहते हैं, तो उसके लिए भी प्रयत्न कीजिये। पिण्डाकाशमें ही धर्म-भक्ति-योगाभ्यास रहते हैं। यदि आप ब्रह्माण्डाकाशमें प्रवेश करना चाहते हैं, तो ब्रह्मा-विष्णु-महेश-राम-कृष्णादि देवताओंके स्वरूपको जानकर उनकी उपासना कीजिये। आप ब्रह्माण्डाकाशसे एक हो जायेंगे। ये देवता छोटे-छोटे नहीं होते हैं। ये एक-एक ब्रह्माण्डके माँ-बाप, पालक-पोषक, मारक-धारक होते हैं। ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड महाकाशमें क्षण-क्षणमें पैदा होते रहते हैं और नष्ट होते रहते हैं। चिदाकाशमें इनकी उत्पत्ति और विनाशका कोई अर्थ ही नहीं होता है।

अब हम आपके इस शारीरिक जीवनसे प्रारम्भ करते हैं। आजकल कुछ लोग ऐसे निकल आये हैं, जो चित्तकी शान्तिके विरोधी हैं। कोई धन इकट्ठा करनेको महत्त्वपूर्ण समझता है और वह धन इकट्ठा करनेमें इतना संलग्न हो जाता है कि उसको संग्रहानन्द तो चाहिए; परन्तु, उसको शान्त्यानन्द नहीं चाहिए। भला बताओ! यह इकट्ठा किया हुआ पैसा आपके काम आवेगा कि आपकी अगली पीढ़ीके काम आवेगा? सच पूछो तो इसको न आप जानते हैं और न ही कोई दूसरा जानता है। इस धनको केवल

एक अज्ञात दशामें पहुँचानेके लिए आप सारे प्रयत्न कर रहे हैं। आप जो भोग करते हैं, वह आपको रोग देगा कि आपको योग देगा? आप पिण्डाकाशके स्वरूपको-देहाकाशको ठीक-ठीक न समझ करके भोगका प्रयत्न करते हैं।

यहाँतक कहने वाले लोग निकल आये कि चित्तमें केवल वासना-ही-वासना रहती है। वह प्रगट होती है, तो वासना। वह शान्त होती है, तो वासना। देखो! वासनाओंका प्रकट होना जड़ पदार्थोंके साथ एक होना है और वासनाओंका शान्त होना चेतनके समीप होना है। यह बात उन लोगोंको भूल गयी है। चित्तके स्वरूपके सम्बन्धमें जो विचार अपने शास्त्रोंमें है, वह बड़ा परिपुष्ट विचार है। आप मनका 'साईन्स' (Science) पढ़ते हैं। मनोविज्ञानके बारेमें जानकारी प्राप्त करते हैं। यह सब तो ठीक है; परन्तु, जब आप यह मानते हैं कि चित्तकी गहरी धारामें-अन्तःस्तलके सूक्ष्मतम प्रदेशमें केवल वासनाओंके बीज ही रहते हैं, तो आप चित्तकी असलियतसे बहुत दूर हैं। आप केवल सुनी-सुनायी बातपर अपनी राय क़ायम कर रहे हैं। आप आजकलके आधुनिकतम यान्त्रिक भौतिक पदार्थोंका परीक्षण-निरीक्षण-समीक्षण करनेवाले लोगोंके चक्करमें पड़ रहे हैं।

चित्त केवल वासनाकी प्रवृत्ति या वासनाका बीज ही नहीं है। चेतनके बिना चित्तका कोई अर्थ ही नहीं होता है। चित्तकी गहराइयोंमें प्रवेश करनेपर आप देखेंगे कि चित्तमें केवल वासना ही नहीं है। चित्तमें एक जीवन शक्ति है, जो आत्मसत्तासे एक है। चित्तमें एक चेतना है, जो चिन्मात्र ब्रह्मसे एक है। चित्तमें एक आनन्द है, जो प्रवृत्ति दशामें भी आपका पीछा नहीं छोड़ता है। आपके पीछे-पीछे आता है। वह वहीं छिपा हुआ है। दुनियामें जितना अस्ति-भाति-प्रिय मालूम पड़ता है, वह चित्तमें है। यह चीज है, यह चीज मालूम पड़ती है, यह चीज बड़ी प्यारी है, यह सब चित्तमें है। असलमें, चीजका होना, उसका मालूम पड़ना और उसमें प्रियता होना, चित्तकी गहराइयोंमें कहीं छिपा हुआ है। जब चित्त प्रवृत्त होता है, तब वह चित्त-वृत्तियोंके साथ पीछेसे निकल आता है। जब चित्त-वृत्तियाँ शान्त होने लगती हैं, तब उसीमें डूब जाती हैं। चित्तमें जीवन

है। चित्तमें ज्ञान है। चित्तमें आनन्द है। यह केवल चित्तकी उदय-दशामें ही नहीं है। यह शान्त-दशामें भी है। यदि यह चित्तकी शान्त-दशामें न होता, तो उदय-दशामें आता ही नहीं। यदि चित्त क्रियाशील न हो, तो संसारमें जितनी क्रियाएँ होती हैं, वह क्रियाएँ नहीं हो सकतीं। चित्तमें जीवन है। चित्तमें परिवर्तन है। चित्तमें चेष्टा है। चित्तमें शान्ति है। चित्तमें सच्चिदानन्दकी अभिव्यक्तिका स्थान है।

आपके मनमें-आपके चित्तमें केवल भोगकी वासनाएँ-केवल रागकी वासनाएँ ही नहीं हैं। कर्मेन्द्रियोंके साथ एक होनेसे कर्मकी प्रधानता और ज्ञानेन्द्रियोंके साथ एक होनेसे भोगकी प्रधानता-केवल यह अभिनिवेश ही आपका जीवन नहीं है। सुखसे राग और दुःखसे द्वेष—केवल यही आपका जीवन नहीं है। इस चित्त-जीवनमें अभिनिवेश आपका जीवन नहीं है। इस चित्तके जीवनके परे भी जीवन है। आजका पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक बाहरकी चकाचौंधमें इतना ज्यादा फँस गया है कि उसको ऐसा मालूम पड़ता है कि सब बाहरसे भीतर गया है। जो बाहरसे भीतर गया है, वही भीतर रहता है और वही फिर बाहर निकलता है। परन्तु, हमारे चित्तके अपरिदृष्ट धर्मके विचारकोंने ऐसा नहीं माना है। आप योगदर्शनका भाष्य देखिये।

चित्तमें दो प्रकारके धर्म होते हैं-परिदृष्ट और अपरिदृष्ट। एक तो वे, जो साफ-साफ मालूम पड़ते हैं और एक वे, जो साफ-साफ मालूम नहीं पड़ते हैं। जो साफ-साफ मालूम नहीं पड़ते हैं, वे केवल वासनाके बीज ही हैं— ऐसा समझना चित्तके विज्ञानका अधूरापन है। चित्तको सच्चे जीवनसे-ज्ञानसे-आनन्दसे एक करनेके लिए और परिच्छिन्नताकी ओर बहनेवाली वृत्तियोंसे मुक्त करनेके लिए मनुष्यके जीवनमें साधन-सत्संग-अभ्यासकी आवश्यकता होती है। जब आप अन्तरंग वस्तुओंके सम्बन्धमें यह अभ्यास करने लगेंगे, तब बाह्य वस्तुओंके साथ राग-द्वेषको छोड़ना पड़ेगा। अपने शरीरके अभिनिवेशको छोड़ना पड़ेगा। अगर हड्डी-मांस-चामके द्वारा होनेवाले काम और इनको मिलनेवाले भोगसे आपका लगाव ढीला नहीं पड़ेगा—शिथिल नहीं होगा, तो आपका असली भाव भी प्रकट नहीं होगा। अपने आपको एक शरीरसे होनेवाले कर्मके नीचे दबा देना और एक

शरीरसे होनेवाले भोगके नीचे दबा देना आपके स्वरूपके अनुरूप नहीं है। जबतक आप इससे ऊपर नहीं उठते और इसमें आनेवाले सुख-दुःखसे ऊपर नहीं उठते, तब तक आपका असली-भाव भी प्रकट नहीं होगा-आपका अस्मि-भाव भी प्रकट नहीं होगा। द्रष्टापना या साक्षीपनाका होना और इनका जाहिर होना तो दूसरी बात है। अतएव, मनुष्यके जीवनमें सत्संग-साधन-अभ्यासकी आवश्यकता है।

जमीनमें पैदावारकी ताकत लानेके लिए हल नहीं चलाते हैं। उसकी कठोरताको कोमलताके रूपमें प्रकट करनेके लिए हल चलाते हैं। स्वस्थताका निर्माण करनेके लिए औषधि नहीं की जाती है। शरीरमें जो विजातीय पदार्थ-रोग आ गये हैं, उनको दूर करनेके लिए योग किया जाता है। एक महात्माने बाल्यावस्थामें हमारा पथ-प्रदर्शन किया था-मार्ग बताया था। उन्होंने कहा था कि 'बेटा! साधनका खण्डन मत करना।' जब एक मनुष्य पैसा चाहता है, तो उसको व्यापार करनेसे-नौकरी करनेसे मत रोको। जब एक आदमी भोग चाहता है, तो उसको ब्याह करनेसे मत रोको। एक आदमी समाधि चाहता है, तो उसको योगाभ्यास करनेसे मत रोको। साधनका अर्थ यह है। आपके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए साधन है। आपके लक्ष्यपर आक्रमण करनेका-प्रहार करनेका सामान्य रूपसे किसीको अधिकार नहीं है।

यदि आप रामको प्राप्त करना चाहते हैं, तो आप स्वतन्त्र हैं। इसमें हमारी नादिरशाही बिलकुल नहीं चलेगी। आप रामाकारवृत्ति बनाइये। आप अपने मनको ऐसा बनाइये, जिसमें राम-ही-राम, राम-ही-राम दिखें। इसके लिये आप ध्यानकर सकें, तो कीजिये। नाम ले सकें, तो लीजिये। अगर नामको गा सकें, तो गाइये। अगर आप नाम लेकर नाच सकते हैं, तो नाचिये। यदि आप भगवान् रामका, कृष्णका, नारायणका, शिवका नाम लेकर शान्तिसे नहीं बैठ सकते, तो आप भले नाचके नाम लीजिये। यदि आप अपनी आँखको-हाथको स्थिर करके नामोच्चारण नहीं कर सकते, तो आप अपनी आँखको-हाथको हिलाइये। कमर हिलाइये। पाँव हिलाइये। ऐसी चेष्टा कीजिये, जिससे आपके हृदयके भीतर रामका आकार आवे। ऐसी पूजा कीजिये, ऐसा ग्रन्थ पढ़िये, ऐसा नाचिये-

गाइये-बजाइये, ऐसा जिह्वासे जप कीजिये, जिससे आपके हृदयके भीतर रामका आकार आवे। यदि आप रामको पाना चाहते हैं, तो आप अपने चित्तमें रामको भरके अपनी वृत्तिको रामका आकार दीजिये और उसको स्थिर कीजिये।

यदि आप कृष्णको पाना चाहते हैं, तो आप अपने चित्तमें कृष्णको भरके अपनी वृत्तिको कृष्णका आकार दीजिये और उसको स्थिर कीजिये। आप यह बात बिलकुल भूल जाइये कि श्रीकृष्ण बाप ही हैं, बेटे नहीं हैं। जहाँ बाप है, वहाँ बेटा भी होता है। जहाँ सोना है, वहाँ जेवर बनता है। जहाँ धरती है, वहाँ खेत बन सकता है। आप यह बिलकुल मत सोचिये कि आपको श्रीकृष्णके दर्शन नहीं हो सकते। आपको यह सारी दुनिया इसलिए दीख रही है कि आपका चित्त इस दुनियामें लगा हुआ है। यदि आपका चित्त संसारमें संलग्न न हो, तो आपको संसारका दर्शन न हो।

आप अपने चित्तसे बहुत-सी चीजोंको देखना चाहते हैं कि किसी एक चीजको? हमारे एक अंग्रेजी पढ़े-लिखे साधु हैं। वह कहते हैं कि आपकी 'लाईफ' (Life) का 'गोल' (Goal) क्या है? 'ऐम' (Aim) क्या है? आप कहाँ पहुँचना चाहते हैं? आप इस पिण्डमें रहनेवाली चित्त-चेतनाको दुःखमय जगत् बनाकर देख सकते हैं। आप इस पिण्डमें रहनेवाली चित्त-चेतनाको सुखमय जगत् बनाकर देख सकते हैं। आपका यह चित्त राम होकर दर्शन दे सकता है। आपका यह चित्त कृष्ण होकर दर्शन दे सकता है। आपका यह चित्त ब्रह्मा-विष्णु-महेश-नारायण होकर दर्शन दे सकता है। आपका यह चित्त सभी नाम-रूपोंको छोड़कर नाम-रूपसे रहित महाकाशके विस्तारमें लीन हो सकता है। आपका यह चित्त कार्य-कारण भावका परित्याग करके यह अनुभव कर सकता है कि चिदाकाशके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

यदि आप धन इकट्ठा करना चाहते हैं, तो हम आपको रोकते नहीं हैं। ईश्वर करे, आपका धन खूब बढ़े। यदि आप भोग चाहते हैं, तो आप भोगके लिए प्रयत्न कीजिये। ईश्वर करे, आपको खूब भोग मिले। यदि आप भविष्यका निर्माण करना चाहते हैं, तो अवश्यमेव प्रयास कीजिये। हम जानते हैं कि आपको भूतकी आदिका पता नहीं है। आप भूतकी आदि देख

नहीं सकते हैं। हमको यह भी मालूम है कि आप वर्तमान क्षणको भूत और भविष्यसे अलग करके कभी नहीं देख सकते हैं। आप भूत और भविष्यकी सन्धिमें वर्तमानको नहीं देख सकते हैं। आप जैसा भविष्य बनाना चाहते हैं, वैसा अपना चित्त बनाइये। आपका चित्त जैसा बनेगा, ठीक वैसा ही आपका भविष्य बनेगा। केवल भविष्य ही नहीं, अपितु आप नया ब्रह्माण्ड बना सकते हैं। 'योग-वासिष्ठ'में 'त्रिपुरा-रहस्य'में ऐसी-ऐसी कथाएँ आती हैं कि यदि हम चाहें, तो नया ब्रह्माण्ड बना सकते हैं। उसमें नये ब्रह्मा-विष्णु-शिवकी स्थापना कर सकते हैं और उनके ऊपर उसके संचालनका भार सौंप सकते हैं। हाँ! हमारे चित्तके भीतर ऐसी शक्तियाँ विद्यमान हैं। चित्तमें केवल वासना--ही-वासना है—ऐसा सोचना सही नहीं है। चित्तमें केवल कामना-ही-कामना है—ऐसी कल्पना करके आप चित्तका तिरस्कार मत कीजिये। आपके चित्तमें जीवन है। आपके चित्तमें शुद्ध चेतन है। आपके चित्तमें परमानन्द है। आपके चित्तमें पूर्णता है। आपके चित्तमें जैसा चाहें, वैसा निर्माण करनेकी शक्ति है। यदि आप चाहें, तो आपको ब्रह्मा-विष्णु-शिवकी शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

हमने यह बात इसलिए कही कि आप अपने जीवनके सम्बन्धमें उदास न हों। यदि आप निराशावादको आध्यात्मिकता समझते हैं, तो यह गलत है। यदि आप सोचते हैं कि जो प्रारब्धमें लिखा है, वही होगा, तो यह आपकी भूल है। यह सोचते समय आप यह भूल जाते हैं कि प्रारब्धको आपने ही बनाया है। जब आप यह सोचते हैं कि जो ईश्वर करेगा, सो ही होगा, तब आप यह भूल जाते हैं कि आपने ही ईश्वरके अन्दर कुछ करनेकी शक्ति और कुछ करनेकी इच्छा जाग्रत् की है। आपके जगाये बिना ईश्वरमें इच्छा जाग्रत् नहीं हो सकती और ईश्वरकी शक्ति भी क्रियाशील नहीं हो सकती। अतएव, आप साधन-भजन करें। आप अभ्यास-प्रयत्न करें। आप सत्संग-स्वाध्याय करें। आपकी समझमें जो बात न आती हो, उसको समझनेकी कोशिश करें। आप समझते हैं कि चित्तके मूलमें केवल कर्मकी वासना है, केवल भोगकी वासना है, केवल उन्मत्तवत् प्रलाप है। चित्तमें नियन्त्रणकी शक्ति नहीं है। चित्त अभ्यासके द्वारा किसी स्थितिमें पहुँच नहीं सकता है। चित्त अपने अन्दर सच्चिदानन्दघन-अपिरिच्छिन्न-ब्रह्मको

प्रकाशित नहीं कर सकता है। चित्तके सम्बन्धमें आपकी ऐसी जो निराशा-उदासी भरी समझ है, उसको आप छोड़ दीजिये।

हम आपसे स्वर्गकी बात नहीं कर रहे हैं। यदि आपको बहिश्तमें जाना हो, तो आप किसी मौलवीसे मिलिये। यदि आपको स्वर्गमें जाना हो, तो आप किसी धर्मके पुरोहितसे बातचीत कीजिये। यदि आपको वैकुण्ठमें जाना हो, तो आप किसी भगवद्भक्तसे मिलिये। यदि आपको समाधिमें बैठना हो, तो आप किसी योगीसे मिलिये। आप जिस वस्तुको पाना चाहते हैं, उसके लिए वह रीति सीखिये। यदि आप कुछ नहीं पाना चाहते हैं, तो इस गड़बड़झालासे बचनेकी बात भी किसी ज्ञानी गुरुसे सीख लीजिये। चाहे उन्मत्त प्रमत्तके समान और चाहे पहुँचे हुए सिद्ध सन्तके समान, यदि आपको ऐसे रहनेमें-वैसे रहनेमें, यह भोगनेमें-वह भोगनेमें, यह पानेमें-वह पानेमें कोई दिलचस्पी ही न हो, तो आपके लिये उपायकी-साधनकी-अभ्यासकी जरूरत नहीं है।

यह प्रवचन भी एक उपाय है-एक साधन है-एक अभ्यास है-एक सत्संग है। यह आपको आपकी अभीष्ट वस्तु देता है। आप जो चाहते हैं, उस वस्तुकी प्राप्तिके मार्गको प्रशस्त करता है। आपके अस्पष्ट लक्ष्यको स्पष्टकर देता है। आप जहाँ पहुँचना चाहते हैं, वहाँ आपको पहुँचाता है। अतएव, आप यह साधन-सत्संग मत छोड़िये। सत्संगके बिना कोई धार्मिक-सदाचारी नहीं हो सकता है। सत्संगके बिना किसीको यज्ञ-याग करना नहीं आ सकता है। सत्संगके बिना योगाभ्यास नहीं हो सकता-वृत्तियाँ शान्त नहीं हो सकतीं। सत्संगके बिना चित्तनदीमें अवगाहन नहीं हो सकता है।

हमको तो उन लोगोंपर आश्चर्य होता है, जिन्होंने कहा कि चित्तकी नदीके निचले तहमें केवल कीचड़-ही-कीचड़ भरा है। असलमें, यह जो चित्तकी नदी बह रही है, इसके भीतर कीचड़-ही-कीचड़ नहीं है। इसके भीतर बड़े-बड़े हीरे-मोती और मणि-माणिक्य हैं। चित्त नदीमें गोता लगानेके बाद केवल भोग-वासना ही नहीं मिलती है। गोता लगाना माने बाह्य विषयोंकी ओरसे चित्तवृत्तिको निरुद्ध करके अन्तर्मुख करना। यदि आप चित्तवृत्तिको उसके मूल स्रोतकी ओर ले जायेंगे, तो आपको सत्-

चित्-आनन्दकी उपलब्धि होगी। यदि आप मनको उद्गमकी ओर ले जायेंगे, तो आपको आनन्द-ही-आनन्द मिलेगा।

सम्भव है कि आपने 'समुद्र-मन्थन'के प्रसंगमें सुना होगा कि जब समुद्र-मन्थन किया गया, तब उसमें-से पहले-पहल जहर निकला। अब कहीं किसीने समुद्र-मन्थनके समय जहर निकलने तकका दृश्य तो देखा और वहींसे लौट आया। उसने कहा–'समुद्रका मन्थन मत करना। इसमें तो जहर-ही-जहर है।' अरे! उसको मालूम नहीं है कि समुद्रमें कामधेनु-कल्पवृक्ष-चिन्तामणि भी हैं। समुद्रमें धन्वन्तरि भी हैं। समुद्रमें लक्ष्मी-नारायण भी हैं। यह बात उन लोगोंको मालूम नहीं है, जिन्होंने चित्त-समुद्र-मन्थनके शुरुआतमें ही जहर देखा और जहर देखकरके लौट आये। वे भले ही यह समझते हैं कि चित्तके भीतर केवल कीचड़-ही-कीचड़ है; परन्तु, वस्तुतः चित्तमें केवल वासना-ही-वासना नहीं है। चित्तके भीतर रत्न-जवाहरात, मणि-माणिक्य, लक्ष्मी-नारायण हैं। आपके जीवनको अमर करनेवाला अमृत और उसको बतानेवाला धन्वन्तरि है। आपके सम्पूर्ण मनोरथोंको परिपूर्ण करनेवाला आपके चित्तमें ही रहता है। आपके हृदय-समुद्रमें रहनेवाली लक्ष्मीको नारायणके साथ ज़ोड़नेवाला इसी चित्तके समुद्रमें रहता है।

आपसे पुनः-पुनः यह प्रार्थना है–विनय है कि आप लोगोंको सत्संगमें-साधनमें लगाइये। भगवान्‌के नाम-जपमें, संकीर्त्तनमें लगाइये। आप भगवान्‌के लिए नाचिये-गाइये। उसके लिए पूजा कीजिये; ध्यान-धारणा कीजिये; अभ्यास कीजिये। आपका चित्त बहिरंग विषयोंके राग-द्वेषसे विनिर्मुक्त होकर अपने स्वरूपमें बैठे। एतदर्थ, जो सच्चे साधन हैं–उपाय हैं, उनको सत्संगके द्वारा जानिये।

आप सब लोग जानते हैं कि किसी अखबारमें कोई विशेष विज्ञापन नहीं किया गया है। जब अखबारोंको विज्ञापन देनेकी आदत डाल दी जाती है, तब वह बिना पैसा दिये, बिना विज्ञापन दिये सत्संगके समाचार नहीं छापते हैं। हाँ! जैसे वह जूतेका विज्ञापन छापते हैं, बीड़ीका विज्ञापन छापते हैं, वैसे उनको पैसा लेकर सत्संगका समाचार छापनेकी आदत पड़ जाती है। जब वह जानते हैं कि पैसेवाले लोग इसमें सम्मिलित होते हैं, तब बिना

पैसे लिये सत्संगके समाचार नहीं छापते हैं। ऐसी स्थितिमें भी आप लोग इतने यहाँ इकट्ठे हैं। हमारे लिए तो एक व्यक्ति भी पर्याप्त है। जब वह हमसे प्रश्न करता है, तब उसको उत्तर देनेके लिए, उसको समझानेके लिए हम उससे घण्टों तक बातचीत करते हैं। आप लोगोंकी संख्या तो बहुत बड़ी है। हम तो समझते हैं कि यदि आपलोग अपने एक-एक मित्रसे, दो-दो मित्रसे इसकी चर्चा कर दें, तो यहाँ हॉलमें बैठनेकी जगह ही नहीं रहेगी। हाँ! कल एकादशी है। शनिवार है। परसों रविवार है। इतनेमें तो आप इस बातको इतना फैला सकते हैं कि अखबारोंमें छापनेसे जितने लोग आते हैं, उससे अधिक आने लगें।

प्रार्थना यही है कि आप अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए सावधान रहें। सत्संग करें। साधन करें। अभ्यास करें। जिसके बारेमें आपको जानकारी नहीं है, उसकी जानकारी प्राप्त करें। आपके चित्तमें केवल वासनाओंका कीचड़ नहीं है। आपके हृदयके भीतर, आपके अन्तर्देशके सूक्ष्मतम प्रदेशमें स्वयं, जो आप चाहते हैं, उससे भी बढ़िया वस्तु और वह वस्तु भी बैठी हुई है। आप उसको उपायके द्वारा, अभ्यासके द्वारा साधनके द्वारा, सत्संगके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। आजके जगत्में आध्यात्मिक जीवनकी जितनी आवश्यकता है, उतनी आवश्यकता शायद ही कभी रही हो।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## 2

### नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

सामूहिक-सामाजिक जीवनमें व्यक्ति-व्यक्ति-व्यक्तिकी प्रधानता होती है। जिसको मनुष्य-लोकपर विजय प्राप्त करनी हो, उसके लिए प्रजाकी अनुकूलता-समाजकी अनुकूलता आवश्यक है। चाहे आप पारिवारिक जीवन व्यतीत करें, आपको परिवारका अनुकूलन चाहिए। जब माता-पिता, पत्नी-पुत्र, भाई-बहन-सब अनुकूल रहेंगे, तब आप पारिवारिक रूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे-प्रतिष्ठित होंगे। यदि माँ-बाप, पत्नी-पुत्र, भाई-बहन आपके विरोधी हों, तो गाँवमें यही बात कही जायेगी कि 'जब घरवाले ही उसका कोई महत्त्व नहीं मानते, कोई आदर नहीं करते, तब हम लोग उसको आदरकी दृष्टिसे क्यों देखें?' '*प्रजया मनुष्यलोकाः।*' श्रुतिमें यह आया कि यदि आप मनुष्य-लोकपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको समाजको अनुकूल करना चाहिए। मनुष्य-लोकपर विजय पानेके लिए समाजका अनुकूलन होना चाहिए। चाहे आप शंकराचार्यके समान, बुद्धके समान, ईसाके समान, मुहम्मदके समान इतने प्रभावशाली हों कि सब लोग आपके अनुकूल चलने लगें अथवा आप अपने अहंको इतना सेवापरायण कर दें कि वह सबके अनुकूल हो जाये। सामाजिक महत्त्व प्राप्त करनेके लिए जनताका अनुकूलन आवश्यक है।

यदि आप अपनी संस्कृतिकी रक्षा करना चाहते हों कि हमारे पिता-पितामह जिस मार्गपर चले हैं, वह बना रहे और हमारी अगली सन्तान भी हमारे पिता-पितामहके मार्गपर ही चले, तो आप भी उसी मार्गसे चलो। समाजका विस्तार दूसरी चीज है। वह सामूहिक जीवन है। यह सांस्कृतिक जीवन क्या है?

येनास्य पितरो जाताः येन जाताः पितामहाः।
तेन गच्छेत् सताम् मार्गम् तेन गच्छन् न वेष्यति।।

मनुजीने कहा कि 'जिस मार्गसे तुम्हारे पिता-पितामह चलें हैं, उसी सन्मार्गसे तुम भी चलो। यदि उस मार्गमें कोई दोष भी होगा, तो उसके दोषी तुम नहीं बनोगे।' वैसे तो, अपने पिता-पितामहका भी वही आचरण ग्रहण करना चाहिए, जो निर्दोष हो-अनवद्य हो। *'तेन् गच्छेत् सताम् मार्गम्।'* अपने सत्पुरुष-पिता-पितामहके द्वारा संस्थापित संस्कारोंके अनुसार अपनेको चलना चाहिए। तभी हमारी अगली पीढ़ी भी उसी संस्कारके अनुसार चलेगी। *'कर्मणा पितृलोकाः।'* कर्मसे पिता-पितामहके संस्कार प्राप्त होते हैं। वे पहले अपनेमें आते हैं और फिर अपने पुत्र-पौत्रादिमें जाते हैं। संस्कृतिकी रक्षा कालकी धारामें चलती है और सामाजिक जीवनका विस्तार देशमें होता है।

अब अन्तर्जगत्की बात देखो।

*'प्रजया मनुष्यलोकाः। कर्मणा पितृलोकाः। विद्यया देवलोकाः।'*

यदि आप मरणानन्तर अपने जीवनका निर्माण करना चाहते हैं, तो मरनेके बाद यह शरीर जहाँ जले और उस राखपर जो घास पैदा हो, वह घास भी लोगोंके लिए औषध हो। उसमें भी दैवी-शक्तिका चमत्कार आजाये। उस घासको खानेवाली गाय-भेड़-बकरी और उस शरीरके मांसको खानेवाले पशु-पक्षीमें भी दैवी-शक्तिका चमत्कार आजाये। इस शरीरसे जिन कछुओंका भण्डारा होगा, वे कछुए भी दैवी-गुणसे सम्पन्न बन जायें। इस जीवनमें दिव्यता उभर आवे और मरणानन्तर भी यह जीवन लोक-कल्याणके ही कार्यमें लगे। इसके लिए दैवी-विद्या प्राप्त करनी पड़ती है। बहिर्मुखताकी वासना छोड़कर अन्तर्मुख होना पड़ता है।

*'विद्यया देवलोकाः'*। देवता क्या होते हैं? उनकी उपासना क्या होती है? देवलोककी प्राप्ति कैसे होती है? दिव्य-जीवन कैसे प्राप्त होता है? विद्याके द्वारा प्राप्त होता है। विद्याके सम्बन्धमें लोगोंको भ्रान्ति है कि जो ज्यादा पोथी पढ़े सो बड़ा विद्यावाला हो जाता है। विद्वान् हो जाता है। विद्या पोथीमें छपे हुए आड़े-टेढ़े अक्षरोंका नाम नहीं है। लिपिका नाम-भाषाका नाम विद्या नहीं है। विद्या चित्तकी एक वृत्ति है। चाहे वह भौतिक-विज्ञान

हो, चाहे दैविक-विज्ञान हो, चाहे आध्यात्मिक-विज्ञान हो, चाहे आत्म-ज्ञान हो। आध्यात्मिक-विज्ञान दूसरी चीज है और आत्म-ज्ञान दूसरी चीज है। 'आत्मा'के साथ 'अधि' लगते ही वह आत्माके ऊपर आरोपित हो जाता है। आत्माके ऊपर जो आरोपित है, उसीको 'अध्यात्म' कहते हैं। शुद्ध आत्म-ज्ञान दूसरी वस्तु है और आध्यात्मिक-ज्ञान दूसरी वस्तु है। आध्यात्मिक-ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। आप उद्विग्न न हों कि कैसा रूखा-सूखा विषय लेकरके बोल रहे हैं।

आप मनुष्यकी सेवा करोगे, तो मनुष्यलोकमें आपकी प्रतिष्ठा होगी। पितरोंकी सेवासे वंशमें पैतृक आचरणका उदय होता है। वंशवृद्धि होती है। देवताओंकी पूजा करनेसे इन्द्रियोंमें शक्ति आती है। साकार-निराकार ईश्वरका ध्यान करनेसे अन्तःकरणमें एकाग्रता आती है। सम्पूर्ण साकारोंके ध्यानका परित्याग कर देनेपर चित्तका निरोध होता है। पितृ-पूजासे वंशवृद्धि होती है। ऋषि-पूजासे ज्ञान-वृद्धि होती है। देवपूजासे ऐन्द्रियक-शक्तिकी वृद्धि होती है। ईश्वर-पूजासे मन एकाग्र होता है। मनको निष्क्रिय कर देनेसे निरोध सम्पन्न होता है। देखो! इसीसे हम अपनेको सनातन-धर्मी बोलते हैं। अपने स्थानपर मनुष्य-पूजा श्रेष्ठ है। अपने स्थानपर ऋषि-पूजा श्रेष्ठ है। अपने स्थानपर पितृ-पूजा श्रेष्ठ है। अपने स्थानपर देव-पूजा श्रेष्ठ है। अपने स्थानपर अपूजा श्रेष्ठ है। जो लोग एक पन्थके घेरेमें आ जाते हैं, उनका सत्यपर आग्रह नहीं होता है। अपने पन्थपर आग्रह हो जाता है। वह कहेंगे कि गुरुको तो मानो; परन्तु, ईश्वरको मत मानो। देखो! यह ऋषिपूजा तो हुई; परन्तु, ईश्वरपूजा छूट गयी। कोई कहेंगे कि तुम ईश्वरको तो मानो; परन्तु, देवताओंको माननेकी जरूरत नहीं है। इससे ईश्वरकी पूजा तो हुई; परन्तु, देवताकी पूजा छूट गयी। कोई कहेंगे कि साकारकी पूजा तो करो; लेकिन, निराकार कुछ नहीं है। उनका निरोध नहीं हो सकता। कोई कहेंगे कि निराकारकी पूजा तो करो; परन्तु, साकारको छोड़ दो। उन्हें एकाग्रता ही नहीं होगी, तो निरोध कहाँसे होगा?

वर्तमानकालमें मनोविज्ञान मनकी क्षिप्त-दशा, मूढ़-दशा और विक्षिप्त-दशा—इन तीनोंका खूब विस्तारसे वर्णन करता है। चित्तकी एकाग्र-दशा और निरोध-दशाका वर्णन भौतिक यन्त्रोंके द्वारा या भौतिक

विज्ञानके द्वारा नहीं जाना जा सकता है। वह तो उत्थित वासनाओंको ही पहचानते हैं। वह सुषुप्त वासनाओंको नहीं पहचानते हैं। चित्तकी एकाग्र-भूमिका या निरुद्ध-भूमिका आनेपर आपको ठीक-ठीक मालूम पड़ेगा कि चित्तके भीतर क्या-क्या छिपा हुआ है? यदि आप केवल क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त-दशाको देखकर अनुमान लगावेंगे कि चित्तके भीतर क्या है, तो वह आपके द्वारा अनुमित पदार्थ सही नहीं होगा। क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त-दशाओंमें वासनाओंका ही विलास देखनेमें आता है। अतः आप यही अनुमान कर सकेंगे कि एकाग्र-दशा और निरोध-दशामें भी इन्हीं वासनाओंका बीज रहता है।

अब आपको चित्तकी थोड़ी-सी चर्चा सुनाते हैं। एक होता है चित्त। जैसे–संचित, परिचित। इसमें एक 'त' है और वह त पूरा है। चितका अर्थ होता है–इकट्ठा किया हुआ। यह एक संस्कारका नाम है। एक होता है–चित्त। इसमें डबल त्त (माने) दो 'त' हैं। एक होता है–चित्। इसमें 'त' हलन्त होता है माने 'त्त' के नीचे लकीर खींची जाती है और तकारका आधा उच्चारण होता है। संस्कृत भाषामें यह सावधानी बरती गयी है कि चित्के अर्थमें चित शब्दका और चित्त शब्दका प्रयोग नहीं है। व्याकरणके पण्डित जानते हैं कि एक चिति संज्ञाने धातु है और एक चिञ् चयने धातु है। चिञ् चयने धातुसे तुक् होकर चित शब्द बनता है। चिति संज्ञाने में त पहलेसे ही स्वतः सिद्ध रूपमें मौजूद है। उसमें अनुबन्धका लोप–ईकारका लोप हो गया। चित्त शब्द बन गया। वह त्विक् प्रत्ययान्त है और यह तुक् प्रत्ययान्त है। चिञ् चयनेसे। इसका अर्थ होता है–चिनोति। जो चुनता है, उसको चित्त बोलते हैं। चुनता है का अर्थ है कि राग-द्वेषपूर्वक, कर्त्तृत्व-भोक्तृत्वपूर्वक, अपेक्षा-बुद्धिसे जो कर्म या भोग किया जाता है, उसके संस्कारको इकट्ठा करके यह अपने भीतर रखता है। इसलिए, इसको चित्त कहते हैं। *'चिनोति चिनुते वा।'* यह उभयपदी धातु है। *'परस्मै आत्मने वा।'* दूसरेके लिए या अपने लिए संसारसे संस्कारोंको इकट्ठा करके रखता है। जो जीवको स्वभावसे कर्त्ता-भोक्ता मानते हैं, वे जीवको चित्त तो कहते हैं; परन्तु, इसी अर्थमें कहते हैं। वेदान्ती लोग जीवको शुद्ध आत्माकी दृष्टिसे चित् बोलते हैं और संस्कारोंकी उपाधिसे चित्त बोलते हैं। *'चित्तां भावः।'* यह देखा–यह

देखा। यह सुना-यह सुना। सबको इकट्ठा करके उनके ज्ञानोंकी राशि अपने हृदयमें इकट्ठी हो गयी।

इस दृष्टिसे यह कहना बिलकुल गलत है कि चित्तमें केवल काम-वासनाके बीज ही रहते हैं। यदि हमारे चित्तने पहले सन्तोंका संग किया है, तो उसमें धर्मकी वासना भी इकट्ठी है। यदि हमारे चित्तने पहले भक्तोंका संग किया है, तो उसमें उपासनाकी वासना भी इकट्ठी है। यदि उसने पहले वेदान्त-श्रवण किया है और तत्त्वज्ञान नहीं हुआ है, तो उसमें वेदान्तकी वासना भी इकट्ठी है। इसीसे, वामदेवको माताके गर्भमें रहते हुए ही प्रतिबन्धकी निवृत्ति होनेपर तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ। वामदेवके चित्तमें, बिना किसी गुरुके, बिना किसी शास्त्रके, जो पूर्वचित-पूर्व संचित वेदान्त-श्रवण था, वह प्रतिबन्ध-निवृत्तिके बाद फूट पड़ा। *'अहं मनुरभवं सूर्यश्च।'* वामदेवके हृदयमें वह भाव कहाँ था? चित्तमें ही था। परन्तु, प्रतिबन्ध विशेषके कारण चिन्मात्रके सम्बन्धमें जो अविद्या-भ्रान्ति थी, वह निवृत्त नहीं हुई थी। जन्म-प्रारब्धके प्रतिबन्धके निवृत्त होते ही उनको अपने आप तत्त्वज्ञान हो गया। वहाँ न तो सत्संग है, न तो वेदान्तके ग्रन्थोंका श्रवण है, न तो विचार है।

यह चित्त पूर्व-पूर्वमें क्या-क्या संस्कार ले करके बैठा हुआ है? रामभक्तिका संस्कार भी हो सकता है। कृष्ण-भक्तिका भी संस्कार हो सकता है। पाण्डुरंगकी भक्तिका संस्कार भी हो सकता है। आप जानते हैं कि महाराष्ट्रमें करोड़ों आदमी रहते हैं उनमें-से लाखों आदमी आज भी कितना कष्ट सहन करके पालकीके साथ, घोड़ेके साथ, ज्ञानदेवकी सवारी निकालते हैं और जा करके मन्दिरके सम्मुख चौबीस-चौबीस घण्टोंतक बारी में बैठे रहते हैं-'Q' (क्यू) में रहते हैं कि हमारी बारी आवे-हमारा नम्बर आवे, तब पाण्डुरंगका दर्शन करें। संस्कार-शून्य व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता है। वह तो घण्टे आध-घण्टेमें घबड़ा जायेगा। वह तो मोटरके पास जाकर खड़ा हो जायेगा और यदि ड्राइवर न मिले, तो अपने आपेसे बाहर हो जायेगा। हाँ! हम एक ऐसे सेठको जानते हैं। जब वह सेठ अपने मकानमें-से निकले, तब दरवाजेपर मोटर खड़ी थी; लेकिन, ड्राइवर कहीं पिशाब करने चला गया था। जब वह लौटकर आया, तब उन्होंने ड्राइवरको

पीटना ही शुरू कर दिया। वह उसको चपत-पर-चपत लगाते हुए बोले- 'इतना असावधान हो गया है। पहलेसे मोटर 'स्टार्ट' (Start) करके रखनी चाहिए।' यह बड़े आदमी। हैं न? आप जरा उनकी ओर देखिये, जो चौबीस-चौबीस घण्टे ही नहीं बल्कि उससे भी बहुत ज्यादा समय-तक पाण्डुरंगके दर्शनकी प्रतीक्षामें बैठे रहते हैं। उनके चित्तमें पाण्डुरंगके दर्शन की जो अभिलाषा है, वह उनके चित्तमें-से ही उदय हुई है। नहीं तो, सब लोग ऐसा ही करते। भाई मेरे! चित्त उसको कहते हैं, जो चित्‌की उपाधि बन करके बैठा हुआ है।

यदि हम कहें कि जन्म-जन्मके संस्कारको चित्त कहते हैं, तो किसी नास्तिक को, जो पूर्व-जन्म नहीं मानता है; उत्तर-जन्म नहीं मानता है मरणोत्तर जीवन नहीं मानता है; यह समझाना मुश्किल होगा। वह तो जब श्रद्धापूर्वक समझनेकी कोशिश करेगा, तब समझमें आवेगा। जन्मका पूर्व, जन्मका उत्तर, लोकान्तर-यह श्रद्धापूर्वक आप्तवाक्यरूप प्रमाणसे सिद्ध होता है। उसमें श्रद्धा न हो, तो जन्मान्तरकी सिद्धि केवल तर्कसे नहीं हो सकती है। तर्कसे हो भी जाये, तो उससे बड़ा तर्क और आ सकता है। बिना श्रद्धा सहकृत प्रमाणके उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। आत्मदेव ही एक ऐसे हैं कि चाहे श्रद्धा रखो अथवा मत रखो, चाहे विचार करो अथवा मत करो, चाहे शास्त्र श्रवण करो अथवा मत करो, यह तो स्वयंप्रकाश ज्योतिके रूपमें सबको प्रकाशित करते रहते हैं। प्रमाण सहकृत अनुभवसे आत्माका अज्ञान दूर होता है और प्रमाण सहकृत श्रद्धासे जन्मान्तरका ज्ञान होता है। यह दोनोंमें बहुत फरक है। आत्मानुभूति श्रद्धा सहकृत प्रमाणसे नहीं है। प्रमाण सहकृत अनुभवसे आत्मसाक्षात्कार है।

नारायण! आओ! आपको चित्तकी बात सुनावें। चित्तमें रागके संस्कार पहलेसे ही विद्यमान होते हैं। वासनाके बीज होते हैं। किसी-किसीके चित्तमें वैराग्यके भी संस्कार होते हैं। अब हम जीवन्मुक्ति विवेक प्रारम्भ करते हैं। चित्तके दो भेद हैं।

*'वैराग्यरागोपाधिभ्यां आम्नातो द्वय लक्षणान्।'*

राग वासनाके बीजकी प्रधानतासे वर्तमान चित्त और वैराग्य वासनाके बीजकी प्रधानतासे वर्तमान चित्त। चित्तमें ही यह दो दशा होती

है। एक चित्त उपाधि है। माने चिद्वस्तु-आत्मवस्तुके बिलकुल समीप रखा हुआ है। अध्यासके कारण अपनी विषय-वासनाको, कर्तृत्वको, भोक्तृत्वको आत्मापर लाद देता है। आत्मा चित्तके साथ मिला हुआ है। आत्मा अपनी नित्यता, ज्ञान-स्वरूपता, सुखरूपता चित्तमें डाल देता है। आत्मा अविनाशी ज्ञानस्वरूप परमानन्द है। चित्त उपाधि है। वह पूर्व-पूर्व संचित विषय-वासनाओंके बीज, जिसमें-से रागांकुरकी उत्पत्ति होती है और पूर्व-पूर्व संचित वैराग्य-वासनाओंके बीज, जिसमें-से वैराग्यांकुरकी उत्पत्ति होती है, दोनोंको अपनेमें धारण करनेवाला है। चित् और चित्तका ठीक-ठीक विवेक न होनेके कारण हम दोनोंको एकमें मान बैठते हैं।

चित्का-चिद्वस्तुका-आत्माका स्वभाव है—कभी न मरना। वह अपने मरनेका अनुभव कभी नहीं कर सकता है। सबको प्रकाशित करना और परमप्रिय होना—यह आत्माका स्वभाव है। चित्तका स्वभाव है—किसीके प्रति राग और किसीके प्रति वैराग्यके बीजको धारण करना। जिसके चित्तमें वैराग्यका अंकुर उदय होता है, उसकी पहचान क्या है? प्रवर्तमान चित्त और निवर्तमान चित्त। नारायण! आप लोग ऐसा कभी नहीं समझना कि संस्कृत भाषामें, वैदिक वाङ्मयमें मनोविज्ञानका निरूपण नहीं है। संस्कृत साहित्यमें मनोविज्ञानके निरूपणमें सञ्चारी भाव-व्यभिचारी भाव-सात्त्विक भाव-विभाव-अनुभाव-स्थायी—इनके इतने वर्णन हैं कि आपको क्या बतावें? अब चूँकि एक संस्कृतके पण्डितको कोर्समें रखी हुई कुछ पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं और डिग्री प्राप्त करनेके लिए दूसरोंको वही पढ़ा देनी पड़ती हैं, तो बिचारे शास्त्रके उस गम्भीर स्तरमें नहीं पहुँचते हैं। अनुभवके द्वारा शास्त्र वचनका साक्षात्कार नहीं करते हैं। इसलिए, उनको यह बातें मालूम नहीं पड़ती हैं। जिस चित्तमें राग-बीज है, वह प्रवर्तमान होता है और जिस चित्तमें वैराग्य-बीज है, वह निवर्तमान होता है। बाहरसे लौटकर भीतरकी ओर आना। दसको छोड़कर ग्यारहवेंमें पहुँचना। जैसे एकादशी है। एकादशी माने क्या होता है? दस इन्द्रियाँ बाहर काम करती हैं। पाँच कर्मेन्द्रियोंसे पाँच प्रकारके कर्म होते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे पाँच विषयोंका ज्ञान होता है। इनमें सबमें सहयोगी होता है—

मन। इन दस इन्द्रियोंके भोगसे मुक्त होकर ग्यारहवेंमें रहना—यह एकादशीका स्वरूप होता है। यह आध्यात्मिक एकादशी है भला! आजकी एकादशी करनेसे अमुक देवता प्रसन्न होंगे और यह वरदान देंगे, वह दूसरी बात है। इतनी एकादशी करनेसे हमारे बेटा हो जायेगा, धन आ जायगा, वह दूसरी बात है। यह प्रवर्त्तमान चित्तकी एकादशी है। निवर्त्तमान चित्तकी एकादशी है कि आज हमारा मन शान्त हो जाये।

हम आपको जिस वस्तुका वर्णन सुनाने जा रहे हैं, वह आपको मरनेके बाद मिलनेका नहीं है। इसी जीवनमें मिलनेका है। महात्माओंने स्पष्ट रूपसे कहा है कि हम उस धर्मका वर्णन नहीं करते हैं, जो चित्तमें अपूर्वकी उत्पत्ति करके मरणानन्तर फल देता है। आप इसी जीवनमें ज्ञानकी चमकसे भर जायें। आपका चेहरा ज्ञानकी चमकसे चमकने लगे। आपके जीवनमें आनन्द उल्लसित हो जाये। आपके जीवनमें सत्‌का प्रकाश हो। आपका सत्‌पना प्रकाशित हो। सत्‌पना माने अविरोधी जीवन। जिसका जीवन अविरोधी हो, उसको सन्त बोलते हैं भला! सत्ता अविरोधी होती है। आकार परस्पर विरुद्ध होते हैं। एक आकार दूसरे आकारको मिटाकर बनता है। कुण्डलको मिटाकर हार बनता है। हारको मिटाकर कंगन बनता है। जेवरोंकी सत्ता परस्पर विरुद्ध होती है। सोनाकी सत्ता अविरोधी है। मैं शंकर हूँ। मैं रामानुज हूँ। मैं निम्बार्क हूँ। मैं बुद्ध हूँ। मैं महावीर हूँ। मैं ईसा हूँ। मैं मुहम्मद हूँ। मैं जरथोस्त हूँ। सबके भीतर जो स्वर्णसत्ता है-चिद्‌सत्ता है, उसके साथ हमारा एकत्व है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें, ब्रह्माण्डोंके भेद होनेपर भी, जो महाकाश-चिदाकाश एक है, वह मैं हूँ।

निवर्त्तमान चित्तमें जब सत्‌का प्रकाश होता है, तब जीवन अविरोधी हो जाता है। जब चिद्‌का प्रकाश होता है, तब वह सब दृश्योंको देखता है। जब आनन्दका प्रकाश होता है, तब हरेक वस्तु-व्यक्ति-क्रिया-घटना आनन्दमय हो जाती है। वह आपके हृदयके भीतर विद्यमान है। जीवन्मुक्तिका अर्थ है कि इसी जीवनमें आपका जीवन अविरोधी हो। आप स्वयंप्रकाश-सर्वावभासक हों। इसके सिवाय ज्ञानका और कोई लक्षण ही नहीं है। अर्थावभासकत्वके सिवाय दूसरा कोई लक्षण ही नहीं है। जो कुछ

है, सो मालूम पड़ रहा है। जो कुछ है, वह अपने स्वरूपमें ही चमक रहा है। जो कुछ है, वह परमानन्द-स्वरूप है। अपरिच्छिन्न आत्माके बोधसे जीवन्मुक्ति होती है। इस बोधकी प्राप्तिके लिए प्रवर्त्तमान चित्तमें जो रागका बीज है, उसको भस्म करना पड़ता है और निवर्त्तमान चित्तमें जो वैराग्यका बीज है, उसको भी भस्म करना पड़ता है।

संन्यासी होना दूसरी चीज है और तत्त्वज्ञानी होना दूसरी चीज है। संन्यास आश्रम है और तत्त्वज्ञान अविद्यानिवर्तक महावाक्यजन्य विद्या-विशेष है। वह ऐसे नहीं मिलती है। इसी जीवनमें परमानन्द देती है। मरणोत्तरकालीन परमानन्द-स्वर्गसुख नश्वर है। वह धर्मसे मिलता है। वैकुण्ठादिका सुख नश्वर नहीं है; परन्तु, पराधीन है। उसमें नारायणकी इच्छासे रह सकते हो और वहाँसे निकाले भी जा सकते हो। भगवदिच्छा से जय-विजयके रूपमें हिरण्यकश्यपु और हिरण्याक्ष भी बनाये जा सकते हो। स्वर्ग-सुखमें नश्वरता है। वैकुण्ठ-सुखमें पराधीनता है। जन्ममें एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आना-जाना है। तत्त्वज्ञानमें जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख है।

देखो! अब आपको पहले थोड़ा-सा आश्रमके बारेमें बतावेंगे। आजकल धर्मकी बात जब विलायतसे लौटकर आती है, तब लोगोंकी समझमें आती है। अपने देशमें ही रहे, तो धर्मकी बात समझमें नहीं आती है। हमारे तत्त्वज्ञानकी शैलीमें जो विश्व-तैजस-प्राज्ञ और तुरीय हैं, वे हमारे ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमके मूल तत्त्व हैं। ब्रह्मचर्याश्रम सेवाप्रधान है। गृहस्थाश्रम योजनाप्रधान है। वानप्रस्थाश्रम असंगताप्रधान है। संन्यासाश्रम अद्वितीयताप्रधान है। तत्त्वकी ही चार अवस्थाओंके लिए यह चार आश्रम बने। इसलिए, इस आश्रममें भी चार भेद हो गये—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। 'कुटीचक' वह होता है, जो घर-द्वारके झंझटोंसे तो अलग रहे; परन्तु, अपने ही पुत्र-पौत्रादिसे, अपनी ही सम्पदासे निर्वाह करे। कुटीचक माने घरसे अलग रहे और अपने ही हककी वस्तुसे जीवन-निर्वाह करे। 'कुटया चकास्ति'। वह यज्ञोपवीत रखता है। शिखा रखता है। त्रिदण्ड भी रख सकता है। एक होता है—'बहूदक'। वह दूसरोंके घरसे भोजन लेता है; परन्तु, यज्ञोपवीत रखता है। सन्ध्यावन्दन करता है। एक होता है—

'हंस'। वह विवेकमें संलग्न होता है। यज्ञोपवीत रखता है। शिखा रखता है। काषाय वस्त्र भी धारण कर सकता है। त्रिदण्डी होता है। वह भी शास्त्रीय है। चौथा होता है—'परमहंस'। उसके शिखा और सूत्र नहीं होते हैं। उसके वस्त्र गैरिक होते हैं। आश्रम शब्दका अर्थ—'ईषदर्थे।' जब आश्रममें श्रमके साथ जुड़ा हुआ 'आ' 'ईषत्' अर्थमें प्रयोग होता है, तब यह आश्रम शब्द संन्यासाश्रम-परमहंसाश्रमके लिए प्रयुक्त होता है। *'आ ईषत् श्रमो यत्र।'* उसमें थोड़ा-सा परिश्रम है। थोड़ा-सा है। ब्रह्मचर्याश्रममें श्रम है। गृहस्थाश्रममें श्रम है। वानप्रस्थाश्रममें श्रम है। संन्यासाश्रममें ईषत् श्रम है। बहुत थोड़ा श्रम है। *'ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाविविधौ च यः एतन्मात्रमिदं विद्यात्।'*

अच्छा! सब संन्यासीकी बात सुनाते हैं। इनमेंसे कुटीचक, बहूदक और हंसको बादमें देखना। आओ! परमहंसका विचार करते हैं। परमहंस संन्यासी अद्वितीय ब्रह्म भावमें स्थित होता है। यह जो हम आपके जीवनके लिए परमानन्ददायी एक वस्तु सुनानेवाले हैं, उसमें आप पहले हंस और परमहंसके भेदको समझ लें। हंस उसको कहते हैं, जो नीर-क्षीरका विवेक करे। यदि दो चीजें एकमें मिल गयी हों, तो उनको अलग-अलग कर दे। इसका अर्थ होता है कि हंस द्वैतवादी होता है। चाहे वह चिदचिद् विशेषणके रूपमें द्वैतको स्वीकार करे; चाहे कार्य-कारणके रूपमें द्वैतको स्वीकार करे; चाहे शक्ति-शक्तिमान्‌के रूपमें द्वैतको स्वीकार करे; हंस द्वैतवादी होता है। हंस विवेकी होता है—एकको दूसरेसे अलग करके दोनोंको अलग-अलग देखता है। इसलिए, उसका नाम होता है—हंस। परमहंस अद्वैतवादी होता है। यह एक दूसरेको अलग न करके एकत्वमें अनेकत्वको देखता है। एकत्वमें अनेकत्वको देखना परायेमें नहीं हो सकता है। अपने आपमें ही हो सकता है। अतएव, जो नीर-क्षीरकी भावनाको छोड़कर, आत्मा-अनात्माकी भावनाको छोड़कर, द्रष्टा-दृश्यकी भावनाको छोड़कर, अद्वितीय भावनामें स्थिर होता है, उसको परमहंस कहते हैं। परमहंसके दो भेद होते हैं। ज्ञानकी प्राप्तिके लिए परमहंस और ज्ञान-प्राप्तिके अनन्तर परमहंस। ज्ञान-प्राप्तिके लिए जो परमहंस होता है, उसको 'विविदिषु' बोलते हैं। 'विविदिषु' का अर्थ है—

जिसमें वेदनकी इच्छा होवे। वह ज्ञानका खोजी है। वह 'अनुसन्धित्सु' है। वह अन्वेषक है। वह अद्वितीयताकी तलाशमें है। ज्ञानप्राप्तिके अनन्तर जो परमहंस होता है, उसको 'विद्वान्' बोलते हैं। जो विद्वान् होता है, वह प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न अद्वितीयताको जानता है।

आपको क्या बतावें? आप बड़े सुखी हैं। ईश्वर करे कि आपका सुख बना रहे। परन्तु; भोगका सुख कब तक? जब तक आपको वस्तु मिल रही है। जब तक आपकी इन्द्रियोंमें शक्ति है। हमारे पास लोग क्या बढ़िया-बढ़िया चमचम-राजभोग-रसगुल्ला लेकर आते हैं। हैं! अब हमारे शरीरमें उनको खाने-पचानेकी शक्ति नहीं है। अब हमारा शरीर शक्कर नहीं पचा सकता है। हाँ! अच्छा! बहुत लोग ऐसे हैं, जिनको रसगुल्ला-चमचम-राजभोग देखनेको ही नहीं मिलता है। हाँ! ऐसे लोग भी तो दुनियामें हैं न, जिनको वस्तुओंको देखनेको भी नहीं मिलता है। नारायण! वस्तुका अभाव हो सकता है। इन्द्रियोंमें भोगकी शक्तिका अभाव हो सकता है। मनमें रुचिका अभाव हो सकता है। ऐसी स्थिति हो सकती है कि अपना भोक्तापन जाग्रत् ही न हो। ऐसी स्थितिमें, जो लोग अपने सुखको पराधीन रखते हैं, वे भला जीवन्मुक्तिका परमानन्द प्राप्त करेंगे? सीताराम कहो। दिलमें लिखी विद्या समयपर काम देगी। पोथीमें लिखी विद्या समयपर काम नहीं देगी। हाँ! आपका अनुभव आपके काम आवेगा। यदि आप अपने सुखको पराये घरमें रखेंगे, तो आपका जीवन परमानंददायी वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकेगा। आप जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख अनुभव नहीं कर सकेंगे।

हमको एकने बताया—पतिने पत्नीको पाँच-सौ रुपया लाकर दिया और कहा कि 'इसको तिजोरीमें रखना। समयपर काम देगा।' पत्नीकी पड़ोसिन आयी। उसने कहा—'अरे! अपने घरमें मत रखो। नहीं तो, फिर तुम्हारे पति माँगकर ले जायेंगे और खो देंगे। इसको हमारे घरमें रख दो।' अब महाराज! पत्नीने वह पाँच-सौ रुपया पराये घरमें रख दिया। जब पतिको आवश्यकता पड़ी, तब उसने कहा—'मुझे पाँच सौ रुपया दे दो।' पत्नी बोली—'अच्छा! अभी लाती हूँ।' वह पड़ोसिनके पास पहुँची। पड़ोसिनने मना कर दिया। उसने कहा कि 'वह पाँच-सौ रुपया तो मैंने

ब्याजपर लगा दिया है। अब आज थोड़े ही दे सकती हूँ। कुछ समय तो प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।' जिन्होंने अपना सुख विषयोंमें रख छोड़ा है, पराये घरोमें रख छोड़ा है, अगले जन्मके लिए रख छोड़ा है, वे भला जीवन्मुक्तिका सुख प्राप्त कर सकेंगे? कदापि नहीं। बैंकमें बैलेंस (Bank-Balance) बढ़ाते जा रहे हैं कि दस-बारह बरस बाद काम आवेगा। अरे भाई! जरा सोचो। दस-बारह बरस बाद तुम रहोगे कि नहीं रहोगे? यह कानून रहेंगे कि नहीं रहेंगे? यह सरकार रहेगी कि नहीं रहेगी? यह बच्चे भी उसको भोग सकेंगे कि नहीं भोग सकेंगे? आहा! अगले जन्मके लिए इकट्ठा कर रहे हैं। शिव-शिव! जिसको यह संसारके भोग नश्वर मालूम पड़ने लगते हैं, वह संग्रह और भोगमें आसक्त नहीं होता और जीवन्मुक्तिका परमानन्द प्राप्त करना चाहता है। आप जानो कि यह संसारके भोग-वियोगवाले हैं। इन्द्रियाँ साथ देनेवाली नहीं हैं। अपने मनमें हमेशा रुचि नहीं रहेगी। अपना भोक्तापन हमेशा जाग्रत् नहीं होगा। आप यह जानो और लो जीवन्मुक्ति।

जीवन्मुक्ति माने नकद माल। उधार माल नहीं। जीवन्मुक्ति माने तुरन्त आनन्द। आप अपने आनन्दको परलोकमें मत रखिये। मरनेके बादके लिए मत रखिये। आप अपने आनन्दको पराधीन मत कीजिये। आपके हृदयमें आपका आनन्द स्वाधीन होना चाहिए। आपके हृदयमें आपके राम रहें; आपके रहीम रहें; आपका निराकार रहे। आपका सच्चिदानन्दघन अद्वितीय ब्रह्म अपने आत्माके रूपमें रहे। आहा! आओ! इस निवर्तमान चित्तमें अविद्याकी निवृत्तिमात्रसे ही उपलब्ध होनेवाला जो परमानन्द है। उसके बारेमें सुनावें। नारायण! आओ! आज हम आप सब लोगोंको परमहंसोंकी वस्तु सुनावें। आप वह परमानन्द मरनेके बाद मत लेना। दूसरे लोकमें मत लेना। आपके सामने दूसरा जन्म नहीं आवे! आपके सामने दूसरा लोक नहीं आवे। आपको किसी दूसरेका गुलाम नहीं बनना पड़े। वह परमानन्द आपका स्वरूप है। आप जहाँ बोलें, वहाँ परमानन्द। जो बोलें, सो परमानन्द। जहाँ चलें, वहाँ परमानन्द। जो करें, सो परमानन्द। आपका यह हड्डी-मांस-चामका शरीर भी परमानन्द स्वरूप है। जो राममें है, जो कृष्णमें है, जो ईसामें है, जो मुहम्मदमें है, जो साकारमें है, जो निराकारमें है, वह

परमानन्द अपने जीवनमें है। अपने जीवनमें उस परमानन्दका आविर्भाव होना चाहिए। हाँ!

आप देवताकी पूजा सीखना चाहते हैं, तो अपने पुरोहितसे सीख लीजिये। आपको श्राद्ध करना हो, तो किसी तीर्थमें जाकर कर लीजिये। आपको विषय-भोग करना हो, तो क्लबमें, होटलमें, जहाँ आपको मिले, वहाँ कीजिये। इस बातसे हमारा कोई मतलब नहीं है। हाँ! हम तो आपके भीतर, आपके अपने स्वरूपके रूपमें, जो परमानन्द है, उसका पर्दा फाड़नेके लिए प्रयत्नशील हैं। वासनाओंके कारण आप जगह-जगह भटक रहे हैं। कौड़ी-कौड़ीके लिए भटक रहे हैं। साहबके बाथरूमसे निकलनेका इन्तजार कर रहे हैं। आहा! खजानों-का-खजाना आपके पास है और आप कौड़ी-कौड़ीके लिए भटक रहे हैं? साहबों-के-साहब आप हैं और आप साहबका इन्तजार करते हैं? साहबकी गुलामी करते हैं? स्वर्ग और वैकुण्ठमें सुख डालनेवाले आप हैं और आप स्वर्ग-वैकुण्ठकी तमन्नासे ख्वाहिशसे व्याकुल हो रहे हैं?

यह 'जीवन्मुक्ति-विवेक' ग्रन्थ 'स्वामी विद्यारण्य'के द्वारा प्रणीत है। इसमें संन्यासके प्रसंगके बाद जीवन्मुक्तिका वर्णन-निरूपण है। हम आपसे आगे यह निवेदन करेंगे। जीवन्मुक्ति माने गुलामीसे छूटना। चीजोंकी गुलामीसे छूटना। आदमियोंकी गुलामीसे छूटना! लोक-लोकान्तरकी गुलामीसे छूटना। जन्म-मरणकी गुलामीसे छूटना। यह जो दिन-रात आपका अहम् बदलता रहता है, इसीका नाम पुनर्जन्म है हो! हाय-हाय! आज मैंने पाप किया, तो मैं पापात्मा हो गया। आज मैंने पुण्य किया, तो मैं पुण्यात्मा हो गया। आज सुख आया, तो सुखी हो गया। आज दुःख आया, तो दुःखी हो गया। इसीका नाम ही तो पुर्नजन्म है हो। हमसे कभी पूछना भला! आपको कभी समझनेकी जरूरत हो, तो हम आपको बतावें। आप पुनर्जन्मके चक्करमें पड़ गये हैं। हाँ! सबेरे आपने एक कुत्तेको एक डण्डा मारा, तो आप परमात्मा हो गये। उसके बाद एक कौएको एक रोटी दे दी और चींटीके बिलके सामने आटा डाल दिया, तो आप पुण्यात्मा हो गये। हैं? आपकी पत्नीने मुस्कराकर देख लिया, तो आप सुखी हो गये। आपके बच्चेने आपकी बात नहीं मानी, तो आप दुःखी हो गये। यह जो आपका

अहं दिन-भरमें पचहत्तर मर्तबा बदलता है, इसीका नाम पुनर्जन्म है। पापात्मा होना एक जन्म है। पुण्यात्मा होना दूसरा जन्म है। सुखी होना तीसरा जन्म है। दुःखी होना चौथा जन्म है।

देखो! इस अहंकी एक निष्ठा होती है। जब वह पराकाष्ठापर पहुँच जाती है, तब अपने स्वरूपको नहीं बदलती है। इस बदलते हुए अहंको स्वरूप-निष्ठ करो। 'मैं असंग-अद्वय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा हूँ'-यह स्वस्वरूपनिष्ठा है। यह अहंके पर्देको फाड़कर अद्वितीयताके आवरणका भंग है। आप देखेंगे कि उसमें आप न कभी पुण्यात्मा होंगे, न कभी पापात्मा होंगे, न कभी दुःखी होंगे, न कभी सुखी होंगे, न कभी पराधीन होंगे; और, न कभी आवागमनी होंगे। हाँ! आपका यह जीवन ही परमानन्द और परम-ज्ञानसे भर जायेगा। आप यहीं-अभी-यह जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख अनुभव करेंगे। हम आपको कलसे यह जीवन्मुक्ति-विवेक ग्रन्थ क्रमसे सुनाना प्रारम्भ करेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## 3

### नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

पहले चार प्रश्न लेते हैं। जीवन्मुक्ति क्या है? जीवन्मुक्ति होती भी है कि नहीं होती है? उसके होनेमें प्रमाण क्या है? यदि होती है, तो उसके होनेका उपाय क्या है? चौथी बात यह उठायी जाती है कि यदि जीवन्मुक्ति हो भी गयी, तो उससे किस प्रयोजनकी सिद्धि होती है?

गाँवमें एक कहावत है। हमारे पुरबिया गाँवमें खास करके। उसको बोलते हैं–'भेड़ियाधसान्।' संस्कृतके पण्डितोंने भी उसको लिया है–'मेषीप्रपातान्धपरम्परा।' हाँ! एक भेड़ चलती है। उसके पीछे दूसरी भेड़ चलती है। फिर सौ भेड़ इकट्ठी हो जायें। हजार भेड़ इकट्ठी हो जायें। लाख भेड़ इकट्ठी हो जायें। बिना सोचे-विचारे, अगर अगली भेड़ कुएँमें कूद पड़े, तो उसके पीछेकी सभी भेड़ें कुएँमें गिर जाती हैं। इसको **'मेषीप्रपातान्ध-परम्परा'** बोलते हैं। होता यह है कि मनुष्यकी मनोवृत्तिमें भी कुछ-न-कुछ ऐसे पहलेके संस्कार मौजूद होते हैं कि जिस रास्तेसे एक आदमी चला, दस आदमी चले, सौ आदमी चले, हजार आदमी चले, उसी रास्तेसे वह भी बिना सोचे-विचारे चल पड़ता है। बोले–'आहा हा! यदि इस रास्तेमें कुछ होता नहीं, तो हजार आदमी इसके पीछे क्यों चलते?' यह है–**'मेषीप्रपातान्धपरम्परा।'**

आप इतिहासकी परम्परा जानते हैं। एक समय ऐसा था, जब सारे विश्वमें, कम-से-कम एशियामें, बौद्ध धर्मका बोलबाला था। क्या चीन और क्या जापान, क्या थाईलैण्ड और क्या इण्डोनेशिया। जहाँ देखो, वहाँ बौद्ध! बौद्ध! बौद्ध! बर्मा बौद्ध! सारा श्रीलंका बौद्ध! अब आज वह समय नहीं है। आज तो कम्यूनिस्ट बोलते हैं कि बौद्ध-धर्म हमारे बहुत अनुकूल है। कम्यूनिस्टोंकी अनेक शाखाएँ बौद्ध-धर्मके संस्कारसे संस्कृत होकर निकली हैं, यद्यपि वे यह बात नहीं जानती हैं कि हमारे अन्दर उनका संस्कार है। ईश्वरको न मानना। शास्त्रको न मानना। केवल लौकिक बातोंमें ही आस्था रखना। केवल बौद्ध माने बुद्धिगत अनुभवोंके आधारपर जीवन बनाना। बौद्ध शब्दका अर्थ यही है। जिसकी पहुँच बुद्धितक है, उसको बौद्ध कहते हैं। बुद्धिमें

आनेवाले विज्ञान। विज्ञान-सन्तान परम्परा। घट-विज्ञान। पट-विज्ञान। मठ-विज्ञान। प्रथम-क्षण। द्वितीय-क्षण। तृतीय-क्षण। बुद्धिमें आनेवाली, यह जो क्षण-क्षण बदलनेवाली वृत्तियाँ हैं इन्हींको सर्वोपरि अनुभव मानकर अखण्ड चेतन-अखण्ड, ज्ञान-अखण्ड आनन्दको स्वीकार न करना बौद्ध परम्परा है। शाश्वत सत्ताको-चेतन सत्ताको-अखण्ड सत्ताको, अखण्ड-विज्ञानको, अखण्ड-आनन्दको ही अस्वीकार कर देना—यह मूलतः बौद्ध-परम्पराकी देन है। अब उसमें-से और जो दूसरी बातें थीं, पुनर्जन्मवाली और लोक-लोकान्तरवाली, वह अलग छोड़ दी और स्वतन्त्र रूपसे चल पड़े। हम यह देखते हैं कि विश्वमें बौद्धोंकी संख्या बड़ी है, इसलिए बौद्ध धर्म श्रेष्ठ है। ईसाइयोंकी संख्या बड़ी है, इसलिए ईसाई-धर्म श्रेष्ठ है। मुसलमानोंकी संख्या बड़ी है, इसलिए इस्लाम-धर्म श्रेष्ठ है। मनुष्योंकी संख्यासे सिद्धान्तका निर्णय नहीं हुआ करता। यदि लोकसभाकी या विधानसभाकी सीट जीतनी हो, तो वह ज्यादा वोट मिलनेसे प्राप्त हो जाती है। वह ईमानदारीसे मिली कि बेईमानीसे—यह बात दूसरी है। तो, एक बात तो यह हुई कि सिद्धान्तका निर्णय करनेके लिए जनसंख्या नहीं देखी जाती है।

एक दूसरी बात आप सुनो। इतिहासमें कौन पहलेसे है और कौन पीछे आया? माने कालक्रममें कौन बात पहले-से चल रही है और कौन पीछे पैदा हुई? सिद्धान्तका निर्णय करनेके लिए यह नहीं देखा जाता है कि यह बात चार दिन पहले कही गयी कि चार-दिन बाद कही गयी। जो लोग इतिहास-क्रमका शोध करके वस्तु-सिद्धान्तका निर्णय करते हैं, वे लोग कालकी अनादितामें और कालकी नित्यतामें एक सेकेण्डके बराबर भी नहीं हैं। सिद्धान्तका निर्णय करनेके लिए काल-विशेषको महत्त्व नहीं देते हैं। हमने बात पहले कह दी, इसलिए हम जीत गये और इन्होंने बात बादमें बतायी, इसलिए यह हार गये। हम पहले, तुम पीछे। तुम पीछे, हम पहले। यह कालक्रमका विचार बच्चोंके क्लासमें भले हो; परन्तु, वस्तु सिद्धान्तका निर्णय करनेके लिए इसका उपयोग नहीं होता है।

एक तीसरी बात भी लो। यह बात ऊँचे स्थानपर बैठकर कही गयी और यह बात नीचे बैठकर कही गयी। यह बात मन्दिरमें बैठकर कही गयी और यह बात चण्डूखानामें बैठकर कही गयी। यह बात लेटकर बोली गयी।

यह बात बैठकर बोली गयी। यह बात खड़े होकर बोली गयी। यह बात अमुक देशमें पैदा हुई। यह बात ग्रीक देशमें पैदा हुई। यह बात यूनानमें पैदा हुई। यह बात यूरोपमें-अमेरिकामें पैदा हुई। यह बात हिन्दुस्तानमें पैदा हुई। यह बात अमुक स्थानमें पैदा हुई। यदि स्थान-विशेषको महत्त्व दे देते हैं, तो वहाँ सिद्धान्तका निर्णय नहीं होता है। सिद्धान्तका निर्णय करनेके लिए स्थानकी प्रधानता, कालकी प्रधानता, संख्याकी अथवा गिनतीकी प्रधानताका विचार नहीं होता है। इन्होंने सोनेके सिंहासनपर बैठकर और छत्र-चँवर लगाकर यह बात कही है। इसलिए, यह बात सच्ची और सिद्धान्तकी हो जाये, ऐसा नहीं होता है। सोनेके सिंहासन और छत्र-चँवरके साथ उस कही गयी बातकी सच्चाईका कोई सम्बन्ध नहीं है।

अच्छा! और सुनो। बोले—'भाई! यह बात तो अमुक व्यक्तिने कही है। अब उसकी बात तो माननी ही पड़ेगी।' तो, आप अपना एक पन्थ चला लीजिये। एक आचार्यके आधारपर पन्थ चलता है। फिरके चलते हैं। फिरकापरस्ती बढ़ती है। मजहब चलता है। बुजुर्गका नाम लेकर सत्यको प्रभावित करनेकी पद्धति दर्शनशास्त्रकी पद्धति नहीं है। देखो! यदि हम गौतमका नाम लेंगे, तो आप कणादका नाम लेंगे। हम कपिलका नाम लेंगे, तो आप पतंजलिका नाम लेंगे। हम जैमिनीका नाम लेंगे, तो आप व्यासका नाम लेंगे। यह हमने अपने छहों दर्शनोंके नाम ले लिए। आप जिनको अपने मजहबका—पन्थका आचार्य मानते हैं, उनको मानते रहिये। हम उनका नाम नहीं लेते हैं। लेकिन, केवल किसीके मुँहसे निकली हुई होनेके कारण ही बात सच्ची नहीं होती है। बात सच्ची तब होती है, जब उस बातका अर्थ सच्चा हो। जो बात कही गयी है, उसका ज्यों-का-त्यों साक्षात्कार हो। ज्यों-का-त्यों उस वस्तुका अनुभव हो। अमुक स्थानमें कहनेसे या अमुक कालमें कहनेसे या अमुक व्यक्तिके कहनेसे बातकी सच्चाईका सम्बन्ध नहीं है। मन्दिरमें कहनेसे या प्रातःकाल कहनेसे या खड़ा होकर कहनेसे या बैठकर कहनेसे या अमुकके कहनेसे बात सच्ची और सिद्धान्तकी नहीं होती है। सच्ची वस्तुके निरूपणसे बात सच्ची होती है। मेषीप्रपातान्ध परम्पराका अर्थ यह है कि एक भेड़के पीछे दूसरी भेड़। कहा कि अमुक जिसको वोट देंगे, हम भी उसको वोट देंगे। आप लोग लोक-व्यवहारमें यह

कर लीजिये कि अमुक-अमुक करोड़पति जो सौदा खरीदेंगे, वही सौदा हम भी खरीदेंगे। परन्तु, तत्त्ववस्तुका साक्षात्कार स्थानकी उपाधिके बिना, कालकी उपाधिके बिना, वक्ताकी उपाधिके बिना, वचनकी उपाधिके बिना होता है। सच्ची वस्तुका साक्षात्कार होता है और वह निरुपाधिक होता है।

आप जिस वस्तुको प्राप्त करना चाहते हैं; उस वस्तुका लक्षण क्या है? बोले-'हम सुख पाना चाहते हैं; लेकिन, इस कमरेमें ही सुख मिले, तब तो हमको चाहिए और कमरेसे बाहर मिले, तो नहीं चाहिए।' तो, आप कमरा चाहते हैं, सुख नहीं चाहते हैं। आपका इधर ख्याल नहीं गया कि आप कमरेके अन्दर कैद हो गये। बोले-'हमको सुख चाहिए; परन्तु, इतने समयमें ही चाहिए। दो घण्टेके भीतर ही चाहिए। अगर हमको दो घण्टेके भीतर सुख नहीं मिलता है, तो हमको यह दो घण्टा नहीं चाहिए।' तो, आपने अपने लक्ष्यको दो घण्टेके अन्दर बाँध दिया। अपने आपको दो घण्टेके अन्दर बाँध दिया। जैसे कमरेका बन्धन बन्धन है, वैसे दो घण्टेका बन्धन भी बन्धन है। बोले-'हमको स्त्रीसे ही सुख चाहिए। हमको पुरुषसे ही सुख चाहिए। हमको पैसेसे ही सुख चाहिए।' जब आप यह सुखके साथ बन्धन जोड़ते हैं, तब केवल वह कमरा ही नहीं बँधता है, आप भी कमरेके साथ बँधते हैं। केवल वह काल ही नहीं बँधता है, आप भी कालके साथ बँधते हैं। केवल वह वस्तु ही नहीं बँधती है, आप भी उस वस्तुके साथ बँधते हैं। आप शर्त लगाकर आनन्द चाहते हैं कि हमें स्त्रीका आनन्द चाहिए, पुत्रका आनन्द चाहिए, धनका आनन्द चाहिए, गृहका आनन्द चाहिए, शरीरका आनन्द चाहिए, मोटरका आनन्द चाहिए। आपने आनन्दके साथ जो यह 'का' जोड़ दिया-'अमुकका' आनन्द चाहिए, इसने आनन्दको बाँधकर एक घेरेमें रख दिया। अमुक कर्म करनेसे आनन्द, अमुक उपासना करनेसे आनन्द, अमुक योग करनेसे आनन्द और अमुक न करनेसे आनन्द। आप लोग समझते होंगे कि करनेमें तो बड़ा परिश्रम होता है; लेकिन, न करनेमें तो कोई परिश्रम नहीं होता होगा। आप जरा कभी पाँच-दस मिनट हाथ-पाँव हिलाये बिना बैठनेकी कोशिश कीजिये, तब मालूम पड़ेगा। सुननेमें बात बहुत मीठी है। न करना, न करनेसे मिलता है। न करनेमें अपने कर्त्तृत्वको जोड़ना पड़ता है। हाथ-पाँव बाँधकर बैठ जाना या सीधे बैठ जाना। हैं? आपने गीतामें पढ़ा है ना?

**कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।**
**स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।**
(गीता 4.18)

कर्म करते हुए भी अकर्म रहा जा सकता है। हाथ-पाँव बाँधकर, सिद्धासन लगाकर, पाँव गोदमें रखकर, पीठकी रीढ़ सीधी करके, आँख बन्द करके, अधखुली आँख करके बैठनेमें भी परिश्रम होता है। देखो! वैसी स्थिति बनानी पड़ती है और वैसी स्थिति बनानेके लिए श्रम करना पड़ता है। जिस समय आप शरीरसे, प्राणसे, मनसे कुछ न करके बैठते हैं, उस समय कर्म न करनेका आग्रह रखना पड़ता है और उसको रखनेमें भी परिश्रम होता है। तो, वहाँ भी बन्धन हो जाता है।

**कर्मणि अकर्म यः पश्येत् अकर्मणि च कर्म यः।**
**स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।**

जीवन्मुक्ति क्या है? पहले आप जीवन्मुक्तिका एक बहुत व्यावहारिक लौकिक अर्थ समझिये। आपके रोज काममें आनेवाला अर्थ समझिये। आपके जीवनमें ऐसी कोई आदत नहीं होनी चाहिए कि इसके बिना मैं नहीं रह सकता। 'जीवन' शब्दका अर्थ है—जीवित रहते हुए। 'मुक्ति' शब्दका अर्थ है—छुटकारा। 'जीवन्मुक्ति' माने जीवित रहते हुए अनात्म-वर्गके किसी भी पदार्थके साथ अपनेको न बाँधना। गंगाजीको बहने दो। घड़ीको चलने दो। गंगाजी हिमालयसे निकलती हैं और समुद्रमें जाकर मिलती हैं। गंगाजीको बहने दो। घड़ीकी सूई घूम-फिरकर बारहपर आ जाती है। सूर्योदय और सूर्यास्त होता है। पौधा उगता है और मुरझाता है। पेड़ उगता है और कटता है। यदि आप अपनेको संसारकी किसी भी परिस्थितिसे उलझा देते हैं, तो निश्चय रखिये कि वह परिस्थिति आपको नहीं उलझाती है; अपितु, आप अपनेको परिस्थितिके साथ उलझाते हैं। आप अपनेको स्थानके साथ, कालके साथ, व्यक्तिके साथ, कर्मके साथ, भोगके साथ बाँधते हैं। आप जीवन्मुक्तिका बिलकुल लौकिक अर्थ समझिये। पहले तो खुद बाँधते हैं और फिर, उसके बिना छटपटाते हैं। स्वयं अपने आपको जिसके साथ बाँधते हैं, उसके साथ बन्धनको उत्पन्न करते हैं। फिर, बन्धनमें पड़कर छटपटाते हैं। और फिर, बन्धनसे छूटनेके लिए व्याकुल होते हैं।

दुनियामें जितने दुःख हैं, वे सब-के-सब दुःख अपने बनाये हुए हैं। पहले यह बात समझनी पड़ेगी। अपने मनसे, अपने आपसे बनाये हुए दुःख हैं। इसीलिए, यह बात जोर देकर कही जा सकती है कि अपने बनाये हुए दुःख आप स्वयं मिटानेमें समर्थ हैं। आप अपने इस सामर्थ्यको मत भूलिये कि जिसको आपने पकड़ा है, उसको आप छोड़ भी सकते हैं। अपने जीवनमें इस सामर्थ्यको जाग्रत् कर लेना कि जैसे हमने पैसा कमाया है, वैसे ही हम इसको खर्च सकते हैं। जैसे हमने अपने पाँवमें बेड़ी और हाथमें हथकड़ी डाली है, वैसे ही हम इस हथकड़ी-बेड़ीको तोड़कर फेंक सकते हैं। यह सामर्थ्य आपके जीवनमें है। आप इस बातसे बिलकुल मत डरिये। जब आपने शरीर पकड़ा, तब आपके साथ जन्म और मरण जुड़े। जब आपने बाहरकी वस्तुसे प्रीति जोड़ी, तब आपके साथ संयोग और वियोग जुड़े। जब आपने अपनेको इन्द्रियोंसे एक किया, तब आपको अनुकूल-प्रतिकूल भोग आकर सुख-दुःख देने लग गये। जब आपने मनमें संस्कार बनाये, तब आपको प्रिय और अप्रियका-मोद और प्रमोदका भेद हुआ। अपने प्रियके दर्शनसे सुख हुआ। उसके भोगसे मोद हुआ। उसके शाश्वत साहचर्यसे प्रमोद हुआ। यह आपके जीवनमें आपके बनानेसे आया हुआ है।

कल हमसे किसीने कहा था कि 'महाराज! आप तो बहुत मुश्किल बोलते हैं। हम तो जानते ही नहीं कि जीवन्मुक्ति क्या होती है? 'जीवन्मुक्ति' शब्दका क्या अर्थ होता है? यह हमको नहीं मालूम है और आप जीवन्मुक्ति-जीवन्मुक्ति करते हैं।' देखो! मुक्ति माने छुटकारा। जीवन्मुक्ति माने दुःखसे छुटकारा। नासमझीसे छुटकारा। जन्म-मरणके भयसे छुटकारा। लोक-परलोकके गमनागमनके भयसे छुटकारा। जीवन्मुक्ति माने आप नरक जानेके डरसे और स्वर्ग जानेके लोभसे छूट जायेंगे। जीवन्मुक्ति माने मनके विक्षेप और समाधिके भेद-श्रमसे आप छूट जायेंगे। जीवन्मुक्ति माने आप विमानपर बैठ करके वैकुण्ठ जाना चाहते हैं और विमानका किराया देनेके लिए आपके पास पैसा नहीं है। आहा! यही तो चाहते हैं ना कि हमारे साथ रियायत की जाये। किराया चुकाये बिना हम विमानपर बैठें और वैकुण्ठ-सरकारके अनुग्रहसे यहाँसे वैकुण्ठ पहुँच जायें।

आप यही चाहते हैं ना कि हम दुनियाकी इतनी चीजें इकट्ठी कर लें-

इतनी चीजें इकट्ठी कर लें कि हमको कभी किसी वस्तुका अभाव ही न मालूम पड़े। आप दुनियाकी चीजोंको इकट्ठी करके सुखी होना चाहते हैं। आप दुनियाके लोगोंको अपना महबूब बनाकर-प्यारा बनाकर-माशूक बनाकर और उनके आशिक होकर सुखी होना चाहते हैं। आप पैसा इकट्ठा करके सुखी होना चाहते हैं। जीवन्मुक्ति शब्दका अर्थ यह है कि आप आनन्दसे जीते रहिये और आनन्दसे जीने दीजिये। आप दुःखसे-नासमझीसे और जीवन-मरणके भयसे छूट जाइये। आपके जीवनमें मस्ती आ जाये। 'खुर्जा'के एक बड़े अच्छे समझदार सेठ थे। जब 'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज' चलते थे, तब वह सेठ कहते थे कि यह 'मस्तीकी चाल। आहा! अरे! किसीको चलता-फिरता ब्रह्म देखना हो, तो वह श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजका दर्शन कर ले। सचमुच, उसको चलते-फिरते ब्रह्मका दर्शन हो जायेगा।'

आप देखो! जब आपकी आँख झपक जाती है, तब आपको नींद आती है। जब आपकी बुद्धि असावधान हो जाती है, तब आपके जीवनमें दुःख आता है। आप जरा ज्ञानकी उन्मुखताको तो देखिये। आपके मुँहपर कभी मुस्कान आती है कि नहीं? यह कहाँसे आती है? गुलाबमें-से? आप गुलाबका फूल देखते हैं और वह आपके होठोंमें मुस्कराहट डाल देता है? यह ख्याल गलत है। आपके होठोंपर मुस्कान आपके भीतरसे आती है। यह आनन्दकी उन्मुखता है। जब आप सजग होकर देखते हैं, तब क्या सामनेवाली चीज आपकी आँखोंको उन्मुख बनाती है? कहा कि नहीं। आपके ज्ञानकी एक तरंग-एक लहर आपकी आँखोंमें-से निकलती है। जिस तरहसे प्रकाशकी एक रोशनी-टॉर्चकी एक रोशनी निकलती है, उस तरहसे आपके हृदयमें जो प्रेम और ज्ञानका खजाना है, वह एक बार आँखोंसे बरस जाता है। आप यह मत समझिये कि आपने जो लड़का देखा है या लड़की देखी है या सिनेमाके पर्देपर जो दृश्य देखा है, उसने आपकी आँखोंमें चमक दी है। आप यह मत समझिये कि आपके होठोंपर जो मुस्कान आयी है, वह मुस्कान गुलाबकी कलीमें-से आयी है। आँखोंमें जो चमक आती है, वह आपके हृदयमें-से आती है। होठोंपर जो मुस्कान आती है, वह आपके हृदयमें-से आती है।

जीवन्मुक्ति' शब्दका अर्थ क्या है? 'जीवन्मुक्ति' शब्दका अर्थ है कि आप अपने ही मालको उधारका माल समझकर-अपनी ही सम्पदाको कर्जकी सम्पदा समझकर दुःखी न हों। आप समझते हैं कि गुलाबने हमारी नाकको सुख दिया है। असलमें, आपके भीतरका जो सुख है, वह उन्मुख होकर नाकमें आया। आपके अन्दरका जो रस है, वह उन्मुख होकर जिह्वामें आया। आपके भीतर जो ज्ञानकी चमक है, वह उन्मुख होकर आँखोंमें आयी। आपके भीतर जो ज्ञान है, उसने शब्दोंको सुनके उसमें-से मतलब निकाला। आप अपने आपको शब्दोंके बन्धनसे, स्पर्शोंके बन्धनसे, रूपोंके बन्धनसे, रसोंके बन्धनसे, गन्धोंके बन्धनसे, वस्तुओंके बन्धनसे, व्यक्तियोंके बन्धनसे, सम्बन्धोंके बन्धनसे, मान्यताओंके बन्धनसे, कल्पनाओंके बन्धनसे बाँधकर रखते हैं और इस बन्धनके कारण रात-दिन दुःखी हो रहे हैं। उस दुःखसे, उस नासमझीसे, उस भयसे, उस भेद-भावनासे, उन झूठी मान्यताओंसे, उन भूल भरी कल्पनाओंसे छूटनेका जो जीवन है, उस जीवनका नाम ही तो जीवन्मुक्ति है।

आप 'जीवन्मुक्ति' शब्दका अर्थ समझिये। आप लोगोंको अंग्रेजी शब्द तो बहुत ही जल्दी याद हो जाता है। यदि हमको मालूम होता कि जीवन्मुक्तिको अंग्रेजीमें क्या बोलते हैं, तो हम आपको जरूर बता देते। आप उसको याद भी रख लेते; क्योंकि, आप लोगोंको संस्कृत भाषाके शब्दको याद रखनेमें तकलीफ पड़ेगी। हैं? यह 'जीवन्मुक्ति' शब्द भारतीय भाषामें है। संस्कृत भाषाका शब्द है। यह हिन्दुस्तानी शब्द है। हाँ! तो, इसको याद रखनेमें आपको तकलीफ होगी; लेकिन, मजबूरी यह है कि हमको मालूम नहीं है कि अंग्रेजी भाषामें जीवन्मुक्ति किसको कहते हैं? अच्छा! देखो! यह अंग्रेजीमें कुछ बोल रहे हैं। लो! अब आपको मालूम पड़ गया, परन्तु, अब भी हम उसको समझ नहीं सकते। याद भी नहीं कर सकते। बोल भी नहीं सकते। आपको और क्या बतावें? हम उसको जीवन्मुक्ति बोलते हैं। उसकी पहचान यही है कि आपके मनसे ये चार बातें निकल जायें कि अपनेसे अन्य जो भी मालूम पड़ रहा है, वह बना रहे; वह दीखता रहे; वह हमको सुख देता रहे; और, वह सच्चा है। आप जियें; आप जागें; आप सोयें; आप काम करें; लेकिन, आपके मनसे कल्पनाके ये चारों

प्रकार निकल जायें। हाँ! जो अपनेसे अतिरिक्त दिख रहा है, वह सच्चा है; वह बना रहे; वह मालूम पड़ता रहे; और, वह हमको सुख देता रहे–यह जो अपने आत्मासे अतिरिक्तके सम्बन्धमें आपके मनमें कल्पना भरी है, वह निकलनी चाहिए। ये चारों कल्पनायें भूलसे पैदा हुई हैं और भूल आपके अपने स्वरूपके अज्ञानसे पैदा हुई है।

देखो! आपके अन्दर न केवल होठोंपर मुस्कान लानेकी ताकत है; आप तो स्वयं माधुर्य हैं। हमने सुना है–कभी काम तो नहीं पड़ा है–कि कोई 'ब्यूटी हाऊस' (Beauty House) होते हैं। उसमें मुस्कराना सिखाया जाता है। होंठ किस कोणपर होना चाहिए? कितना मुस्कराना चाहिए? गालपर कितनी लाली आनी चाहिए? वह तो पहलेसे रंगकर रखते हैं। सच्ची थोड़ी आती है। हाँ! होठोंपर कितनी खिलावट आनी चाहिए? दाँत दिखने चाहिए कि नहीं दिखने चाहिए? आवाज निकलनी चाहिए कि नहीं निकलनी चाहिए? अगर आवाज मर्यादाके बाहर हो जाये, तो वह 'ऐटीकेट' (Etiquette) के खिलाफ हो जाये। है ना? हम आपको यह बताना चाहते हैं कि जैसे आप अपनी बाहरी सुन्दरताके लिए मुँहपर मुस्कान लाना जरूरी समझते हैं; दूसरोंसे मिलते समय–बातचीत करते समय मुँहपर मुस्कान लाना और आँखोंमें चमक लाना जरूरी समझते हैं, वैसे, आप अपनी भीतरी सुन्दरताके लिए अपने दिलमें भी मुस्कान और चमक लाना जरूरी समझिये। जीवन्मुक्तिका अर्थ है कि प्रत्येकसे व्यवहार करते समय आपका दिल मुस्कान और चमकसे भरपूर हो। आप अपने दोस्तके मिलनेपर जैसे मुस्कराते हैं, वैसे मुस्कान आपके दिलमें आजाये। अपने प्रियतमको देखकर आपकी आँखोंमें जैसी चमक आती है, वैसी चमक आपके दिलमें आजाये। वह चमक–वह मुस्कान जीवन्मुक्ति है। हाँ! आप होंठोंकी मुस्कान सीखते हैं। दाँतोंकी मुस्कान सीखते हैं। गालोंकी मुस्कान सीखते हैं। नाककी मुस्कान सीखते हैं। आँखोंमें भी मुस्कराहट आती है और आप आँखकी मुस्कान सीखते हैं। हम कहते हैं कि यह जीवन्मुक्ति आपके दिलकी मुस्कान है।

आपका दिल ऐसा रहे कि उसमें-से हमेशा आत्माकी चमक जाहिर हो। आपका दिल ऐसा रहे कि उसमें-से हमेशा आत्माकी सुकुमारता जाहिर हो। आत्मामें ऐसी सुगन्ध है, जो दुर्गन्धसे मिश्रित नहीं है। आत्मामें ऐसा रस है, जो

कड़वाहटसे मिला हुआ नहीं है। आत्मामें ऐसा सौन्दर्य है, जिसमें कुरूपताका मिश्रण नहीं है। आत्मामें ऐसी सुकुमारता है, जो कभी कठोर होती ही नहीं। आत्मामें ऐसा मधुर-संगीत है, जिसमें कभी कटु-वाणीका उदय होता ही नहीं। आत्मामें ऐसा प्यार है, जो मनसे कभी हटता नहीं। आत्मामें ऐसा ज्ञान है, जो कभी सोता नहीं। आत्मामें ऐसा आनन्द है, जो आपको छोड़कर कभी जाता नहीं। अच्छा! भला बताओ! वह आनन्द कौन है? वह ज्ञान कौन है? वह संगीत कौन है? वह सुकुमारता कौन है? वह सौन्दर्य कौन है? वह माधुर्य कौन है? वह सौस्वर्य कौन है? वह आप हैं। हाँ! आप ही हैं। आपका सौन्दर्य-माधुर्य-सौकुमार्य-सौस्वर्य इस जीवनमें जाहिर हो। जैसे आप हैं, वैसे इस शरीरके यन्त्रके द्वारा जाहिर हों। जैसे सूर्य चमकता रहता है, जैसे गुलाब अपनी सुगन्ध बिखेरता रहता है, वैसे आप अपने आपको इस उपाधिके द्वारा जाहिर होने दें। दरअसल, जैसे आप हैं, वैसे आप इस शरीर उपाधिके द्वारा जाहिर हों। मरनेके बाद नहीं। जीवन कालमें ही। हम विदेहमुक्ति वाली बात नहीं करते हैं। हम जीवन्मुक्तिकी बात करते हैं। मरनेके बाद जो मुक्ति होती है, उसका नाम 'विदेह-मुक्ति' होता है।

दरअसल, जैसे आप हैं वैसे आप इस उपाधि-यन्त्रके द्वारा जाहिर हों। आपके आत्माकी निर्भयता इस जीवनमें जाहिर हो जाये। आपके आत्माकी ज्ञानस्वरूपता इस जीवनमें जाहिर हो जाये। आपकी चमक इस जीवनमें जाहिर हो जाये। आपका आनन्द इस जीवनमें जाहिर हो जाये। एकके लिए नहीं। दो के लिए नहीं। चारके लिए नहीं। सबके लिए। आप सबको अपने आनन्दसे तर कर दीजिये। अपने ज्ञानसे प्रकाशित कर दीजिये। अपनी सत्तासे अनुप्राणित कर दीजिये। अपनी सुगन्धसे भर दीजिये। अपनी मधुरतासे भरपूर कर दीजिये। अपनी सुन्दरतासे प्रसन्न कर दीजिये। अपनी सुकुमारतासे गुदगुदा दीजिये। अपने संगीतसे सबके आनन्दको जगा दीजिये। जीवनकालमें ही यह जो आत्माकी व्यावहारिक उन्मुखता है, उसका नाम 'जीवन्मुक्ति' होता है। माने इसी अन्तःकरणके द्वारा-इसी आँख-नाक-कानके द्वारा आत्माके स्वरूपका दुनियामें-व्यवहारमें-लोक-व्यवहारमें जाहिर होनेका नाम जीवन्मुक्ति होता है।

आप जीवन्मुक्ति शब्दका अर्थ समझिये। जीवन्मुक्ति माने उस

कलाकी पूर्णता, जिससे यह मनुष्य जीवन सफल और सार्थक हो जाता है। जीवन्मुक्ति माने व्यवहारकी वह कला–जीवनकी वह कला–जीवनकी वह वैदग्धी–जीवनका वह कौशल–जीवनका वह नैपुण्य, जिसमें चलनेमें सच्चिदानन्द आजाये। आपके पाँवकी ध्वनिमें सच्चिदानन्द आजाये। आपके हाथमें सच्चिदानन्द आजाये। आपके कानमें सच्चिदानन्द आजाये। आपकी वाणीमें सच्चिदानन्द आजाये। इस व्यक्तिगत शरीर रूप उपाधिमें सदानन्दको - चिदानन्दको - अनन्तानन्दको जाहिरकर लेनेका नाम जीवन्मुक्ति है। इस व्यक्तिगत शरीर रूप उपाधिमें ब्रह्मसत्ताको, ब्रह्मज्ञानको, ब्रह्मानन्दको जाहिर कर लेनेका नाम जीवन्मुक्ति है। इस जीवनमें ही सच्चिदानन्दकी अभिव्यक्तिका नाम जीवन्मुक्ति है।

यह जीवन्मुक्ति-विवेक आपको वह कला–कौशल, वह युक्ति–उपाय, वह शृंगार–सामग्री प्रदान करता है, जिसमें-से आपके जीवनकी साज-सज्जामें, सजावट–बनावटमें, शोभामें अभिवृद्धि हो। विलायतसे जो शृंगार करनेकी सामग्री आती है, उसपर सरकार कभी रोक लगा देती है। कभी 'टैक्स' (Tax) बढ़ा देती है। यदि वह यहाँ नहीं मिलती है, तो बेचारोंको चोर–बाजारसे खरीद–खरीदकर लाना पड़ता है। चोरी करनी पड़ती है। जीवन्मुक्ति-विवेक माने आपके इस जीवनको सँवारनेका तरीका। आप केवल अपनी समझदारीसे ही अपने जीवनमें परमसुख–सच्चासुख प्रकटकर सकते हैं। जीवन्मुक्ति विवेक माने जीवनको सँवारनेकी कलाकी शिक्षा, जिससे आप अपने जीवनमें परमानन्द प्रकट कर सकते हैं। यह जीनेवालेके लिए है। आधुनिकतम प्रसाधन–सामग्री किसके लिए है? गाँवमें–शहरमें शृंगार करके निकलनेवाली स्त्रीके लिए। आजकल 'मैच' (Match) करते हुए शृंगारकी प्रधानता है ना? जैसी साड़ी, वैसी जूती, वैसी बिन्दी। है कि नहीं? विदेशी लोग रंग–बिरंगा पहनते हैं, हमारे एक मित्र हैं। उनके यहाँसे मखमलका निर्यात होता है। जैसे पहले हम लोगोंके यहाँ कपड़ेमें पैबन्द लगाते थे ना, वैसे तरह–तरहके रंगके कपड़े एकमें जोड़कर फिर उनका निर्यात करते हैं। रंग–बिरंगा मखमल विदेशमें भेजते हैं। आपके हृदयमें छिपी हुई जो सामग्री है, वह शृंगार–सामग्री भीतरसे निकालना है। वह साड़ी निकालना, जो घरमें रखी हुई है, जो आज बाजारमें नहीं मिल

सकती। सचमुच आधुनिकतम प्रसाधन सामग्री है। आपके कपड़ेके लिए नहीं। रंगके लिए नहीं। यह जीवनके शृंगारकी शाश्वत सामग्री। नासमझीकी नहीं, समझदारीकी। चोरीकी नहीं, अपनी। उधार ली हुई नहीं। हमने देखा है। घरमें एक साड़ी रखते हैं—एक रंगकी और एक ढंगकी। घरमें चार आदमी हैं। उसको बारी-बारीसे पहनकर चारों निकलते हैं। देखनेमें लगता है कि इनके घर हरेक आदमीके पास ऐसी साड़ी है। उधार ली हुई नहीं। चोरी की हुई नहीं। बेईमानी की नहीं। ईमानदारीकी। अपनी जो सच्ची चीज आपके भीतर बैठी हुई है। आपको मालूम नहीं है।

आपके मनके एक कोनेमें साकेत-लोक है और उसमें रामराज्य है। आपके मनके एक कोनेमें गोलोक है और उसमें श्रीकृष्णकी रास-लीला होती है। आपके मनके एक कोनेमें शिव-लोक है, जहाँ गौरी-शंकर विहार करते हैं। आपके मनके एक कोनेमें सिद्ध-लोक है, जिसमें सनत्कुमार ध्यान करते हैं, और जिसमें नारद वीणा बजाते हैं। आपके मनके एक कोनेमें ब्रह्मा सृष्टि बनाते हैं। आपके मनके एक कोनेमें विष्णु सृष्टिकी रक्षा करते हैं। आपके मनके एक कोनेमें रुद्र सृष्टिका संहार करते हैं। आपके मनके एक कोनेमें ईश्वर इस सृष्टिको बनाता है। आपके मनके एक कोनेमें ईश्वर रहता है। आपने तो ऐसा-ऐसा खजाना अपने भीतर छिपा रखा है। आपके पास ऐसी-ऐसी पोशाकें हैं कि आप गोलोकका पोशाक पहन लीजिये—देखिये रासलीला होने लगेगी। आप साकेत-लोकका पोशाक पहन लीजिये, रामराज्य हो जायेगा। आप वैकुण्ठ-लोकका पोशाक पहन लीजिये। यह सब आपकी पोशाकें हैं। आपकी शृंगार-सामग्री है। पोशाकको उपाधि बोलते हैं। हमको नहीं मालूम है कि उपाधिका अंग्रेजी शब्द क्या होता है? जब हम उपाधि शब्द बोलते हैं, तब हमारे मित्र लोग उसका अंग्रेजीमें अनुवाद भी कर देते हैं। हमको तो अभीतक यह नहीं मालूम है कि धर्म शब्दके लिए अंग्रेजीमें क्या शब्द है?

एक आचार्यके द्वारा, एक देशमें, एक कालमें चलायी हुई कुछ मर्यादाओंका नाम धर्म नहीं होता है। एक देशमें, एक समयमें पैदा होकर, एक व्यक्तिने कुछ मर्यादायें प्रचलित कर दी और उस व्यक्तिके द्वारा प्रचलित की हुई मर्यादाओंका नाम धर्म होता है। संस्कृतमें धर्म शब्दका अर्थ ऐसा नहीं है।

हमको तो आजतक किसी अंग्रेजीदाँने यह नहीं बताया कि संस्कृतमें जो धर्म शब्द है, उसके अर्थमें अंग्रेजीमें कौन-सा ठीक-ठीक शब्द हैं? मजहबका नाम-फिरकाका नाम-मतका नाम पन्थका-नाम धर्म नहीं है। वेदान्त मत नहीं है। यह अमत है। जीवन्मुक्ति मत नहीं है। यह अपने अमत स्वरूपका प्रकाश है। यह बिलकुल गैरमजहबी है। यह बिल्कुल लामजहब है। यह राष्ट्रीयता नहीं है। ज्ञात और अज्ञात दोनों विश्वमें रहते हैं। उसका अपने जीवनमें जाहिर होना है। लेकिन, बड़ी-बड़ी बातें ध्यानमें नहीं आती हैं।

आप कम-से-कम यह समझ लें कि आपके जीवनमें आनन्द रहे। आपका दिल मुस्कराता रहे। इसकी कला सीखनेके लिए आपके दिलमें समझदारी बनी रहे। नासमझी न आवे। आपके दिलमें निर्भयता बनी रहे। भय न आवे। आप अपने जीवनको कहीं विरोधमय-संघर्षमय न बना लें। यह जो 'हार्ट' की बीमारी होती है ना-यह जो हार्द रोग होता है, ईश्वर करे किसीको न हो। हमको यह बात मालूम पड़ती है कि संसारी लोगोंके हृदयमें संघर्षका-विरोधका जो सामर्थ्य है, वह हार्टका रोग होनेपर क्षीण हो जाता है। यह ईश्वरका बड़ा भारी अनुग्रह है। सच्चिदानन्दका प्रकाश है। अगर संघर्ष करोगे, तो तुम्हारा दिल उत्तेजित हो जायेगा। दूसरे लोग परस्पर विरोध करते हैं, तो उससे भी धड़कन बढ़ती है। हम तो कहते हैं कि अपने जीवनमें यह ईश्वरका एक प्रकाश है कि हम निर्विरोध जीवन-अविरोध जीवन-अनिरोध जीवन व्यतीत करें। हमें किसीको रोकनेकी कोई जरूरत नहीं है। किसीके विरोधकी जरूरत नहीं है। किसीके निरोधकी कोई जरूरत नहीं है। किसीके अनुरोधकी—मनानेकी जरूरत नहीं है। हैं? हाँ! ऐसे जो सच्चिदानन्दघन-अद्वय-निर्भय-ज्ञानस्वरूप-आनन्दस्वरूप-अविरोध जीवनका प्रकाश है, वह जीवन्मुक्ति है। जीवन्मुक्ति माने एक अच्छा जीवन व्यतीत करनेकी स्थिति। उसकी कला सीखनेके लिए यह प्रसंग जीवन्मुक्ति-विवेकमें उपस्थित किया जाता है। यह जीवनकी एक कला है। हम आपको अभी इसको धीरे-धीरे सुनावेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## 4

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!**

चार प्रश्न उठाये। जीवन्मुक्तिका स्वरूप क्या है? जीवन्मुक्तिमें प्रमाण क्या है? जीवन्मुक्तिका साधन क्या है? जीवन्मुक्तिका प्रयोजन क्या है?

हम पुराने ढंगके लोग नयी भाषा तो जानते नहीं। कल मैंने आप लोगोंके सामने यह बात कह दी कि मुझे यह मालूम नहीं है कि 'जीवन्मुक्ति' शब्दके बदलेमें अंग्रेजीमें किस शब्दका प्रयोग किया जा सकता है? तो, कई लोगोंने बताया कि मेरे मनमें आया कि मैं उठकर बोलूँ कि यह शब्द है–यह शब्द है। दो–चार जनोंसे चर्चा हुई। सबसे बढ़िया बात हमारे फ्लैटपर 'शर्माजी'ने बतायी। उन्होंने 'जीवन्मुक्ति' शब्दके बदलेमें दूसरा शब्द नहीं बताया; बल्कि, उसका खुलासा–उसका विवरण अंग्रेजीमें बताया। उन्होंने कहा कि असली तत्त्वको जान लेनेके बाद ज्ञानी पुरुषकी जो पक्की सिद्ध मनःस्थिति होती है, उसको जीवन्मुक्ति कहते हैं। उन्होंने हमको कुछ इसीसे मिलती-जुलती बात अंग्रेजीमें कहकर बतायी। उसको भी हम अपनी बोलीमें ले लेते हैं।

बात तो यह है कि वैदिक–वाङ्मयसे ही पहले यह मतभेद रहा है कि जीवित पुरुषके जीवनसे दुःखोंको मिटाया जा सकता है कि नहीं? अब हम वेदसे पुराना कोई इतिहास सुना नहीं सकते; क्योंकि, विश्वके ग्रन्थालयोंमें जो सबसे पुरानी पुस्तक मानी जाती है, वह 'ऋग्वेद' है। तो, वैदिक कालमें ही यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ था कि मनुष्य जीते जी बन्धनसे, क्लेशसे मुक्त हो सकता है कि नहीं? और, सच पूछो तो, वैदिक वाङ्मयमें ही आत्माके अस्तित्वके सम्बन्धमें भी मतभेद मिलता है। 'अस्तीत्यन्ये। नायमस्तीति अन्ये।' 'कठोपनिषद्' में यह प्रश्न आया कि मरनेके बाद आत्मा रहती है–ऐसा एक मत है और मरनेके बाद आत्मा नहीं रहती है–ऐसा दूसरा मत है। आप लोगोंमें-से तो बहुत लोग यह कठोपनिषद् पढ़ते हैं। उसमें यमराजके प्रति नचिकेताका प्रश्न ही यह है कि मृत्युके बाद आत्माका अस्तित्व है कि नहीं है? यहींसे पहली बात तो आस्तिक और नास्तिक की हो जाती है। कोई भी मजहब तब होता है, जब मरनेके बाद वह आत्माका अस्तित्व स्वीकार

करता हो अन्यथा वह मजहब ही नहीं रहता है–वह मत ही नहीं रहता है। नास्तिक मरणोत्तर आत्माका अस्तित्व नहीं मानता और आस्तिक मरणोत्तर आत्माका अस्तित्व मानता है। उसमें फिर दो भेद हो गया। पहलेसे आत्मा है–जन्म हुआ है और मरनेके बाद भी रहता है। तो, वैदिक और अवैदिक दो भेद हुए।

अवैदिकोंमें–से जैनों और बौद्धोंने यह स्वीकार किया कि आत्माका अस्तित्व पहलेसे है। जीवन कालमें है। जैन लोग मुक्तिकालमें भी आत्माका अस्तित्व मानते हैं–अलोकाकाशमें, सिद्धलोकमें। बौद्धलोग मानते हैं कि यदि निर्वाणकी प्राप्ति हो जाये, तो फिर मरणोत्तर आत्माका उच्छेद होता है। चार्वाक न तो जन्मके पहले आत्माका अस्तित्व मानता है, न ही पीछे मानता है। इसलिए, वह नास्तिक है। बौद्ध लोग जन्मसे पहले तो आत्माका अस्तित्व मानते हैं; परन्तु, मरनेके बादमें नहीं मानते हैं। बौद्ध अवैदिकोंकी कोटिमें हैं। जैन लोग जन्मसे पहले भी आत्माका अस्तित्व मानते हैं; मरनेके बाद भी आत्माका अस्तित्व मानते हैं; और, जीवन-कालमें भी आत्माका अस्तित्व मानते हैं। जैन लोग वेदके आधारपर न मानकर ब्राह्मण–सम्प्रदाय और श्रमण–सम्प्रदायका भेद कर देते हैं। उनका कहना है कि हमने अपने त्यागसे, अपने अपरिग्रहसे, अपने वैराग्यसे, अपने त्रिरत्नसे–जो वीतरागकी स्थिति प्राप्त की है, वह हमारे अभ्यासका फल है। जैन लोग ऐसा मानते हैं कि आत्मा कभी घट जाता है और कभी बढ़ जाता है। चींटीके शरीरमें आत्मा चींटीके बराबर हो जाता है। हाथीके शरीरमें आत्मा हाथीके बराबर हो जाता है। वीतराग हो जानेके बाद अलोकाकाशमें उसकी सिद्ध स्थिति होती है।

अवैदिक सम्प्रदायोंमें ईसाई और मुसलमान भी हैं। ईसाई कुछ पुराने हैं और मुसलमान उनकी अपेक्षा नये हैं। ईसाइयोंकी बीसवीं शताब्दी चल रही हैं और मुसलमानोंकी चौदहवीं शताब्दी चल रही है। ईसाई और मुसलमान–ये दोनों जन्मसे पहले आत्माका अस्तित्व नहीं मानते हैं; परन्तु, मरनेके बाद आत्माका अस्तित्व मानते हैं। कयामतके दिन तक कब्रमें रहना पड़ेगा। उसके बाद यदि वह पापी होगा, तो दोजकमें जायेगा और यदि पुण्यात्मा होगा, तो बहिश्तमें जायेगा। मुहम्मद साहब जिसकी सिफारिश

कर देंगे, वह स्वर्गमें जायेगा। उनके यहाँ केवल स्वर्ग-नरककी, बहिश्त-दोजककी बात है। उनके यहाँ मुक्तिकी चर्चा है ही नहीं। इसीसे, यदि आप ईसाई भाषामें या इस्लाम भाषामें या अंग्रेजी भाषामें 'मुक्ति' शब्दका पर्याय ढूँढ़ने लगें, तो आपको नहीं मिलेगा। उनके प्राचीन साहित्यमें मुक्ति मानी ही नहीं जाती थी, तो भला वे क्या बतावें कि मुक्ति किसको कहते हैं? उनके प्राचीन साहित्यमें मुक्तिका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया जाता था। अतः उनके यहाँ उसके प्रयोगके लिए कोई शब्द नहीं था।

अब देखो! अपने वैदिकोंकी चर्चा करते हैं। वैदिकोंमें न्याय और वैशेषिक-दोनों मानते हैं कि जीवन-कालमें दुःखोंसे सर्वथा मुक्ति नहीं होती है। वे कहते हैं कि दुःखका कारण है-जन्म। जन्मका कारण है-प्रवृत्ति। प्रवृत्तिका कारण है-दोष। दोषका कारण है-अविद्या। तो, अविद्याकी निवृत्ति होने पर रागादि दोष निवृत्त होते हैं। रागादि दोषकी निवृत्ति होनेपर प्रवृत्तिकी निवृत्ति हो जाती है। प्रवृत्तिकी निवृत्ति हो जानेपर जन्मकी निवृत्ति हो जाती है। जन्मकी निवृत्ति होनेपर दुःखोंसे छुटकारा मिलता है। जब दुःखसे लेकर अविद्या पर्यन्त-भ्रान्ति-पर्यन्त दोष मिट जायेंगे, तब मरनेके बाद आप दुःखाभावकी दशामें पहुँच जायेंगे और आपको दुःखोंसे मुक्ति मिलेगी। यह न्याय और वैशेषिक मुक्तिके सम्बन्धमें अपना विचार प्रकट करते हैं। कहीं लोगोंको समझनेमें दिक्कत न आवे। ध्यानसे सुननेपर धीरे-धीरे सब समझमें आने लगेगा।

योग और सांख्य-दोनों मानते हैं कि अविद्याकी निवृत्ति होनेपर द्रष्टा मुक्त है। द्रष्टा आत्मा जबतक शरीरमें रहता है, तबतक दो दशामें रहता है। एक, अपने स्वरूपमें स्थित और दूसरा, वृत्तिसे सारूप्य। जब द्रष्टा निरोध-दशामें अपने स्वरूपमें स्थित होता है, उस समय उसको संसारका कोई दुःख-सुख नहीं होता है। जब वह चित्तकी वृत्तियोंसे तादात्म्य करके व्यवहारमें आता है, तब उसको दुःख और सुख-दोनों ही होते हैं। एक बड़ी ही बुद्धिमानीकी बात योग और सांख्यमें है। वह यह है। आप मुक्तिके सम्बन्धमें थोड़ा-सा समझ लें। आपके बड़े कामकी चीज है। मुक्ति माने दुःखसे मुक्ति। आपके जीवनमें दुःख न हो।

एक समय ऐसा था कि व्यक्तिगत रूपसे उपनिषदोंका श्रवण-

मनन-निदिध्यासन किया जाता था। वेदोंका सामूहिक रूपसे स्वाध्याय किया जाता था। मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदके द्वारा सामाजिक जीवन चलता था। व्यक्तिशः वैराग्य होनेपर उपनिषदोंका श्रवण-मनन-निदिध्यासन करके भ्रान्तिके मूलभूत अज्ञानको निवृत्त करते थे। वस्तुतः आत्मा और ब्रह्मकी जो एकता है, उसको न जाननेके कारण ही आत्मा और ब्रह्ममें भेदकी भ्रान्ति हो गयी है। जीवके अस्तित्वको पृथक् मानना एक भूल है। इस भूलको मिटानेके लिए अलग-अलग विरक्त पुरुष-धीर पुरुष प्रत्यगात्माका ब्रह्मरूपसे दर्शन करते थे और मुक्त होते थे। यह वैदिक काल था। 'कश्चिद्धीराः।' यह कश्चिद्-कश्चिद् ध्यान देने योग्य है। **'यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।' 'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनं। आश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः।'** तो, व्यक्तिगत रूपसे जो विरक्त होता था, उसके लिए मुक्तिका मार्ग हुआ करता था। **'कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वमिच्छन्।'** उसको सद्योमुक्ति कहो। जीवन्मुक्ति कहो। विदेहमुक्ति कहो। अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्माका साक्षात्कार हो जानेसे वह समाधि कालमें और व्यवहार-कालमें सर्वथा मुक्त रहता था। यह उपनिषदोंकी शैली थी-औपनिषद शैली थी।

अच्छा! अब देखो! उपनिषदोंमें भी, जो साधनाकी शैली स्वीकार की गयी, उसमें दो प्रक्रिया प्रारम्भसे ही देखनेमें आती है। **'न वै सशरीरस्य सतः प्रिया प्रिययोः अपहर्ति अस्ति।'** जबतक मनुष्य सशरीर रहेगा, तब तक उसके शरीरके अनुकूल और प्रतिकूल भावकी-प्रिय और अप्रिय भावकी निवृत्ति नहीं हो सकती है। यह एक परम्परा रही। उसीमें दूसरी परम्परा यह रही कि यह तो ठीक है कि शरीर रहते दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती है; परन्तु, यदि अपने अशरीर स्वरूपका बोध हो जाये-यदि यह भूल मिट जाये कि हम शरीर हैं और शरीर हमारा है, तो **'अशरीरं वावसन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः।'** यह उपनिषद्की परम्परा रही कि यदि आप अपने अशरीर आत्माको जान जायें, तो संसारका प्रिय-अप्रिय आपका स्पर्श नहीं करेगा।

फिर भी, हमारे दार्शनिकोंने इसके सम्बन्धमें एक बड़ी बुद्धि प्रकट

की। उन्होंने दुःखोंको दो भागोंमें बाँट दिया। आप उसको कई तरहसे बोल सकते हैं। मुसलमान लोग उसको 'किस्मत' बोलते हैं। हम लोग बोलते हैं कि यह दुःख तो प्रारब्धसे आया है। 'प्रारब्ध' शब्दके बदलेमें किसी शब्दका प्रयोग इस्लाम धर्ममें नहीं हो सकता है हो! ईसाई और मुसलमान धर्ममें प्रारब्ध सूचक कोई शब्द हो ही नहीं सकता। हमको आप भले बता दें अंग्रेजी। है ना? अच्छा देखो! मुसलमान और ईसाई धर्ममें प्रारब्धसूचक कोई शब्द क्यों नहीं हो सकता? पूर्व जन्ममें किये हुए कर्मकी जो बहुत बड़ी राशि है, उसमें-से फलदानोन्मुख जो कर्म होता है, उसको प्रारब्ध कहते हैं। संचित कर्मकी राशि अलग है। क्रियमाण कर्मकी राशि अलग है फलदानोन्मुख कर्म की राशि अलग है। जिनके धर्ममें पूर्व-जन्म ही नहीं माना जाता है, उनके पूर्व-जन्मका कर्म प्रारब्ध बनकर कहाँसे आवेगा? इसलिए, उनकी बोलीमें प्रारब्ध बनकर कहाँसे आवेगा? उनकी बोलीमें प्रारब्ध नहीं होता।

हमारे नैयायिक और वैशेषिकोंने पूर्व-जन्म माना और कर्म-फल माना। अतः पूर्व-जन्मके कर्मका फल इस जन्ममें भोगना ही पड़ेगा—यह सिद्धान्त न्याय-वैशेषिककी दृष्टिसे अटल रहा। योग और सांख्यने इसमें बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता जोड़ी। दुःखोंका बँटवारा कर दिया। क्या बँटवारा किया? एक दुःख तो होते हैं—प्राकृत-भौतिक जगत्में और दूसरे दुःख होते हैं—केवल मानसिक जगत्में। जैसे, कल मरना है। इसमें कलका मरना तो भौतिक है; परन्तु, कल मरनेका जो आज भय है, वह मानसिक है। हमारे योग और सांख्यवालोंने कहा कि हमारे पास ऐसी साधना है—मुख्य साधनका ही नाम ले लेते हैं : धारणा-ध्यान-समाधि—कि हम मानसिक दुःखोंको दूर कर दें; परन्तु, प्रकृतिकी धारामें जैसा शरीर बन गया है और उस शरीरमें जो विकार होनेवाले हैं, उनको दूर करना हमारा काम नहीं है। उनके लिए आप आयुर्वेद-शास्त्रके अनुसार शरीरकी चिकित्सा कीजिये।

हमारे आयुर्वेदके अनुसार आयु बढ़ाई भी जा सकती है और घटाई भी जा सकती है। देखो! यह हमारे सामने बैठे हैं। यह अभी-अभी अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलनके अध्यक्षपदसे निवृत्त हुए हैं। अखबारोंमें समाचार

छपा था। मैंने पढ़ा था। तो, क्या नाम है? 'निवर्तमान'। आजकल कभी-कभी अखबारोंमें या रेडियोपर 'निवृत्तमान' शब्द छपा हुआ या सुननेको मिल जाता है। 'निवृत्तमान' गलत है। 'निवर्तमान' सही है भला! कभी-कभी 'संविधानिक' सुननेको मिलता है ना? 'संविधानिक' शब्द गलत है। 'संवैधानिक' शब्द ही शुद्ध है। जो हिन्दीका मूल है ना, वह आपको बताया। अच्छा! चरकके अनुसार औषध-सिद्धिके द्वारा शारीरिक आयुमें वृद्धि की जा सकती है। ऐसी-ऐसी सिद्धियोंका वर्णन आता है कि पारदादिके प्रयोगसे आयुको बहुत लम्बी कर सकते हैं। रससिद्धि एक पृथक् वस्तु है। औषध-सिद्धि पृथक् वस्तु है। लेकिन, हम तो चर्चा करते हैं—जीवन्मुक्ति की। जीवन्मुक्तिकी चर्चामें थोड़ा-सा इतिहासका अंश देते हैं।

जैनोंने अध्यात्मको सामाजिक रूप दिया और बौद्धोंने भी अध्यात्मको सामाजिक रूप दिया। पहले हमारा औपनिषद अध्यात्म है। **'कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानं ऐक्षत् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वमिच्छन्।'** कोई-कोई धीर-पुरुष प्रत्यगात्माको माने अपने अन्तरात्माको देखता है। अपने शुद्ध स्वरूपको किसी-किसी धीर-पुरुषने देखा और उसको अमृतत्वकी प्राप्ति हुई। अमृतत्वकी इच्छासे आत्मदर्शन करना होता है। यह उसका अभिप्राय होता है। जैनों और बौद्धोंने अध्यात्मको सामाजिक रूप दिया। ब्राह्मणोंमें वेदके आधारपर आचार-विषयक संगठन था। अध्यात्म-विद्याके लिए वे संगठनकी अपेक्षा नहीं समझते थे। उन्होंने वैदिक संगठनकी उपेक्षा करके जब अपना श्रमण-संगठन बनाया—साधक-संगठन बनाया, तब उनके पास वेदका संविधान तो था नहीं। तो, नारायण! आप्तपुरुषके वचनका संविधान। अपने-अपने तीर्थंकरोंका—वीतरागोंका संविधान। अपने-अपने बुद्धोंके द्वारा संविधान। उनके यहाँ एक-एक पुरुषके वचनसे मर्यादा स्थापित हुई। वेदोंकी जो मर्यादा थी, वह संवैधानिक थी।

आज बीसवीं शताब्दीमें जब लोग कहते हैं कि इतनी वैज्ञानिक उन्नति हो गयी है, तब सभी देशोंको—सभी राष्ट्रोंको अपने यहाँ एक पक्का संविधान बनाना पड़ता है। बिना संविधानके आज शासन नहीं चल सकता। हमारे आदि-सृष्टिके ऋषियोंने हमारी मर्यादाके लिए जो संविधान बनयाा था,

उसका नाम वेद है। ऋषियोंने वेद बनाया नहीं था। ऋषियों ने वेद-मन्त्रोंको देखा था। अर्थात् जिस प्रकारसे प्रकृतिके तत्त्वोंका उदय होता है, उसको देखा था। वेद तो विद्या है। शब्दावलिका नाम वेद नहीं है। वेद तो अर्थ-राशि है। इसलिए, उन्होंने शब्द-अर्थका सम्बन्ध नित्य माना। अर्थ ही शब्दके रूपमें उदय होता है। बौद्धोंका और जैनोंका जो समूह बना, वह आध्यात्मिक सिद्धिके लिये समूह बना-समाज बना। उसके बाद शंकराचार्य भगवान्‌ने, व्यक्तिशः उपनिषदोंमें जो आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करनेकी विद्या थी, उसको सामाजिक रूप दिया। विद्या उपनिषदोंकी और अध्यात्म-मार्गमें चलनेवाले साधकोंका संगठन शंकराचार्यका। यह दोनों दो चीज है। यह नहीं कि विद्या बौद्धोंके बादकी है। यह बात नहीं कि विद्या जैनोंके बादकी है। यह अध्यात्म-मार्गमें चलनेवाले साधकोंका संगठन जो है, वह जैन और बौद्धके अनन्तर हुआ। विद्या तो थी-उपनिषदोंकी और संगठित रूपसे साधनाकी पद्धति चली-जैन और बौद्धके अनन्तर। हाँ! तो, यह बात है।

अच्छा! अब आओ! इतिहास क्रमकी ओरसे हटकर वस्तु-सत्यके बारेमें बात करते हैं। देखो! हम काल प्रधान नहीं हैं। किस समयमें यह बात पैदा हुई? इससे हमारा कोई मतलब नहीं है। यह बात रातमें हुई कि दिनमें? चार दिन पहले कि चार दिन बादमें? इससे हमारा कोई मतलब नहीं है। यह बात बम्बईमें पैदा हुई कि श्रीनाथद्वारामें कि पण्डरपुरमें? इससे भी हमारा कोई मतलब नहीं है। इस बातको गृहस्थने पहले-पहल कहा कि संन्यासीने? इससे भी हमारा कोई मतलब नहीं है। इसकी लड़ाई तो संन्यासी-गृहस्थ लोग जब करना हो, तब करें। आपसमें जब लड़ना हो, तब लड़के तय करें। ऐतिहासिक लोग चार दिन आगेकी-चार दिन पीछेकी बात करें। भूगोलवेत्ता लोग यहाँ-वहाँकी बात करें। हमको तो सत्य की चर्चा करनी है। उस सत्यकी, जो बम्बईमें भी है और पण्डरपुरमें भी है। जो चार दिन पहले भी था और चार दिन बाद भी है। जो सत्य गृहस्थके मुखसे भी प्रकट होता है और संन्यासीके मुखसे भी प्रकट होता है। हम वस्तु-सत्यके प्रेमी हैं। हाँ! नारायण! भूगोल हमारा विषय नहीं है। इतिहास हमारा विषय नहीं है। किसी व्यक्ति विशेषको विशेष आचार्यके रूपमें स्थापित

करनेमें हमारा कोई अभिप्राय नहीं है। मुहम्मद-ईसा-बुद्ध-महावीर स्वामीमें कौन बड़ा था? और, किसके मुखसे पहले यह बात निकली? हम यह नहीं कहना चाहते हैं। हम यह कहना चाहते हैं कि सच्ची बात क्या है? हम सत्यके प्रेमी हैं।

अब देखो! जब सत्यकी बात चलती है, तब यह देखना पड़ता है कि मनुष्यके जीवनमें बन्धन है कि नहीं? हम आपको यह बतलाना चाहते हैं कि जीवन्मुक्तिका स्वरूप क्या है पहले लोगोंको यदि ठीक रास्तेपर चलाना होता, तो बड़े-बूढ़ेलोग कहते कि यदि यह काम करोगे, तो नरकमें जाओगे और यह काम करोगे, तो स्वर्गमें जाओगे। अतः तुम स्वर्गमें जानेवाला काम करो। तुम नरकमें जानेवाला काम मत करो। ऐसा समय आया महाराज! कि 'स्वामी दयानन्दजी' ने कहा कि स्वर्ग-नरक तो होता ही नहीं है। आप लोगोंने कभी सुना कि नहीं सुना? आर्यसमाजका सिद्धान्त है। उन्होंने कहा कि नरक-स्वर्ग तो होता ही नहीं है। भला बताओ! अब नरकके डरसे कोई बुरा काम कैसे छोड़ेगा? और, स्वर्गके लोभसे कोई अच्छा काम कैसे करेगा? उनको भी तो इसकी जरूरत हुई ना? उनको भी इसकी जरूरत है कि मनुष्य अच्छा काम करे।

पहले नरक और स्वर्गपर विश्वास करनेवाले लोग कोई भी काम करनेसे पहले उसकी अच्छाई-बुराईके बारेमें सोच-विचार लेते थे। पहले हमारे गाँवका काम करनेवाला आदमी कहता था-'हम मुकदमेमें झूठी गवाही कैसे करें? हम साहबके पास झूठ कैसे बोलें? हमने अपने बचपनमें ऐसी पञ्चायत देखी है कि आपको क्या बतावें? हमारे बाबा कह देते थे-'तूँ मेरे पाँव छूकर कह दे कि यह बात ऐसी है। हम तेरे मुँहकी बात मान लेंगे।' वह कहता-'महाराज! और जो कहो, सो करेंगे; परन्तु, आपका पाँव छूकर हम यह बात नहीं कहेंगे। यदि आपका पाँव छूकर यह बात कहेंगे, तो हमको नरकमें भी ठौर नही मिलेगी। आपका पाँव छूकर यह बात कैसे कहें?' देखो! समाजका एक स्तर होता है ना?

स्वामी दयानन्दजीने कह दिया कि नरक-स्वर्ग नहीं होता है; परन्तु, कर्मका फल होता है। उन्होंने कर्मका फल माना। अच्छे कर्मका फल अच्छी योनिमें जन्म होगा और बुरे कर्मका फल बुरी योनिमें जन्म होगा।

यदि ईश्वर तुम्हारे कर्मसे प्रसन्न होगा, तो हजारों-लाखों बरसके लिए तुमको अपनी छातीसे लगा करके निराकारमें लीन करके रखेगा। हाँ! तुम्हारे कर्मसे ईश्वर प्रसन्न होगा। मालिक खुश होगा। स्वामी दयानन्दजीका समाज है हो। समाज दूसरी चीज होती है। है ना? हे भगवान् उन्होंने एक सामाजिक फल दिखाया। गाँधीजीने कहा- 'देखो! यदि तुम सत्याग्रह करोगे, तो स्वराज्य मिलेगा और सत्याग्रह नहीं करोगे, तो परतन्त्रतामें ही बैठे रहोगे।' उन्होंने एक लौकिक फल दिखाया।

'जीवन्मुक्ति' शब्दका अर्थ क्या है? अब तो लोग नरक और स्वर्गका नाम सुननेको ही तैयार नहीं हैं। अब यदि हम नरक-स्वर्गका नाम लें, तो बाजारमें ये जो बड़े-बड़े समझदार व्यापारी हैं ना, वे कहते हैं कि 'आपके नरकका नाम सुनकर क्या हम अपनी आमदनीको दुगुना करना बन्द कर दें? आपके स्वर्गका नाम सुनकर क्या हम चौगुना फायदा उठाना बन्द कर दें? हमको आपका स्वर्ग नहीं चाहिए। हमको नरकका कोई डर नहीं है। यदि मरनेके बाद नरक मिलेगा, तो देख लेंगे। इस समय तो हमको नोटका बण्डल चाहिए।' है ना? यह है कि नहीं? चित्तमें यह स्थिति आ गयी। हम बोले-'देखो! जन्म-जन्म भटकते रहोगे। वे बोले-'हम भटक लेंगे। आप हमारे आगे भटकनेकी परवाह मत कीजिये। हमको तो पैसा लेने दीजिये। हमको तो भोग करने दीजिये।'

नारायण! असलमें, बन्धन कहाँ हुआ? आप बन्धनका अनुभव नहीं करते हैं। आप मनसे एक होकर नोटोंके बण्डलसे बँध गये और ऐसे बँध गये कि छूटनेकी इच्छा ही नहीं होती है। जैसे कोई पुलिससे बेपरवाह हो जाये-इनकम-टैक्स (Income-Tax) से बेपरवाह हो जाये, वैसे आप नरकसे और पुनर्जन्मसे बेपरवाह हो गये। इस बातकी कोई परवाह ही नहीं रही कि यह नोटका बण्डल हमारे पॉकेट (Pocket) में रहेगा या बैंक (Bank) में रहेगा, तो हमको दुःख देगा। आप दुःख सहकर भी नोटके बण्डलको अपनी मुट्ठीमें रखना चाहते हैं। भला बताओ! इस बन्धनका दुःख कितने लोगोंको होता है? आपतो अर्थसे-भौतिक द्रव्यसे-प्राकृत पदार्थसे बँधे हुए हैं। यदि आपको इस बन्धनसे दुःख होता, तो आप स्वयं मुक्तिका उपाय करते। जब आप स्वयं मुक्तिका उपाय नहीं करते हैं, त-

सरकारको अपनी मुक्तिका उपाय करना पड़ता है। आपने अपने आपको अपनी जिस सम्पदाके साथ बाँधा, सरकार कहती है कि अब इससे मुक्त हो जाओ। बहुत बोझ ढो चुके। है ना? हाँ। मीलों लम्बे जमीनके मालिक रह चुके। अरबों-खरबोंके मालिक रह चुके। अरबपति-खरबपति भी तो होते हैं। अब इसके साथ तुम इस प्रकार बँध गये हो कि तुम अपने बन्धनका अनुभव ही नहीं करते हो। तुम ऐसे मरीज हो गये हो, जो अपने मर्जको नहीं समझता है। हमारे बचपनमें पागलोंको खम्भेसे बाँध देते थे। जब गाँवका कोई आदमी पागल होता था अथवा औरतोंके सिरपर जब चुड़ैल आती थी अथवा भूत आता था, तब वह चुड़ैल उतारनेके लिए और वह भूत उतारनेके लिए मिर्चका धुँआ देते थे। आजकल जो लोग सम्पदासे बद्ध हो गये हैं, उन्हें बन्धनसे छुड़ानेके लिए अब कानून-पुलिस-टैक्स अफसर हाजिर हो गये हैं। तुम्हारा बन्धन कहाँ है? सम्पदामें बन्धन है। हाँ! ये कानून-पुलिस-टैक्स अफसर जबरदस्ती तुम्हारे बन्धनको काटना चाहते हैं। तुम हाय-हाय चिल्लाते रहो।

अच्छा! देखो! अर्थके साथ बन्धन और व्यक्तिके साथ बन्धन--यह दोनों क्या एक कोटिमें हैं? अपने शरीरके बाहरकी किसी वस्तुके साथ बँधनेमें और व्यक्तिके साथ बँधनेमें फरक होता है। नोट तुम्हारे साथ प्रेम नहीं करता। तुम नोटके साथ प्रेम करते हो। हीरा तुम्हारे साथ प्रेम नहीं करता। तुम हीरेसे प्रेम करते हो। परन्तु, जब दो आदमी आपसमें मिलते हैं, तब दोनोंके हृदयमें प्रीति होती है। दोनों परस्पर बँधे रहना चाहते हैं। अतएव, अर्थकी अपेक्षा व्यक्तिका बन्धन कठोर हो जाता है। दोनों एक-दूसरेको आकृष्ट करते हैं और अपनाये रखना चाहते हैं। आप देखो! हम नोटके बण्डलको फेंककर भी व्यक्तिके बन्धनको अपनाये रखना चाहते हैं। यह हमारा भाई है। यह हमारा बेटा है। यह हमारा बाप है। यह हमारी पत्नी है। यह हमारी प्रेयसी है। हाँ कि नहीं? आहाहा! पैसा छोड़ना पड़े, तो छोड़ देंगे; परन्तु, व्यक्ति और उसका सम्बन्ध अपेक्षाकृत मजबूत होता है। हमारे ब्रिटिश साम्राज्यके एक अधिकारीने एक औरतके लिए अपना राज्य छोड़ दिया। देखो! भौतिक-सम्पदा ही है। वह औरत क्या भौतिक नहीं है? हैं? अभी जिन्दा है। मरी नहीं। उस जिन्दा औरतके लिए उसने इतने बड़े ब्रिटिश

राज्यको–जिसमें उन दिनों बोलते थे कि सूर्योदय–सूर्यास्त नहीं होता है– छोड़ दिया। अब देखो! उससे भीतर आओ। बन्धन कहाँ है? अपने इन्द्रियोंके भोगका बन्धन है। उसमें धनका बन्धन नहीं है कि अपना है कि पराया? उसमें स्त्रीका भी बन्धन नहीं है कि अपनी है कि परायी? पुरुषका भी बन्धन नहीं है कि अपना है कि पराया? विवाह तो एक बन्धन है ना? विवाह तो एक मर्यादा है। सामाजिक मर्यादा है। इसमें मैं मर्यादाको आपके मनके प्यारसे थोड़ा–सा ऊपर उठाकर बताऊँगा। इसकी स्थिति बड़ी अद्भुत है।

कई दिन कह चुका हूँ कि आपके मनमें जैसे रागकी वासना रहती है, वैसे वैराग्यकी भी वासना रहती है। नदीके तलेमें जैसे कीचड़ रहता है, वैसे ही हीरे–रत्न भी रहते हैं। हमने एक बार हिमालयमें कहीं यात्रा करते समय देखा कि गंगाजीके तटपर सैंकड़ों स्त्रियाँ बालूको बार–बार धोवें। बालूको बर्तनमें ले लेवें और उसमें खूब पानी डाल–डालकर धोवें। फिर पानी और बालू निकाल देवें और फिर धोवें। मैंने पूछा–'यह क्या कर रही हैं भला?' उन्होंने बताया कि 'यह नदी जहाँसे निकलकर आती है, वहाँ सोनेकी खान है। जैसे बालूके कण बह–बहकर आते हैं, वैसे सोनेके कण भी बह–बहकर आते हैं। दिनभर पानीमें बालू छानते–छानते सोनेके कुछ ऐसे कण मिल जाते हैं, जो दिन भर की मजदूरी से बहुत ज्यादा होते हैं।' यह देखो! है ना चित्तनदीका–वृत्तिनदीका जहाँ उद्‌गम है, वहाँ सोनेकी खान भी है और जहरीली धातुकी भी खान है। हमारे आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंने कहा– 'नहीं! जहर–ही–जहर है। वहाँ विष–ही–विष है। वहाँ अमृत नहीं है। वहाँ संखियाकी खान तो है; परन्तु, अमृतकी–सोनेकी–औषधिकी खान नहीं है।' आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंने ऐसा कह दिया। यह हमारे शास्त्रके विपरीत है।

अन्तःकरणकी तहमें–वृत्तियोंकी तहमें जैसे रागकी खान होती है, वैसे वैराग्यकी भी खान होती है। वह क्यों होती है? वह इसलिए होती है कि आत्माका जो शुद्ध स्वरूप है, वह असंग है। वह असंगता जब वृत्तिमें प्रतिबिम्बित होती है, तब उसका नाम वैराग्य होता है। देखो! उस आत्माके साथ अज्ञान लगा हुआ है। उस अज्ञानके साथ जब कर्त्तापन–भोक्तापन अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित होता है, तब उसमें–से मलिन वासनाओंकी धारा

बहती है। यदि कोई आगराकी ओरसे यमुनाजीको देखे, तो उसको मालूम पड़ेगा कि कोई गन्दे पानीका नाला बह रहा है। हम ताजमहलके पास स्नान नहीं कर सकते। हम स्वयं गये थे। हमको यमुना पार करके कहीं जाना था। प्रोग्राम यह बना कि पहले ताज देख लेंगे; और, फिर व्याख्यान देकर, वहीं नावसे यमुना-पार करेंगे। ताजके पास सहेलीकी बुर्जीपर व्याख्यान था। अब महाराज! हमारा ताज देखनेका प्रोग्राम तो पूरा हो गया और व्याख्यानका प्रोग्राम भी पूरा हो गया; लेकिन, स्नानका कार्यक्रम नहीं हुआ। वहाँ यमुनाजीका पानी तो गन्दे नालीका पानी मालूम पड़ता था। जब नावसे उस पार गये, तब हिम्मत करके स्नान किया। हम कलकत्तेमें गंगा-स्नान करने नहीं जाते हैं। आपको सीधी बात बताते हैं। हम पुण्यकी प्राप्तिके लिए कलकत्तेमें गंगा-स्नान करने नहीं जाते हैं। हाँ! यह स्थिति है। अच्छा! देखो! जिस तरहसे ताजमहलकी ओरसे यमुनाजीको देखकर यह मान बैठना कि यमुनोत्रीमें गन्दे नालेका उद्‌गम है, बिलकुल गलत है, उसी तरहसे चित्तमें दुर्वासनाओंको देखकर यह मान बैठना कि चित्तकी बीजावस्थामें केवल दुर्वासनायें-ही-दुर्वासनायें भरी हैं—केवल कामनायें-ही-कामनायें भरी हैं, बिलकुल गलत है। वहाँ राग और वैराग्य दोनों ही रहते हैं। अविद्याके सहकारसे राग और असंगताके प्रकाशसे वैराग्य। प्रत्येक अन्तःकरणमें राग और वैराग्य दोनों पहलेसे विराजमान रहते हैं। आज आप इसका मूल समझ लो।

वैराग्यवाली बात तो छोड़ो। पहले हम दुःखको दो विभागोंमें बाँटते हैं। योग-दर्शनमें दो वंश-परम्परा मानी जाती है हो! एक है—मानस दुःख। इसको योगी लोग कहते हैं—प्राकृत दुःख। दूसरा है—आविद्यक दुःख। अविद्यासे अस्मिता। अस्मितासे राग-द्वेष। राग-द्वेषसे अभिनिवेश। अभिनिवेश माने हमारे सुखका साधन—यह धन, यह मकान, यह स्त्री, यह शरीर हमेशा बना रहे। यह सुखमें अभिनिवेश है। जो दुःखका साधन है—शत्रु, गरीबी, रोग—ये हमारे शरीरमें न आवें। यह दुःख-निवृत्तिका अभिनिवेश है। मैंने यह बड़ा भारी काम किया है—कर्तृत्वका अभिनिवेश। कर्मेन्द्रियोंमें—हाथ-पाँव, जीभादिमें महत्त्वबुद्धि होनेसे ऐसा होता है। भोक्तृत्वका अभिनिवेश—हमने यह-यह भोग प्राप्त किया है। ये सब

अभिनिवेशकी कक्षामें हैं हो! अभिनिवेश माने किसीमें घुसकर उसके साथ एक हो जाना। निवेश माने होता है—घुसना। वैसे तो प्रवेशकी तरह निवेश है भला! अभिनिवेशका अर्थ है—पूरी तरहसे घुस जाना। किसी चीजके साथ तन्मय हो जाना—तल्लीन हो जाना। किसी वस्तुमें मशगूल हो जाना और असलियतको भूल जाना। देहमें और देहके सम्बन्धियोंमें अभिनिवेश होनेके कारण ऐसा होता है कि जो सुख देनेवाले हैं, वे हमेशा बने रहें; जो दुःख देनेवाले हैं, वे मिट जायें; कर्मेन्द्रियोंके द्वारा यह-यह कर्म होते हैं; और, ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा यह-यह भोग प्राप्त होते रहें।

हमको आपके बीचमें बोलनेमें कोई शरम नहीं है। वैसे हमने फक्कड़ोंका सत्संग किया है; लेकिन, हमने कामशास्त्रका भी अध्ययन किया है। हमने 'वात्स्यायन'का 'कामसूत्र' पढ़ा है। जिसको संसारमें भोग-सुख माना जाता है, उसको कामसूत्रमें बाहरकी खुजलीके समान शरीरके भीतर होनेवाली खुजलीको मिटानेकी एक युक्ति बताया गया है। भीतरकी खुजलीको मिटानेकी एक युक्ति। यही कामशास्त्र है। यदि बाहर दादमें खुजली होती है, तो उसको खुजलानेमें मजा आता है। यदि भीतरकी खुजली होती है, तो भोगासक्तिका उदय होता है। उसमें भी केवल गीलेपनसे-कोमलताके स्पर्शसे-गीलेपनके स्पर्शसे होनेवाला सुख और गीलेपनके वेगसे होनेवाला सुख-इसका भी विभाग करके बताया हुआ है। यह भोगासक्ति है। अर्थासक्ति-भोगासक्ति-कर्मासक्ति-सुखासक्ति-दुःख-निवारणासक्ति—ये मानसिक रोग हैं।

योगदर्शनका यह कहना है कि प्राकृत-सृष्टिमें जो विकार होते हैं, उनके लिए तो आप चाहे औषध-सिद्धिका प्रयोग कीजिये या जन्मसे ही कोई विशेषता लाइये या तपस्या कीजिये या ईश्वर-प्रणिधान कीजिये। वह सब अलग चीज है। लेकिन, जो मानसिक दुःख है, वह समझदारीसे दूर होता है। आप अपने दुःखोंका बँटवारा कर दीजिये कि बाहरकी चीज आपको दुःख दे रही है कि आपका मन आपको दुःख दे रहा है? ईश्वर-सृष्टि दुःख नहीं देती-ऐसा वेदान्तका सिद्धान्त है। जीव-सृष्टि दुःख देती है। आप इसको 'पंचदशी'में पढ़ लीजिये। पंचदशी तो आप लोग पढ़ते ही हैं। ईश्वर-सृष्टि दुःख नहीं देती। जीव-सृष्टि दुःख देती है। प्राकृत-सृष्टि दुःख नहीं देती।

आविद्यक सृष्टि दुःख देती है। ईश्वर सम्बन्ध नहीं बनाता। जीव सम्बन्ध बनाता है। प्रकृति सम्बन्ध नहीं बनाती। मूर्खता सम्बन्ध बनाती है। अविद्या सम्बन्ध बनाती है। इसलिए प्राकृत-रोगके लिए प्राकृत-चिकित्सा करनी पड़ती है। उसमें ईश्वरानुग्रह, देवानुग्रह, गुरु-अनुग्रह, साधनानुग्रह, औषधानुग्रह–सब चलेगा। परन्तु, मानस-रोगके लिए मानस-चिकित्सा करनी पड़ती है। समझदारीसे मानस-रोग दूर होता है। इसके लिए 'जीवितः पुरुषस्य'। आप जिन्दा रहें; परन्तु सुखासक्ति, दुःखका भय, लोगोंके साथ सम्बन्ध, अपने बड़प्पनका अभिमान आपको बन्धनमें न डालें। सदा सावधान रहें और समझदारीसे जीवनका निर्वाह करें।

हमको एकने कहा–'हमको क्या समझते हो? हमने यूनिवर्सिटी (University) बनाकर रख दी है।' हाँ! ऐसे ही बोला–'हमको क्या समझते हो? जब हम 'इलाहाबाद'में जाते हैं, तब एक सज्जन हमको बताते हैं–'यह हाईकोर्टकी बिल्डिंग हमने बनायी है। जब हम 'जबलपुर'में जाते हैं, तब 'सेठ गोविन्ददासजी' बताते हैं कि 'यहाँकी यह हाईकोर्टकी बिल्डिंग हमारे पिताजीने बनवाई है–'राजा गोकुलदास'ने बनवायी है। इतना बड़ा काम किया है।' देखो! नाम लेकर बता रहा हूँ। जबलपुरमें सेठ गोविन्ददासजी दिखाते हैं कि हमारे पिताजीने यह हाईकोर्टकी बिल्डिंग बनवाई है। यह कर्माभिमान आता है। है ना? अब मान लो, अगर वर्तमान सरकार उस पुराने ढंगकी बिल्डिंगको तोड़कर नये ढंगकी बिल्डिंग बनाना चाहे, तो उनको इस बातका एक बार तो दुःख होगा। अरे! क्यों दुःख होगा? अब पिताजी भी नहीं हैं। उनकी बनवाई हुई बिल्डिंग भी पुरानी पड़ चुकी है और पुराने ढंगकी है। अब अमेरिकन शैलीकी–नये ढंगकी नई बिल्डिंग आनेवाली है। तब भला बताओ! उसके टूटनेसे क्यों दुःख होगा? बोले–'अरे! हमारे पिताजीकी कीर्त्ति नष्ट हो जायेगी।' देखो! यह दुःख प्रकृति नहीं देती है। यह दुःख ईश्वर नहीं देता है। यह दुःख अपनी भूल देती है। जीवित पुरुषका संसारकी वस्तुओंसे-व्यक्तियोंसे और अपनी मान्यताओंसे जो बन्धन है–दुराग्रह है, वह दुःख देता है।

हमारे संस्कृतिके प्रेमी लोग नाराज न हों। काठियावाड़ियो! मारवाड़ियो! गुजरातियो! सिन्धियो! हम आपसे एक बात कहते हैं। आपके

दादाजी और पिताजी जैसी पगड़ी बाँधते थे, वैसी आप स्वयं क्यों नहीं बाँधते हो? आपके पिताजी और दादाजी जैसी टोपी लगाया करते थे, वैसी आप स्वयं क्यों नहीं लगाते हो? आपके पिताजी और दादाजी जैसी टोपी लगाया करते थे, वैसी आप अपने बेटेसे लगवाके जरा देख तो लीजिये। है ना? आपका घरमें रहना मुश्किल हो जायेगा भला! यह संस्कृतियोंमें जो परिवर्तन हो रहा है, संस्कारोंमें जो परिवर्तन हो रहा है, उसको रोकनेका सामर्थ्य आपमें नहीं है। अब आप अपने पुत्रसे-अपने पौत्रसे उसके सिरपर वैसी पगड़ी नहीं बँधवा सकते, जैसी पगड़ी आपके दादाजी-आपके पिताजी बाँधते थे। आहा! नारायण! प्रकृतिमें जो परिवर्तन हो रहा है, उसको आप स्वीकार करो। यदि आप जिद्द करके चाहोगे कि यह वैसी ही रहे, तो आप इसको ज्यों-का-त्यों नहीं रख सकते हो। है ना? यदि बुद्धिका प्रयोग नहीं करोगे, तो दुःखी होओगे। समझदारीसे दुःख नहीं होता है।

अब आपको सुनाते हैं—धर्म माने क्या होता है? यह जो अर्थ-विषयक-भोगविषयक-मान्यताविषयक आग्रह है, उसको बुद्धिमें स्थान मत दो। अर्थ-स्तरपर लोभ होता है। व्यक्ति-स्तरपर-मनःस्तरपर काम होता है। मनमें लोभ-काम-क्रोधका निवास होता है कि बुद्धि इनसे अन्तरंग स्तर है। आप पाश्चात्य और प्राच्य दार्शनिकोंके मतभेदको कभी ध्यानसे देखें। आपको मालूम पड़ेगा कि पाश्चात्य-विज्ञानके अनुसार बुद्धि बाह्य पदार्थोंके अनुभवसे बनती है और हमारे प्राच्य-सिद्धान्तके अनुसार आत्माके प्रतिबिम्बनसे बुद्धि बनती है। चैतन्यकी प्रधानतासे—आत्मतत्त्वके प्रतिबिम्बनसे बुद्धि बनती है—ऐसा हमारा प्राच्य सिद्धान्त है। बाहरी पदार्थोंके अनुभवसे बुद्धि बनती है-ऐसा पाश्चात्य सिद्धान्त है।

अब देखो! आपको हम यह सुनाते हैं कि मनमें, इन्द्रियोंमें, देहमें लौकिक पदार्थोंके साथ बन्धन है। यदि आप चेतनांशकी प्रधानतासे विचार करोगे, तो बुद्धिमें जो लौकिक-पदार्थोंके साथ बन्धन-निवारणका सामर्थ्य है, वह प्रकट होगा। उसको बोलते हैं—धर्म। बुद्धिमें मनको रोकनेकी शक्ति है। इन्द्रियोंको रोकनेकी शक्ति है। कर्मको रोकनेकी शक्ति है। धनके लोभको रोकनेकी शक्ति है। व्यक्तियोंके कामको रोकनेकी शक्ति है। यह जो दुनियामें बन्धन है, उसको धर्म मर्यादामें स्थापित करता है। धर्म बुद्धिमें

रहता है। काम मनमें रहता है। लोभ बाहरवाले अर्थमें रहता है। अतः अर्थ बाह्यविषयक है। काम मनोविषयक है-मनोधिष्ठान है। कामका अधिष्ठान मन है। अर्थ बाहरकी वस्तुएँ हैं। कामना मनमें है। धर्म बुद्धिमें बैठा हुआ। वह बुद्धि बाहरकी वस्तुओंसे बनी हुई नहीं है। आत्म-चैतन्यके प्रतिबिम्बनसे बनी हुई है। यदि चैतन्यकी प्रधानता बुद्धिमें आ जाये, तो धर्मकी प्रतिष्ठा हो जाये। फलस्वरूप, आप अर्थलोभसे निवृत्त हो जायें और काम-वासनासे ऊपर उठ जायें। उनसे मुक्ति हो जाये। लेकिन, केवल इतनेसे ही जीवन्मुक्ति नहीं होती है।

धर्मका बन्धन भी एक बन्धन होता है। उसके ऊपर भक्ति आती है। अपनी चित्तवृत्तिको ईश्वरमें स्थित करना। उसके ऊपर योग आता है। साक्षी-भावमें स्थित होना। उसके ऊपर वेदान्त आता है। साक्षीकी परिच्छिन्नताको काटकर ब्रह्मसे एकताका बोध करा देना। ब्रह्मसे एकताका बोध होनेके बाद पुरुषके जीवनमें सेवामूलक बन्धन नहीं है। इसलिये, किसीकी अनुग्रह-भाजनता नहीं है। उसमें स्थितिमूलक बन्धन नहीं है। इसलिये, योग नहीं है। उसमें बुद्धिके द्वारा नियन्त्रणकी कोई अपेक्षा नहीं। इसलिये, धर्मका बन्धन नहीं है। वासनाओंका जो खेल है और वस्तुओंका जो खेल है, वह तो बहुत नीचेके स्तरपर छूट गया। ब्रह्मात्मैक्य-बोध होनेपर तत्त्वज्ञ पुरुषके जीवनको 'जीवन्मुक्त' बोलते हैं। उसकी अन्तरंग स्थितिको 'जीवन्मुक्ति' बोलते हैं। इसमें भी वेदान्तियोंमें जीवन्मुक्ति और विदेह-मुक्तिका भेद करते हैं। उपनिषदोंमें जीवन्मुक्ति प्रधान है कि विदेहमुक्ति? जीवन्मुक्तिमें प्रमाण क्या है? नारायण! अब धीरे-धीरे इस सम्बन्धमें आगेके दिनोंमें चर्चा करेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 5

## नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

जीवन्मुक्तिका स्वरूप क्या है? जीवन्मुक्तिमें प्रमाण क्या है? जीवन्मुक्तिका साधन क्या है? जीवन्मुक्तिका प्रयोजन क्या है? इन चार प्रश्नोंको लेकर 'श्रीविद्यारण्यस्वामी'ने 'जीवन्मुक्ति-विवेक' नामका ग्रन्थ लिखा है। इन्हीं प्रश्नोंका समाधान इस ग्रन्थमें है। इसके सम्बन्धमें कहते हैं कि विद्यारण्य स्वामीने पहले 'पञ्चदशी'की रचना की। पञ्चदशी माने पूर्णिमा। पन्द्रह प्रकरणोंका समाहार-इस अर्थमें 'पञ्चदशी' शब्दका बनना व्याकरणकी रीतिसे जरा मुश्किल पड़ता है। तो, पञ्चदशी माने पूर्णिमा। जैसे पूर्णिमा चन्द्रमाकी पूर्णताका दिन है—पूर्णताकी तिथि है, वैसे ज्ञानचन्द्रकी पूर्णताका वर्णन जिसमें हो, उसका नाम पञ्चदशी होता है। पञ्चदशीमें पहले ज्ञानस्वरूप साक्षीका निरूपण है और फिर उसीकी-साक्षीकी अखण्ड अद्वितीय ब्रह्मताका निरूपण है। माने इसी जीवनमें, जो जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिमें साक्षी है, जो अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय-आनन्दमयमें साक्षी है, वह साक्षी ही देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न ब्रह्म है। '**अखण्डं सच्चिदानन्दं परम् ब्रह्मैव लक्ष्यते।**' संविद्‌की ब्रह्मताका निरूपण है। वह पहलेसे ही वैसा है। कहनेका अभिप्राय यह है कि ऐसा नहीं है कि वेदान्त साक्षीको ब्रह्म बना देता है। वह केवल बतलाता भर है कि तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप साक्षी हो। यह तुम्हारे अनुभवसे सिद्ध है कि तुम साक्षी हो। यह तुम्हारी साक्षिता परिच्छिन्न नहीं है; बल्कि, अपरिच्छिन्न ब्रह्म है।

इसमें भी एक खास बात ऐसी है, जिसपर लोगोंका ध्यान नहीं जाता है। वे यह तो जल्दी समझ जाते हैं कि साक्षी कालसे अपरिच्छिन्न है। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति कालमें बदलते रहते हैं और मैं एक रहता हूँ। यह भी समझ जाते हैं। पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणकी विशालताका आदि-अन्त तो कहीं है नहीं। ये पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशाएँ मनकी कल्पना हैं। इसलिए, ये भी हमको परिच्छिन्न नहीं कर सकतीं। परन्तु, जो दूसरी वस्तुएँ मालूम पड़ती हैं, वे कहाँ हैं और क्या हैं? इसके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेमें थोड़ी

कठिनाई होती है। असलमें, जो स्वयंप्रकाश और अर्थावभासक साक्षी है, वही इनका अधिष्ठान भी है और उसमें अध्यस्त होनेके कारण यह विषय नामकी कोई दूसरी वस्तु ब्रह्मसे पृथक् नहीं है।

देशकी अपरिच्छिन्नता और कालकी अपरिच्छिन्नता तो बुद्धिमें जल्दी आरूढ़ हो जाती है। इसीसे, योगीलोग भी साक्षीको-आत्माको-द्रष्टाको, विभु मानते हैं। नित्य भी मानते हैं। परन्तु, आत्मा नित्य और विभु होनेपर भी अद्वितीय है, यह बात सांख्य और योगमें नहीं मानी गयी। वेदान्तने कहा कि यह साक्षात् अपरोक्ष होनेपर भी अपरिचित हो रहा है। आओ! हम तुम्हारा और इनका परिचय करा दें। जैसे विलायतमें एक-दूसरेका परिचय कराते हैं, वैसे वेदान्त केवल साक्षात् अपरोक्ष साक्षीका परिचय कराता है। यदि कोई चीज सामने होनेपर भी पहचानी नहीं जाती हो, तो उसकी पहचान करानी पड़ती है। यही शास्त्रका प्रयोजन है। एक तो, परोक्ष स्वर्गादि सामने नहीं हैं। अत: बिना शास्त्रके धर्म और स्वर्गका ज्ञान नहीं होता। स्वर्गप्रापक धर्मका ज्ञान नहीं होता—ऐसे बोलना पड़ेगा। माने परोक्ष स्वर्गके साथ किस धर्मका सम्बन्ध जुड़ेगा? यह बिना शास्त्रके मालूम नहीं पड़ सकता। दूसरा, अपरोक्ष होनेपर भी आत्माकी ब्रह्मताका ज्ञान नहीं है। बिना परिचय बताये, यह ज्ञात नहीं होता है। अतएव, जाग्रत्कालमें ही ज्ञान होता है। किसीको स्वप्नकालमें भी हो जाये। यदि पहलेसे श्रवण किया हुआ हो, तो प्रतिबन्धकी निवृत्ति हो जाये। जैसे वामदेवको गर्भमें ही ज्ञान हो जाता है। यह भी हो सकता है।

विद्यारण्य स्वामीने पञ्चदशीके द्वारा पूर्णरूपसे ज्ञात करा दिया कि साक्षात् अपरोक्ष साक्षी स्वरूप ब्रह्म है। ब्रह्म है माने अद्वितीय है। अद्वितीय है माने व्यवहारकालमें भी ब्रह्मके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। प्रतीतिकी धारामें जो कुछ मालूम पड़ रहा है, सब ब्रह्मस्वरूप ही है। अब महाराज! चेले लोगोंने विद्यारण्य स्वामीको घेर लिया। वे बोले—'महाराज! हम तो ब्रह्म हैं। हम तो साक्षात् अपरोक्ष अद्वितीय ब्रह्म ही हैं। अब तो हमारे लिए बिलकुल छुट्टी है ना?' कल हमको एक सज्जनने बताया कि पूर्ण स्वातन्त्र्यका नाम जीवन्मुक्ति है। भाई मेरे! यह व्याख्यामें तो बिलकुल ठीक है। परन्तु, यह तो बताओ कि क्या पूर्ण स्वातन्त्र्यका अर्थ उच्छृंखलता है?

हैं? बोलो न! विद्यारण्य स्वामीने इस ओर ध्यान दिया कि हमने साक्षीको अद्वितीय ब्रह्म तो सिद्धकर दिया; लेकिन, लोग कहीं अपनेको साक्षी मान-मानके, अपनेको ब्रह्म मान-मानके दुनियामें उपद्रव न फैलाने लगें। अतः उन्होंने पञ्चदशीके पश्चात् सोलहवें प्रकरणके रूपमें यह जीवन्मुक्ति-विवेक लिखा। इस पर हम आपका ध्यान खींचते हैं—आकृष्ट करते हैं।

देखो! यदि श्रुति मरनेके बादवाली मुक्तिका ही वर्णन करती हो, तो यह ठीक वैसे ही है कि मरनेके बाद वैकुण्ठ मिलता है। उपासनाके सिद्धान्तमें यह बात मानी जाती है कि जब मनुष्य मरता है, तब एक अमानव पुरुष वैकुण्ठसे आता है और वह जीवात्माको विमानमैं बैठा करके वैकुण्ठमें ले जाता है। धर्मात्मा लोग मानते हैं कि मरनेके बाद स्वर्गसे विमान आता है और जीवात्मा उसमें बैठ करके स्वर्गलोक जाता है। पारसीलोग मानते हैं कि देवदूत आते हैं—खुदाके फरिश्ते आते हैं और वे जीवात्माको बहिश्तमें ले जाते हैं। यदि मुक्ति केवल मरनेके बादकी ही चीज हो, तो वह धर्मलभ्य स्वर्ग अथवा उपासनालभ्य वैकुण्ठके समान ही होगी। साक्षीकी स्वरूपभूत नहीं होगी। अविद्यानिवृत्तिसे उपलक्षित जो साक्षीका स्वरूप है, वह नहीं होगी। यह बात ध्यानमें नहीं आवेगी कि जाग्रत् कालमें अविद्याका निवारण हो जानेके बाद जो अपना स्वरूप है, वही नित्य-शुद्ध-बुद्ध मुक्त ब्रह्म है।

देखो! कल आपको सुनाया था। जो लोग बिना विचारके प्राचीनतापर दुराग्रह कर बैठते हैं, वे अपने घरमें दुःखकी सृष्टिकर लेंगे कि नहीं? एक काठियावाड़ी कहे या एक मारवाड़ी कहे कि हमारे दादाजी अपने सिरपर जैसे पगड़ी बाँधते थे, वही सनातन धर्म है, तो भला बताओ! घरमें लड़ाई होगी कि नहीं? यदि कोई कहे कि पाँच-हजार वर्ष पहले जैसे रहनेकी रिवाज थी—व्याघ्रचर्म या मृगचर्म धारण करना—केवल वही पाँच-हजार वर्ष पहलेवाली बुद्धि ठीक थी; आजकी बुद्धि ठीक नहीं है, तो वह अपने बच्चेके साथ संघर्ष करेगा। अपनी पत्नीके साथ संघर्ष करेगा। वैमनस्य हो जायेगा। लड़ाई हो जायेगी। हाँ! तो उसमें दोष क्या है? दोष यह है कि वह वर्तमान बुद्धिका मूल्यांकन नहीं करता है। वह प्राचीन बुद्धिका मूल्यांकन करता है। देखो! शाश्वत सत्यके सम्बन्धमें प्राचीन बुद्धि ठीक होती है और

व्यवहारके सम्बन्धमें वर्तमान कालीन सूझबूझ ठीक होती है। अब एक कम्यूनिस्ट है। वह सौ बरस बादकी कल्पना करता है कि उस समय कोई शासन नहीं रहेगा; कोई राजा नहीं रहेगा; और, सब लोग जो मौज होगी, सो करेंगे। तो इस प्रकारसे, वह सौ बरस बादवाली भविष्यकी बुद्धिके चक्करमें पड़कर वर्तमान-विद्यमान स्थितिकी उपेक्षा कर बैठता है। यदि हम जगत्के मूलमें आदि रूपसे ब्रह्म रहे हों और जगत्के अन्तमें-महाप्रलयमें या केवल मरनेके बाद ही हम मुक्त होते हों, तो वह मुक्ति दुराग्रही–प्राचीन कालके प्रति अत्यन्त दुराग्रह रखनेवालोंके समान होगी अथवा कम्यूनिस्टोंके द्वारा कल्पित अराजकताके समान होगी।

हमको एकने एक दिन सुनाया। दादाजीने सुनाया। एक कोई बुद्धिमान् विद्वान् सज्जन किसी दम्पतीके घरमें–गृहस्थके घरमें अतिथिके रूपमें ठहरे हुए थे। रातके समय दोनों पति-पत्नी जो मेजबान थे, वे आपसमें लड़ने लगे। उन सज्जनको बड़ा आश्चर्य हुआ। लड़ाई बड़े जोरकी हो गयी। अतः उनको बीचमें पड़ना पड़ा। वे बोले–'रातके समय तुम लोग लड़ाई क्यों करते हो? मतभेद क्या है?' पत्नीने कहा–'हमारी लड़ाई यह है कि मैं कहती हूँ कि मेरा बेटा डाक्टर बनेगा। हम उसको डाक्टर बनावेंगे। मेरे पतिका कहना है कि नहीं। हम उसको डॉक्टर नहीं बनावेंगे। हम उसको इञ्जीनियर बनावेंगे। यह मतभेद हम दोनोंमें हो गया है। इसके कारण लड़ाई हो रही है।' उन विद्वान् बुद्धिमान् सज्जनने पूछा–'आखिर तुम्हारे बेटेकी भी तो कुछ रुचि होगी? वह क्या बनना चाहता है? इञ्जीनियर बनना चाहता है या डाक्टर बनना चाहता है?' तो, उन दोनों पति-पत्नीने बताया कि 'बेटा तो अभी हुआ ही नहीं है।' हैं? आहा! बेटा तो अभी हुआ ही नहीं है।

आप इस बातपर ध्यान दें। श्रुतिका कहना यह है कि।

**सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।**
**यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्यैवानुपश्यति।**

आप 'ईशावास्योपनिषद्'का पाठ रोज करते हैं।

**तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।**

यह ज्ञान होने पर–एकत्वदर्शन होनेपर शोक और मोह कहाँ?

एकत्वमनुपश्यतः। अनुपश्यति। अनुपश्यतः। विजानतः। विजानाति इति विजानन्। तस्य विजानतः। अनुपश्यति इति अनुपश्यन् तस्य अनुपश्यतः। अनुपश्यति।

यह सब वर्तमान-कालकी क्रिया हैं। ज्ञानी पुरुषको शोक कहाँ? मोह कहाँ? यह जो शोक और मोहका निषेध है, वह जीवनकालमें है कि मरणानन्तर है? आप स्वयं अपनी अकलसे—अपनी बुद्धिसे इस बातपर विचार कर सकते हैं। 'तत्र कः शोकः को मोहः'। तत्त्वज्ञान होनेपर शोक कहाँ है और मोह कहाँ है? जिस प्रकार खेती करनेपर अनाज हमको इसी जन्ममें मिलता है और रोटी पकानेपर भोजन हमको इसी जीवनमें मिलता है, उसी प्रकार ज्ञान होनेपर इसी जीवनमें हमारे शोक और मोहकी निवृत्ति हो जाती है। आप 'श्रीमद्भगवद्गीता'का पाठ करते ही हैं। 'विमुक्तश्च विमुच्यते।' पहले मुक्त होता है और फिर मुक्त होता है। माने शरीर रहते मुक्त होता है और शरीरके बाद मुक्त होता है।

**त्वमेवं विद्वान् अमृत इह भवति।**—श्वेताश्वतरोपनिषद्

यदि तुम परमात्माको ऐसे जान लोगे, जैसे हम अभी बताने जा रहे हैं, तो क्या होगा?

**अमृत इह भवति। इह अमृतो भवति।**

आप इसी जीवनमें अमृत हो जायेंगे। मौत बिलकुल नहीं होगी। '**इह**' माने जीवनकालमें ही। '**अमृतो भवति**' माने आप अमृतत्त्वका अनुभव कर लेंगे। 'अत्र ब्रह्म समश्नुते।' यहीं ब्रह्मानुभूति हो जायेगी। यह वेदान्त इसी जीवनमें ब्रह्मात्मैक्यानुभूति कराता है। आप स्वर्ग पर विश्वास करते हैं कि नहीं करते हैं? यदि आप 'स्वामी दयानन्द'का मत मानते होंगे, तो आप स्वर्गपर विश्वास नहीं करते होंगे। हम मान लेते हैं। यदि आप बौद्ध मत मानते होंगे, तो वैकुण्ठपर विश्वास नहीं करते होंगे। यदि आप जैन मत मानते होंगे, तो आप ऐसा मानते होंगे कि चौबीस तीर्थंकर ही हुए हैं। हाँ! नारायण! लेकिन, प्रश्न तो यह है कि यहाँ जो-जो जानता है, वही वह हो जाता है।

**यो यो यः प्रत्यबुध्यत् सः सः तदभवत्।**

वेदान्तका यह कहना है कि मतलब यह नहीं है कि जैनमें चौबीस तीर्थंकर हुए कि बुद्धके चौरासी जन्म हुए कि बड़े-बड़े महात्मा हुए। यह तो

'यो यो यः प्रत्यबुध्यत् सः सः तदभवत्।' जिस-जिसने इस पदार्थको जान लिया, वही-वही वह हो गया। तो, यह बात आपके जीवनके लिए बड़ी उपयोगी है। इसी जीवनमें शोक-मोहकी निवृत्ति। एक बात यह बतायी।

आपके इसी जीवनमें बारम्बार जो शोक-मोह आते रहते हैं, वे निवृत्त हो सकते हैं। आहा! ऐसी-ऐसी दुःखकी बात आती है कि आप मूर्च्छित हो जाते हैं—बेहोश हो जाते हैं, बेसुध हो जाते हैं। आपको इतना शोक होता है कि आप रोते-रोते, दुःखी होते-होते केवल अपनेको ही नहीं, अपितु अपने मुहल्लेको-अपने गाँवको-अपने देशको भी दुःखी कर देते हैं। यह शोक और मोह आपके इसी जीवनसे निवृत्त हो जाये। **'जीवितः पुरुषस्य मत्वा देवं हर्षशोकौ जहाति।'** परमात्माका ज्ञान होने पर जीवित पुरुषके जीवनमें-से हर्ष और शोक छूट जाता है। अब आप बताओ! यह 'हर्षशोकौ जहाति' जीवनकालमें है कि मरनेके बाद है? यह जीवन-कालमें ही है। मृत्युके अनन्तर नहीं है। परमात्माका ज्ञान हुआ और शोक-मोह छूट गया।

एक बड़े अच्छे पण्डित थे। 'ज्वालापुर महाविद्यालय'के प्राध्यापक थे। पैंतीस वर्ष पहले उनकी पत्नीका देहान्त हो गया था। भोजनकी थाली सामने आते ही उनकी आँखोंसे टपाटप आँसू गिरते थे। बोलते—'अब वैसा खिलानेवाला कौन है?' पूछते—'कैसा पंडितजी?' तो, अपनी प्यारी पत्नीकी याद करते हुए फूट-फूटकर रोने लगते थे। भला बताओ! पैंतीस वर्ष पहने उनकी पत्नी उनका दिल लेकर चली गयी और अब तक उन्हें शोक दे रही है। यह अपनी पत्नीके साथ उनका दिल बँधा हुआ है। इसका नाम बन्धन है। पहले आप इसको समझो।

यदि पहले बन्धनका अर्थ नहीं समझेंगे, तो मुक्तिका अर्थ क्या समझेंगे? क्या आप किसी जेलखानेमें हैं? यदि आप जेलखानेमें बन्द नहीं हैं, तो मुक्तिका क्या अर्थ है? आप, असलमें, किससे बँधे हैं? हाँ! आप यह देखो। यह हड्डी-मांस-चामका जो शरीर है, इसमें आपका अभिनिवेश हो गया है। साढ़े-तीन हाथके शरीरमें घुसकर आप इसीको अपना 'मैं' मान चुके हैं। इसका नाम 'अभिनिवेश' है। यह शरीर दुःख नहीं देता है। शरीरमें जो अभिनिवेश है, वह दुःख देता है।

हमारे योगदर्शनका—सांख्यदर्शनका मत है कि क्लेशमें भी थोड़ा-सा

सुख रहता है। 'क्लेश' शब्द भी बड़ी चतुराईसे बनाया गया है। *कस्य सुखस्य लेश एव क्लेश इति उच्यते।* 'क्लेशको क्लेश क्यों कहते हैं? क्लेशमें भी थोड़ा-सा सुख रहता है। भला! क्लेशमें क्या सुख रहेगा? यदि आप लाख रुपया खो जानेपर बिलकुल दुःखी हो रहे हों और उसी समय एक साँप फन फुफकारता हुआ आपको काटनेके लिए आ जाये, तो आप जिन्दा रहनेके लिए वहाँसे भागेंगे। इसका मतलब यह है कि लाख रुपयेके नुकसानपर आपको क्लेश तो हुआ था; परन्तु, वहाँ भी जिन्दा रहनेका सुख था। तत्रापि *क लेशो* भवति। क्लेशदशायामपि *क लेशो* भवति। **इति क्लेश। क्लेश इत्युच्यते।** क्लेशकी दशामें भी आप कहीं-न-कहीं अटके तो होते ही हैं।

देहमें अभिनिवेश हो गया। इसके कारण मृत्युसे द्वेष हो गया। तब मृत्युके निमित्तसे भी द्वेष हो गया। जो आपका अनाज चुरा ले जाये, उससे द्वेष हो गया है। जो पैसा चुरा ले जाये, उससे द्वेष हो गया। जो कपड़ा चुरा ले जाये, उससे द्वेष हो गया। जो डण्डा मारे, उससे द्वेष हो गया है। आप देहमें 'मैं' करके बैठ गये, तो देहके विरोधीसे-जीवनके विरोधीसे आपका द्वेष हो गया। शेषी तो आत्मा है। अपने लिए सब प्यारे होते हैं। जो इस जीवनके अनुकूल पड़ता है, उससे राग होता है। यदि वह छूटता है, तो दुःख होता है। देहमें 'मैं' करके घुसना दुःख है। देहके अनुकूल होनेके कारण जिनसे राग होता है, उनके दूर होनेपर दुःख होता है। देहके विरोधी होनेके कारण जिनसे द्वेष होता है, उनकी उपस्थिति होनेपर दुःख होता है। अपनी परिच्छिन्नताके कारण बन्धनका अनुभव होता है। अतएव, अस्मिता-मात्र परिच्छिन्नता क्लेश है। आप नासमझीसे अपनेको परिच्छिन्न मानते हैं। इसलिए, नासमझी क्लेश है। नासमझी, परिच्छिन्नताका अभिमान, अन्यके प्रति राग, अपने विरोधीके प्रति द्वेष, और देहमें मैं-पना होनेसे मृत्युका भय-ये पाँच क्लेश आपके जीवनमें आ घुसे हैं। ये सब गुण्डे हैं, जो आपके घरमें-आपके जीवनमें आकरके बस गये हैं। इनका निवारण करना जीवन्मुक्तिका साधन है।

रात एक सज्जनसे बातचीत हो रही थी। बड़े सज्जन हैं। भोले-भाले हैं। हमारे अपने बालक ही हैं। वे यहाँ कथामें बैठे होंगे। यह अपना अनुमान है; क्योंकि, मैं देख तो नहीं रहा हूँ। हाँ, वे यहाँ बैठे होंगे, तो सुन ही रहे होंगे।

वे बोले–'महाराज! मनमें अच्छे-बुरे ख्याल आते रहते हैं। अबसे पाँच-छह बरस पहले हमको एक महात्मा मिले थे। उन्होंने हमको बताया कि 'तुम पन्द्रह-बीस बार जोर-जोरसे ओऽऽऽऽम् ओऽऽऽऽम् का उच्चारण करो। उसके बाद शान्तिसे बैठ जाओ और मनमें जो आवे, सो आने दो।' उनके कहे अनुसार मैं करने लगा। अब हमको थोड़ा-सा असन्तोष मालूम पड़ता है कि हमारे मनमें ये गन्दी-गन्दी बातें आती रहती हैं और कभी-कभी अच्छी-अच्छी बातें भी आती हैं। यह जो हमारा साक्षीपना है, इसमें मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। उन्होंने ऐसी शिकायत की। आहा!

देखो! हम आपको मूलकी बातके साथ मिला देते हैं। इसमें यह प्रश्न उठाया गया है।

**बन्धः किम् साक्षिणो निवारयते उत् चित्तात्।**

आप बन्धन कहाँसे मिटाना चाहते हैं? साक्षीमें-से बन्धन मिटाना चाहते हैं कि चित्तमें-से बन्धन मिटाना चाहते हैं? यह प्रश्न उठाया है हो! देखो! आप इस सवालपर ध्यान दो। साक्षी तो स्वयं मुक्त ही है। उसमें तो बन्धन है ही नहीं। तो फिर, मिटानेका क्या सवाल है? हाँ! ध्यान दो। साक्षी तो स्वयं मुक्त है। उससे बन्धन मिटानेका सवाल ही कहाँ है? तब चित्तसे बन्धन मिटावेंगे? चित्तमें-से तो वही निकलता है, जो पहलेसे इकट्ठा करके रखते हैं। चित्तमें जो संचित करके रखते हैं, वही उसमें-से निकलकर बाहर आता है। जैसा खाते हैं, वैसा ही कैमें-से निकलता है न! जब कै होती है-वमन होता है, तब जैसा पहलेसे खाकर रखते हैं, वैसा ही तो निकलता है।

एक मुसलमान रोजा रखते थे हो। सूर्योदयके बाद और सूर्यास्तके पहले कुछ नहीं खाते थे। लेकिन, जब वह स्नान करनेके लिए सरोवरमें डुबकी लगाते थे, तब वहाँ सरोवरमें डुबकी लगाये-लगाये पानी पी लेते थे। वह सोचते थे कि मैं ऐसा काम करता हूँ, जिसको खुदा भी नहीं देखता है। एक दिन जब सरोवरमें डुबकी लगाकर पानी पीने लगे, तब मुँहमें मछली चली गयी। मछली उनके गलेमें जा करके अटक गयी। आहा! अब तो डाक्टर बुलाना पड़ा। डाक्टरने बड़ी मुश्किलसे मछलीको गलेमें-से निकाला। अब वह बोले–'भाई! खुदाने तो आज देख लिया।' है न? आज तो खुदाने

बिलकुल देख लिया। देखो! जो आप खाओगे, वही आप उगलोगे। गलेमें-से मछली क्यों निकली? क्योंकि, उन्होंने मछली खायी थी।

हमको बचपनमें बुखार आ जाया करता था। पहलेके वैद्य लोग लंघन करवाते थे। कह देते थे कि 'कुछ खाओ ही मत।' बचपनमें बुखार आनेपर हमको तीन-तीन, चार-चार दिनोंतक लंघन करना पड़ता था। वैद्य लोग कुछ भी खानेके लिए मनाकर देते थे। अब महाराज! हमारी माँसे तो बिना खिलाये रहा नहीं जाता था। तो, वह चोरी-चोरी हमको दाल-भात खिला देती थी। अरहरकी दाल और भात। अब एक दिन बुखारमें कै हो गयी। कै होनेपर खाया हुआ दाल-भात निकल आया वैद्यके सामने। जो खायेंगे, उसीका तो वमन होगा न! जैसा आहार, वैसा व्याहार। आहार है-बाहरसे भीतर ले जाना और व्याहार है-भीतरसे बाहर निकालना। संस्कृत भाषामें 'व्याहार' माने 'बोलना' होता है। देखो! हम बोलते क्या हैं? जैसा हम सोचते हैं, जैसा हम समझते हैं, वैसा ही हम बोलते हैं। हाँ! जैसा आहार होता है, वैसा ही व्याहार होता है।

**चित्तनदी उभयतो वाहिनी वहति पापाय वहति पुण्याय च।**

यह चित्त नदी दोनों काम करती है। चीजको बाहरसे भीतर ले जाती है और भीतर बैठी हुई चीजको बाहर निकालती है। चित्तका तो स्वभाव ही यह है कि बाहरको भीतर करे और भीतरको बाहर करे। चित्त नदी अपना काम करती रहती है और तुम तटस्थ होकरके बैठे रहते हो। तुम किनारेपर हो। अगर तुम स्वयं भी चित्त नदीमें बहने लगोगे, तो उस समय तुम्हारा नाम साक्षी नहीं रहेगा हो! तुम तो चित्त नदीसे तादात्म्यापन्न हो गये-अभिनिविष्ट हो गये। चित्त नदी बह रही है और हम उसके साक्षी देख रहे हैं।

अब एक बात ऐसी करते हैं, जो किसी-किसीको जरा-सी खटक जाये। भला! वह खटकनेवाली बात क्यों करते हैं? देखो! कभी-कभी थोड़ा खटकाना भी अच्छा रहता है। छेड़-छाड़में भी तो मजा आता है न! बात आपको शास्त्रकी सुनाते हैं। आप ध्यान दें। संस्कृत भाषामें जो न्याय-विभाग है माने जो कानूनी विभाग है-संवैधानिक विभाग है, उसमें 'साक्षी' शब्दका प्रयोग आता है। अब यह वेदान्तवाला साक्षी नहीं है। यह मुकदमेवाला साक्षी है। साक्षी माने होता है-गवाह। हम लोगोंके गाँवोंमें

साक्षीको गवाह बोलते हैं। यहाँ शायद साक्षी ही बोलते होंगे। जब कोई मुकदमेमें गवाही देने जाता है, तब उसको साक्षी ही बोलते हैं। न्याय-विभागमें साक्षीके लिए जो शब्द हैं, उनमें-से साक्षीके कई विभाग हैं। उनमें एक 'कूट साक्षी' होता है। कूट माने झूठा हो! तो, कूट साक्षी माने झूठा गवाह। झूठा गवाह माने बेईमान गवाह।

अब देखो! खटकनेकी बाद यही है कि साक्षीके साथ ईमानदार और बेईमानका सवाल कहाँसे जुड़ा? गवाह तो गवाह ही है। बोले—नहीं भाई! दो आदमी लड़ रहे हैं। देखते समय तो उसने अपनी आँखोंसे देखा कि सचमुचमें वे दोनों लड़ रहे हैं। लेकिन, बादमें एकसे पैसा ले लिया और उसके पक्षमें गवाही दे दी कि इसका दोष नहीं है। तो भला बताओ! झूठा गवाह हो गया न! अच्छा! यों कहो कि दो आदमी लड़ रहे हैं। एक आदमीसे उसकी पहलेकी रिश्तेदारी है। अपने रिश्तेदारके पक्षमें उसने गवाही दे दी। तो, एक होता है—कूट साक्षी माने झूठा गवाह। यह खटकनेवाली बात आपको सुना रहे हैं।

आपकी चित्तनदीमें—आपके अन्तःकरणमें बाहरकी बात भीतर और भीतरकी बात बाहर आती-जाती रहती है। हजारों अच्छी-बुरी बातें आती-जाती रहती हैं। आप उनके साक्षी हैं। लेकिन, उस साक्षीपनेमें होता क्या है कि आप देखते-देखते कभी अपने किसी रिश्तेदारको देख बैठते हैं। जिनसे पहले राग है, उनको देख बैठते हैं। जिनसे पहले द्वेष है, उनको देख बैठते हैं। उस समय आप अपने दोस्तसे प्यार करने लगते हैं और अपने दुश्मनसे नफरत करने लगते हैं। जिससे राग है, उसके पक्षपाती हो जाते हैं और जिससे द्वेष है, उसके विरोधी हो जाते हैं। अच्छा! उस समय नहीं हुए। उस समय तो देख लिया कि हाँ! इन दोनोंने लड़ाई की। उस समय सोचा कि बाबा! यदि हम इन दोनोंके झगड़ेमें पड़ेंगे, तो हम भी पिट जायेंगे। लेकिन, जब दुकानपर गये, तब पैसेकी कल्पना मनमें आयी। दुकानपर जानेके बाद पैसेका पक्षपात कर लिया। अब पैसेसे राग हो गया। रिश्तेदारी तो पहलेसे ही थी। तो, वह साक्षी देवता है, वह कूट साक्षी बन गये। जिससे राग है, उससे मुहब्बत करके उसको चाहने लगे। जिससे द्वेष है, इससे नफरत करने लगे—दुश्मनी करने लगे। उससे शत्रुता जोड़ ली। अब आप बताओ। बात

जरा खटकने वाली तो है ही। जब आप सड़कपर आते-जाते हुए लोगोंको देख रहे थे—जब आप लोगोंको लड़ते हुए देख रहे थे, तब तो आप साक्षी थे। परन्तु, जब आप उन लोगोंमें-से अपने रिश्तेदारको पकड़कर घरमें ले आये या अपने दुश्मनको पकड़कर घरमें ले आये, तब आपकी साक्षिता झूठी हो गयी। आप साक्षी नहीं रहे। आप कूट साक्षी हो गये।

नारायण! जब आप झूठे गवाह हो गये—बेईमान गवाह हो गये, तब इसके लिए करना क्या पड़ता है? अन्तःकरणको वैराग्य-भावनासे युक्त करना पड़ता है। जब वैराग्य होता है, तब चित्तका निरोध होता है। निरोधदशामें अपनी साक्षिताका स्पष्ट अनुभव होता है, देखो! अभी आपको योगकी बात सुना रहे हैं। राग-द्वेषकी न्यूनता कैसे आवेगी? राग-द्वेषका अभाव नहीं बोल रहा हूँ हो! वैराग्य माने राग-द्वेषका अभाव नहीं होता है। वैराग्य माने होता है—राग-द्वेषकी शिथिलता। यह कैसे आवेगी? आप यह मनकी सड़कको बहने दो। लेकिन, अपने मकानके दरवाजेपर थोड़ा नियन्त्रण करो। अब देखो! इसीका नाम योग है। इसीका नाम धर्म है। क्या धर्म है? नियन्त्रणका नाम धर्म है। नियन्त्रण यह है कि आप अपने 'रूम' (Room)में गुण्डेको मत घुसने दो। अपने घरमें जो कोमलांगी-सुकुमारी बहू-बेटियाँ हैं, उनको दंगेमें शामिल मत होने दो। आप साक्षीका भाव समझो। आप सड़कको मत रोको। है न! सड़कको बहने दो। उसपर गुण्डोंको भी चलने दो। वह तो आपने सार्वजनिक बना दी है। उसको 'प्राइवेट' (Private)रखा ही नहीं है। आपका मन सार्वजनिक हो गया है। उसमें सब आते हैं और जाते हैं। परन्तु, आपका जो अपना मकान है, जो अपना फ्लैट है, जो अपना 'रूम' है, उसके दरवाजेपर थोड़ा नियन्त्रण करो।

आपके मकानके-कमरेके दरवाजेमें कौन घुसे और कौन न घुसे? इसको आप दो तरहसे नियन्त्रित कर सकते हैं। बुद्धि और शरीरसे नियन्त्रित कर सकते हैं। वह कैसे? एक तो यह कि आप समझदारीसे काम लें। आपकी समझमें जो ठीक हो, उसको टिकने दें। आपकी समझमें जो गलत हो, उसको टिकने न दें। जिस सज्जनको अपने घरमें आने देना चाहिए और रहने देना चाहिये, उसको आने दें और रहने दें। जिस दुर्जनको अपने घरमें घुसने नहीं देना चाहिए और बाहर निकाल देना चाहिए, उसको बाहर

निकाल दें। आपके मनकी सड़कपर गुण्डे चलते हैं, तो चलें। लेकिन, आप समझदारीसे काम लें। उनको अपने मकानके-कमरेके दरवाजेमें घुसने मत दें और बाहर निकाल दें। एक बात और है। वह क्या है? आप उन गुण्डोंको अपने शरीरमें भी मत टिकने दें। माने उनके अनुसार शरीरसे क्रिया नहीं करें। आहा! हम आपको जीवनमुक्तिका साधन बता रहे हैं। यदि मनमें गुण्डे आते हैं, तो आने दीजिये परन्तु, समझके द्वारा उनका समर्थन मत कीजिये-पक्षपात मत कीजिये और शरीरसे उनको क्रियान्वित मत होने दीजिये। इस प्रकार, बुद्धि और शरीरके द्वारा आप मनको नियन्त्रित कर सकते हैं। बुद्धि स्वयं कर्ता है। बुद्धि कर्त्री है। विज्ञानमय कोष है। उसमें बैठकर आप कर्त्ता हो जाते हैं। यह शरीर आपके कर्मका बच्चा है। हाँ! यह शरीर आपके कर्मका ही बच्चा है। मनमें अच्छाई और बुराई दोनों आती हैं। अच्छाईको शरीरके द्वारा कार्यान्वित होने दीजिये। बुराईको शरीरके द्वारा कार्यान्वित मत होने दीजिये। इसीका नाम समझदारी है हो। इससे क्या होगा? इससे आपका आत्मबल बढ़ेगा।

देखो! हम आपको शुरू-शुरूकी बात बता रहे हैं। अगर आपने 'मनुस्मृति' पढ़ी हो, तो आपने धर्मके लक्षण भी पढ़े होंगे। आजकल हम ऐसे लोगोंको जानते हैं, जिन्होंने 'चित्सुखी' पढ़ी है, 'अद्वैतसिद्धि' पढ़ी है, 'खण्डनखण्डखाद्य' पढ़ा है, 'भेद-धिक्कार' पढ़ा है; परन्तु, मनुस्मृति नहीं पढ़ी है। हम काशीमें ऐसे लोगोंको जानते हैं। उन्होंने तत्त्वमीमांसा तो की है; परन्तु, आचारमीमांसा पर कभी ध्यान नहीं दिया है। उनको हमारी आचार-संहिताका अध्ययन नहीं है। जिन लोगोंने मनुस्मृति पढ़ी है, उन्होंने पढ़ा होगा-'*दशकं धर्म-लक्षणं*'। उसमें पहले दो चीज मिलती है-धृति और क्षमा। धृतिका अर्थ होता है-पकड़कर रखो। अपने हाथको-पाँवको-जीभको पकड़कर रखो-

**धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।**
**योगेनाभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।**

जीभ को पकड़कर रखना मतलब समझदारीके साथ वाणीका प्रयोग करना। बोलते समय यह समझकर बोलना कि हमारे बोलने का हमारे अपने ऊपर, सामने वालेपर और दुनियापर क्या प्रभाव पड़ेगा? यदि आपकी जीभ

आपके काबूमें नहीं रहेगी, तो आप अनाप-शनाप बकनेके लिए जीभको छोड़ देंगे। जब आपकी जबान असंगत बोलने लगेगी, तब आप बहुत दुःखी होंगे। अतः धृति आवश्यक है। ऐसे ही, हाथसे काम करनेमें और पाँवसे चलनेमें भी धृति आवश्यक है। यह नहीं कि जो करनेकी मनमें आ जाये, वह करने लगे। जहाँ जानेकी मनमें आ जाये, वहाँ जाने लगे। यदि मनके कहे अनुसार करने-चलने लगेंगे, तो फिर, बादमें, बहुत दुःखी होंगे। धृति आवश्यक है। अपनी इन्द्रियोंको जरा पकड़कर रखो।

एक बार मैं 'लोनावाला' गया था। वहाँ मेरे पास दो पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आयीं। बड़ी थीं। 'बी. ए.' (B.A.) पास होगीं। वे बोलीं– 'स्वामीजी! जो मनमें आ जाये, वह करनेमें क्या हर्ज है?' उन्होंने हमसे ऐसे पूछा हो! मैंने कहा–'अच्छा! तुम सब कुछ खानेको राजी हो? वे थोड़ी हिचक गयीं। मैंने पुनः कहा–'जो कुछ तुमको खिलाया जाये, वह खानेके लिए तुम तैयार हो? वे बोलीं–'नहीं महाराज! सोच-विचारकर ही तो खायेंगे। सब कुछ कैसे खायेंगे?' आहा! मैंने कहा–'तो फिर, बुद्धिसे सोच-विचारकर भोजन करती हो ना? वे बोलीं–'जी! महाराज! सो तो है ही।' मैंने कहा--जैसे बुद्धि सोच-विचारकर भोजन करती है कि यह चीज खानी चाहिए और यह चीज नहीं खानी चाहिए, ठीक वैसे ही, बुद्धिसे सोच-विचारकर अमुक कर्म करना चाहिए और अमुक कर्म नहीं करना चाहिए। जो मनमें आ जाये, वह करनेमें क्या हर्ज तो है ही है। देखो! बहुतसे ऐसे लोग हैं, जो मांस नहीं खा सकते; मछली नहीं खा सकते; अण्डे नहीं खा सकते; लेकिन, तुम अण्डा-मांस-मछली सब खा सकते हो। हम यह बात जानते हैं। है ना? हाँ! परन्तु, मल-भक्षण? तुम मल-भक्षण नहीं कर सकते। 'अच्छा! बताओ! अगर कभी तुम्हारे मनमें मल-स्वाद लेनेकी इच्छा पैदा हो जाये, तो तुम अपनी जीभको रोक लोगे या नहीं? हाथको रोक लोगे कि नहीं? पाँवको रोक लोगे अथवा नहीं? भला बताओ!' वे बोलीं–महाराज! अब बस भी करो। रोक लेंगे। रोक लेंगे। हर हालतमें रोक लेंगे। मल-स्वाद लेनेकी इच्छाको कभी भी पूरा नहीं करेंगे। मल-भक्षण कदापि नहीं करेंगे। हरगिज नहीं।'

नारायण! देखो! धृति। जब अपना हाथ दूसरेकी जेब काटनेके लिए

तैयार हो, तब आप हाथको रोक सकें। जब अपना हाथ दूसरेकी जेबमें-से पैसा निकालनेके लिए तैयार हो, तब आप हाथको रोक सकें। अब अपना पाँव चोरी करनेके लिए चलनेको उद्यत हो, तब आप पाँवको रोक सकें। जब अपनी जिह्वा किसीके लिए दुर्वाच्य बोलनेके लिए तैयार हो, तब आप जिह्वाको रोक सकें। हाँ! नारायण! इसका नाम होता है—धृति। यह धर्म है। धर्म माने धारण करना! धर्म माने रोकना। अगर कोई दूसरा तुम्हारे प्रति ऐसा-वैसा बर्ताव करे—दुर्व्यवहार करे, तो अपनी ओरसे बर्तावमें संयम रखो। अपने मन-प्राण और इन्द्रियोंको काबूमें रखो। अगर कोई दूसरा तुम्हारे प्रति अपराध करे, तो दण्ड देनेके लिए उद्यत मत हो जाओ। हाँ! कानूनको अपने हाथमें मत लो। क्षमाकी शक्ति भी आपमें रहे। धृति और क्षमासे आपकी क्रियामें और बुद्धिमें धर्मका बल बढ़ेगा।

मनुजीने धर्मके दस लक्षण बताये हैं। हमने यहाँ केवल दोका ही उल्लेख किया है। भीतरसे बाहर जानेमें—बाहर निकलनेमें धृति। समझबूझकर बाहर निकलो। सड़कपर चलते-चलते पेशाब लगी। बोले—'हम तो यहीं करेंगे।' पुलिस पकड़कर ले जायेगी। टट्टी लगी। बोले—'हम तो यहीं करेंगे।' नहीं भाई! ऐसे नहीं कि चाहे जहाँ पेशाबकर दिया और चाहे जहाँ टट्टी कर दी। सोच-विचारके शरीरसे क्रिया करो। मूत्रालय तक चले जाओ। शौचालय तक चले जाओ। आहा! यह बात है, इसको धृति बोलते हैं। बोलनेका मनमें आया कि हम तो बोलेंगे, तो बोलते ही चले गये। नाटकमें दो तरहका भाषण होता है। एक सार्वजनिक मञ्चीय भाषण होता है और एक स्वगत भाषण होता है। अपने मनमें ही बड़बड़ा रहे हैं; लेकिन, वह बड़बड़ाना सबलोग सुनते हैं। भड़कता है दिल और बड़बड़ाती है जीभ। इस जीभको पकड़नेकी शक्ति अपनी बुद्धिमें जाग्रत् कीजिये। आप अपनी बुद्धिमें हाथको-पाँवको-जीभको पकड़नेकी शक्ति जाग्रत् कीजिये। दूसरेके द्वारा अपराध होनेपर भी क्षमा करनेकी शक्ति जाग्रत् कीजिये। आप पहले अपनी बुद्धिमें धृति और क्षमा शक्ति जाग्रत् कीजिये। यह धर्म है।

आप रागवश कुछ लिख मत दीजिये। आप द्वेषवश कुछ बोल मत दीजिये। आप राग-द्वेषवश डण्डा लेकर खड़े मत हो जाइये। इससे क्या होगा? साक्षीका क्या बनेगा-बिगड़ेगा? बोले—इससे आपकी बुद्धिका बल

बढ़ेगा। आपकी बुद्धि शक्तिशालिनी हो जायेगी। आपका आत्मबल बढ़ेगा। फिर भी, प्रश्न है कि इससे साक्षीका क्या बनेगा? क्या बिगड़ेगा? देखो! नारायण! आपको एक साधारण दृष्टान्त देकर समझाता हूँ। हमारे एक मित्र हैं। उनको डायबिटिज (Diabetes) है। कुछ अधिक है। सामान्य डायबिटिज नहीं है। जरूरतसे कुछ ज्यादा है। डायबिटिज तो हमको भी है। हम भी उसके बहुत अनुभवी हैं। अच्छा! तो उनके शरीरमें फोड़े-फुन्सी निकलते हैं। जब उनको कभी कोई फोड़ा-फुन्सी निकलते हैं। जब उनको कभी कोई फोड़ा-फुन्सी हो जाता है और डाक्टरको ऑपरेशन करना होता है, तब वह कहता है-'महाराज! इस समय आपका डायबिटिज बढ़ा हुआ है। इस समय हम इस फोड़ेका ऑपरेशन नहीं कर सकते हैं। इस समय इस फोड़ेका ऑपरेशन करना तो जरूरी है और आपकी चमड़ीको ठीक करना भी जरूरी है; परन्तु, पहले डायबिटिज अच्छा कर लेंगे और फिर ऑपरेशन करेंगे।' यह बात आप सबलोग जानते होंगे कि डायबिटिजको नॉर्मल (Normal) किये बिना ऑपरेशन नहीं होता है। डायबिटिजकी चिकित्सा किये बिना फोड़ा-फुन्सीकी चिकित्सा नहीं होती है।

आपकी बुद्धिमें डायबिटिज हो गया है भला! हाँ! शरीरमें शूगर (Sugar) बढ़ना भले अच्छा न हो, बुद्धिमें शूगर तो अच्छी चीज है। है ना? राम-राम कहो। रोग तो रोग ही है भला! तो, आपकी बुद्धिमें हो गया-डायबिटिज; और आपको होना है-साक्षी। देखो! साक्षी होना क्या है? बन्धनका ऑपरेशन करना है। दुनियामें आपका जो बन्धन है-लगाव है-राग-द्वेष है, उससे काटकर अपनेको अलग करना है। अगर आप बुद्धिकी डायबिटिजकी चिकित्सा किये बिना ऑपरेशन करवा लेंगे, तो और अधिक बीमार पड़ जायेंगे। यदि आप डायबिटिजकी चिकित्सा करके उसको नॉर्मल कर लेंगे और फिर ऑपरेशन करवायेंगे, तो आपका फोड़ा ठीक हो जायेगा और चमड़ी भी ठीक हो जायेगी। आप भले थोड़े दिनके लिए नॉर्मल कर लीजिये। डायबिटिज अच्छी करके ऑपरेशन करवाइये और स्वस्थ होइये।

बुद्धिकी डायबिटिज क्या है? बेईमानीके प्रति बुद्धिमें जो पक्षपात है। वही बुद्धिका शर्करा रोग है। बुद्धिकी डायबिटिज माने बुद्धिका बारम्बार

राग-द्वेषके पक्षमें हो जाना। बुद्धि बारम्बार रागकी गवाही देने लगती है। रागके पक्षमें हो जाती है। बुद्धि बारम्बार द्वेषके पक्षमें होकर गवाही देने लगती है। यह फोड़ा-फुन्सी क्या हैं? राग-द्वेषसे आक्रान्त बुद्धिसे होनेवाला उपद्रव ही फोड़ा है। राग-द्वेषसे वशीभूत बुद्धिसे होनेवाली उच्छृंखलता ही फुन्सी-फोड़ा है। राग-द्वेष युक्त बुद्धिसे होनेवाली मुहब्बत-नफरत ही तो फुन्सी-फोड़ा है। बुद्धिकी डायबिटिजकी चिकित्सा करके उसको नॉर्मल करना माने बुद्धिकी समतामें स्थिति। यदि आप अपनी बुद्धिमें दोस्त और दुश्मनके प्रति थोड़ीसी समता ले आवें, तो बुद्धिकी डायबिटिज नॉर्मल होने लगेगी। बुद्धिमें समता लानेके बाद आप साक्षी बनकर बैठ जायें। यदि सम बुद्धि होनेके बाद आप अपने साक्षी भावमें स्थित होंगे, तो आपके जीवनमें जो उपद्रवके अवसर नहीं आवेंगे। जीवनमें उच्छृंखलता नहीं आवेगी।

नारायण! आप धर्मके द्वारा—धृति और क्षमा आदिके द्वारा अपने व्यावहारिक जीवनको थोड़ा शुद्धकर लें। उपासनाके द्वारा वासनाओंको थोड़ा पवित्र कर लें—वासनाओंको धो लें। योगके द्वारा चित्तको थोड़ा एक तत्त्वके अभिमुख कर दें। *'एकतत्त्वाभ्यासः। तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।'* आप एक तत्त्वमें स्थितिके लिए थोड़ा-सा प्रयत्नकर लें। इससे क्या होगा? व्यावहारिक पवित्रता आ जायेगी। अन्तःकरणकी वासनायें धुल जायेंगी। आपका मन एक तत्त्वकी ओर अभिमुख हो जायेगा। जब आपका चित्त अन्तरमें लीन होनेके लिए अभिमुख हो जाये, तब आप साक्षी बनके देखिये। पहले आप 'ऑटोमैटिक' (Automatic) चलनेवाली मशीनको 'स्विच' (Switch) दबाकर चालूकर दीजिये। अब आप तमाशा देखते रहिये। मशीन चलती हैं और पानी अपने आप ऊपर उठता है। यदि आप एक बार स्विच दबाकर मशीनको चालू नहीं करेंगे और चालू किये बिना ही साक्षीकी तरह मशीनको देखते रहेंगे। तो चित्तनदीका जल अन्तर्मुखताकी ओर प्रवाहित न होकरके बहिर्मुखताकी ओर प्रवाहित हो जायेगा।

जीवन्मुक्तिका साधन क्या है? वासना-क्षय और मनोनाश सहित तत्त्वज्ञान। माने, चाहे तत्त्वज्ञानके पहले अथवा पीछे, वासना-क्षय और मनोनाशको जोड़नेसे जीवन्मुक्ति सम्पन्न होती है। देखो! हमारा कहना यह है कि आपके जीवनमें जो यह गाँठ पड़ गयी है—ग्रन्थि, इसको काटना है।

ग्रन्थि क्या पड़ गयी है? साक्षी और चित्त दोनोंकी ग्रन्थि हो गयी है। साक्षी और चित्तकी एकता हो गयी है। इस गाँठको—इस कैन्सर (Cancer) को काटना है। साक्षी और चित्तकी पृथक्ताके बिना आप शुद्ध साक्षी नहीं हो सकते हैं। बिना इस ऑपरेशन (Operation) के आप सच्चे गवाह नहीं हो सकते हैं। हाँ! कूट साक्षी हो सकते हैं। झूठे गवाह हो सकते हैं।

जीवन्मुक्तिका अर्थ यह नहीं है कि ***सजग्धी सपीती***—जो मनमें आया, सो खा लिया। जो मनमें आया, सो पी लिया। जहाँ मनमें आया, वहाँ चले गये। जो मनमें आया, सो करलिया जो मनमें आया, सो बोल दिया। यह जीवन्मुक्तिका अर्थ नहीं होता है। जीवन्मुक्तिका अर्थ होता है—जीवनमें व्यावहारिक सदाचारकी प्रतिष्ठा हो जाये। मनमें दुर्वासनाओंकी प्रधानता न रहे। समझदारीके अनुसार जीवनको चलानेकी आदत डाल ली जाये। चित्तकी अन्तर्मुखताका थोड़ा अभ्यास हो जाये। यदि आप भीतरकी ओर चलते हुए चित्तके साक्षी बनेंगे, तो शुद्ध साक्षी हो जायेंगे। यदि बाहरकी ओर बहते हुए चित्तके साक्षी बनेंगे, तो कहीं-न-कहीं दोस्त-दुश्मनमें फँस जायेंगे। चित्त ले जा करके दोस्त-दुश्मनमें बाँध देगा। हाँ! सड़कपर कभी दोस्त मिलते हैं और कभी दुश्मन मिलते हैं। कभी अपने मित्रका मुर्दा ही मिल जाता है और कभी अपना प्यारमें भरा हुआ मित्र मिल जाता है। कभी अपने दुश्मनकी सजी-सजाई बरात मिल जाती है और कभी क्रोधमें आविष्ट दुश्मन मिल जाता है। उस समय आप शुद्ध-साक्षी न रह करके कूट-साक्षी हो जायेंगे—झूठे गवाह हो जायेंगे।

जीवन्मुक्तिकी साधनाकी पद्धति है। ज्ञान तो हुआ। ज्ञान तो हो रहा है। आप ज्ञानके मार्गपर चल रहे हैं। वह तो ठीक है। परन्तु—

**ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।**
**ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः।।**
**मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।**
**तत्र को मोहः कः शोकः।।**

यह जो हर्ष-शोक, मोह-शोकरहित स्थिति प्राप्त करनी है, इसमें आपकी साक्षिता तब काम देगी, जब आप बुद्धिकी डायबिटिज मिटाकरके ऑपरेशन करेंगे। अर्थात् साक्षी और चित्तका पृथक्करण करेंगे। हम

जीवन्मुक्तिके साधनका निरूपण भी करनेवाले हैं। जीवन्मुक्तिके स्वरूपका वर्णन; जीवनमुक्तिमें प्रमाणका वर्णन; जीवन्मुक्तिके साधनका वर्णन; और जीवन्मुक्तिके प्रयोजनका वर्णन। प्रयोजन तो क्या पूछना है?

**ज्ञातं सत् आत्मनीष्यते।**

प्रयोजनका अर्थ यह होता है कि चीज जान लेनेपर हम उसे अपने साथ ही रखना चाहते हैं। हीरेको पहचान लिया कि धरतीपर यह हीरा पड़ा हुआ है। महाराज! तुरन्त वहाँसे उठे और उसको उठा करके पॉकेट (Pocket) में रखा। यह जीवन्मुक्ति ऐसा हीरा है कि इसको आप पहचान लेंगे, तो कभी इसको आप छोड़ ही नहीं सकते। छोड़नेका मन ही नहीं होगा। यह तो चलता-फिरता आनन्द है। यह हँसता-बोलता आनन्द है। यह तो जीवनका आनन्द है। जैसे पति-पत्नीका आनन्द लौकिक है; जैसे ज्यादा पैसे मिलनेका आनन्द लौकिक है; जैसे अपने दोस्तके साथ रहनेका आनन्द लौकिक है; जैसे लाख रुपयेकी मोटरमें चलनेका आनन्द लौकिक है; वैसे वह जीवन्मुक्तिका सुख इसी जीवनका दृष्ट सुख है। यह जीवन्मुक्तिका सुख अदृष्ट सुख नहीं है। यह मरनेके बादका सुख नहीं है। यह स्वर्गका सुख नहीं है। यह वैकुण्ठका सुख नहीं है। यह तो इसी जीवनका दृष्ट सुख है। इसी बातको लेकर पूर्वमीमांसकोंमें और उत्तर-मीमांसकोंमें खूब-खूब शास्त्रार्थ है। उत्तर-मीमांसकोंका कहना है कि बाबा! हम नकद मालकी चर्चा करते हैं। हम उधार-मालकी चर्चा बिलकुल नहीं करते हैं। इसी जीवनमें आपको परम-सुखी, परम-शान्त, परम-आनन्दित और परम-प्रकाशमय ज्योतिष्पुञ्ज बनानेके लिए यह जीवन्मुक्ति-विवेक-प्रकरणका आरम्भ होता है।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 6

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!**

'गुरु' शब्दका प्रयोग ईश्वरके लिए आता है। '**स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।**' यह सूत्र है। 'पातंजलदर्शन'का सूत्र है। '**स एष ईश्वरः। पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।**' यह जो परमेश्वर है, '**स एषः।**' यह संस्कृतमें बोलनेकी रीति है। '**स एषः अभिनयेन दर्शयति।**' इसको बोलते हैं–अभिनय। हाथके इशारेसे अभिनय करके बताते हैं–वह जो यह है–'**पूर्वेषामपि गुरुः**' अब तक जितने गुरु हुए हैं, उन सबका यही गुरु है। क्यों? **कालेन अनवच्छेदात्।** यह गुरु काल से कटता नहीं है। इस गुरुको काल कभी मार नहीं सकता। काल अपने गालमें नहीं ले सकता। निगल नहीं सकता। योगदर्शनमें–सर्वज्ञ होनेसे सबका गुरु, कालानवच्छिन्न होनेसे नित्य, क्लेशकर्मविपाक और आसवसे अपरामृष्ट होनेके कारण सच्चिदानन्दघन, पुरुष-विशेषके रूपमें ईश्वरको स्वीकार किया गया है। हमारा कहनेका अभिप्राय क्या है? यही कि गुरु तत्त्व, असलमें एक है। जैसे कृष्ण एक हैं और उनकी मूर्त्ति और उनके मन्दिर अनेक हैं; जैसे नारायण एक हैं और उनकी मूर्ति और उनके मन्दिर अनेक हैं; जैसे शिव एक हैं, उनकी मूर्ति और उनके मन्दिर अनेक हैं; वैसे, 'गुरु' पद वाच्य एक तत्त्व परिपूर्ण ईश्वर है और बाकी सब उसकी मूर्ति और मन्दिर हैं।

देखो! सब शरीरोंमें जो मिट्टी है, उसका खजाना धरती है। सब शरीरोंमें जो पानी है, उसका खजाना जल है। सब शरीरोंमें जो गर्मी है, उसका खजाना तेज है। सब शरीरोंमें जो श्वास है, उसका खजाना वायु है। '**यावद् वायुस्तिष्ठति देहे।**' शरीरकी उपाधिसे वायुका ही नाम प्राण होता है। अतः प्राणका खजाना वायु है। हमारे शरीरमें जो छिद्र हैं–नाकमें, मुँहमें, दिलमें, उनका खजाना आकाश है। इस शरीरमें जो परिच्छिन्न जीव है–अन्तःकरणी, उसका खजाना ईश्वर है। जो शुद्ध आत्मा है–निरुपाधिक, वह परब्रह्म परमात्मासे एक है। जब हम आकृतिकी दृष्टिसे विचार करते हैं, तब भेद मालूम पड़ता है। जब हम आकृतिको छोड़कर तत्त्वकी दृष्टिसे विचार करते हैं, तब अभेद ब्रह्म मालूम पड़ता है। मिट्टी–पानी–आग–हवा–आकाश–

मनस्तत्त्व - बुद्धितत्त्व - कारणतत्त्व - सबका प्रकाशक - पृथक् - पृथक् प्रकाशक द्रष्टा–सबका प्रकाशक पुरुष-विशेष और अल्प-सर्वके भेदसे रहित प्रकाशमात्र, जिसमें प्रकाश्य और प्रकाशकका भेद नहीं हैं, ब्रह्म है। तत्त्वकी दृष्टिसे ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ नहीं है। सब ब्रह्म है। अद्वितीय ब्रह्म। बात बिलकुल ही सीधी-सादी है; लेकिन, नाम-रूपमें आग्रह होनेके कारण हम मिट्टीसे मिट्टी तकको, पानी-से-पानी तकको और हवा-से-हवा तकको मिलाकर देख नहीं पाते हैं। हम अपनी साँसको ही सर्वस्व समझते हैं; लेकिन, जिस हवामें यह साँस जीती है, उस तरफ हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। हम अपने जीवको ही सब कुछ समझते हैं; लेकिन, जिस ईश्वरमें यह जीव जीता है, उस ईश्वरकी ओर ध्यान ही नहीं जाता है। हम अपने द्रष्टापने तकका अनुभव कर लेते हैं; परन्तु, जो सबका द्रष्टा है, उसकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। द्रष्टा और दृश्यका भेद व्यावहारिक है। दृङ्मात्र जो तत्त्व है, वह परमार्थ है। उस ओर दृष्टि नहीं जाती है। इसीसे शास्त्रमें ऐसा विधान है। मैंने आपको 'ब्रह्माण्डपुराण'की यह कथा सुनायी होगी।

एक दिन सब महात्मा व्यासजीके पास गये और बोले–'व्यासजी महाराज! आपने वेदोंका विभाग किया। ब्रह्मसूत्रका निर्माण किया। महाभारत-पुराणकी रचना की। '**व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।**' यह जितना संस्कृत वाङ्मय है, व्यासजीकी जूठन है। व्यासजीकी प्रसाद है। हाँ। नारायण! '**व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।**'आजतक दुनियामें ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाला कोई भी पैदा नहीं हुआ कि–'**यदिहास्ति तदन्यत्र। यन्नेहास्ति न तद् क्वचित्।**' व्यासजीने प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि–'जो कुछ हमारे महाभारतमें है, वही सारी दुनियामें है और होगा। जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं नहीं है।' ऐसी अधिकारपूर्वक प्रतिज्ञा करनेवाले हैं–व्यासजी। उनसे ऋषियोंने पूछा–'महाराज! हम सब लोग आपका प्रसाद लेते हैं। आप हमारे गुरु हैं। हम आपकी पूजा कैसे करेंगे? श्रीकृष्णके लिए जन्माष्टमी है। शिवके लिए शिवरात्रि है। रामके लिए रामनवमी है। गुरुकी पूजाके लिए भी कोई तिथि-पर्व-व्रत होना चाहिए। उसकी विधि होनी चाहिए। आपकी पूजा किस प्रकार की जाये?' व्यासजी महाराजने बताया कि–'सबका गुरु परमेश्वर है।'

भागवतमें इसका एक बड़ा सुन्दर प्रसंग है। '**अनाद्यविद्या युक्तस्य पुरुषस्य आत्मवेदनं स्वतो न सम्भवात् अतस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ।**' यह पुरुष जो है, वह अनादि-अविद्यासे तादात्म्यापन्न है। कब यह अज्ञान जुड़ गया? इसकी खोज करते-करते चले जाओ। कालकी आदि नहीं है। इसलिए, अविद्याकी भी आदि नहीं है। अविद्या और काल दोनों एक रूप ही हैं हो! कालकी आदिका ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिए, जहाँ तक कालकी कल्पना रहेगी, वहाँ तक अज्ञान जरूर रहेगा। कालके अन्तकी भी कल्पना नहीं हो सकती। इसलिए, जहाँ तक कालकी कल्पना रहेगी। वहाँ तक अविद्या जरूर रहेगी। अच्छा! यह पूर्व-पश्चिमका जो अन्त है ना, वह भी अविद्यासे युक्त है। भला बताओ! पूर्वका अन्त कहाँ है? पश्चिमका अन्त कहाँ है? धरती पर ही नहीं हो, आकाशमें भी ढूँढो, तब भी कभी किसीको नहीं मिलेगा। जब तक देशकी कल्पना रहेगी, तबतक देशके आदि-अन्तका अज्ञान भी रहेगा। इसलिए, यह देश-काल अविद्यात्मक हैं। 'सिद्धान्तबिन्दु'-'दशश्लोकी' जो बोलते हैं ना, इसकी टीकामें 'मधुसूदन सरस्वती' ने बताया कि देशकाल अविद्यात्मक हैं। अज्ञान ही देश-कालका स्वरूप है। जब इस अनादि अविद्यासे युक्त बच्चेने आँख खोली-सामनेकी ओर देखा और पीछेकी ओर नहीं देखा, तब उसके लिए पूर्व-दाहिने-बायें-पीछे दिग् -भेद बन गया। इस अनादि अविद्यासे युक्त जो जीव है, वह अपने देश-कालसे अनवच्छिन्न है। जिसमें पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे, बाहर-भीतरकी कल्पना नहीं है; जिसमें आदि-अन्त-मध्यकी कल्पना नहीं है और जिसमें दृश्य द्रष्टाके भेदकी कल्पना नहीं है, उस वस्तुको यह जीवात्मा स्वयं कैसे जानेगा? यह प्रश्न भागवतमें उठाया। '**अनाद्यविद्या-युक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनं स्वतो न सम्भवात्। अतः तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत्।**' स्वयं यह हो ही नहीं सकता। इसलिए, इसको ज्ञान-दानकी कोई परम्परा चाहिए। उस ज्ञान-दानकी परम्पराका जो आद्याचार्य है, वह परमेश्वर है।

शंकर-रामानुज-निम्बार्क-मध्व-वल्लभ-ईसा-मुहम्मद-जरथोस्त-नानक-सब गुरुओंके आदिमें जो गुरु है, उस गुरुकी संज्ञा होती है-ईश्वर। उसकी पूजा कैसे करना? 'ब्रह्माण्डपुराण'में बताया कि आषाढ़ शुक्ल

पूर्णिमाके दिन अपने-अपने गुरुकी मूर्त्तिमें उस परमेश्वरकी पूजा करना। अपने-अपने गुरुमें हो! जैसे घरमें प्राइवेट (Private) शालिग्राम होते हैं। सच पूछो तो, अपने घरमें प्रतिष्ठित शालिग्राम गण्डकी नदीका एक पत्थर है; परन्तु, उसको निमित्त बना करके हम सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् सर्वात्मा-परिपूर्ण-परमेश्वरकी पूजा करते हैं। उसी प्रकार, अपने गुरुको माध्यम बनाकर हमें परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिए। पुराणोंमें गुरु-पर्वका मूल इस प्रकार प्राप्त होता है। जैसे शिव-पर्व है, राम-पर्व है, श्रीकृष्ण-पर्व है, वैसे इसको व्यास-पर्व अथवा गुरु-पर्व बोलते हैं।

अब हम आपको अपने हृदयकी पीड़ाकी एक बात सुनाते हैं। आप लोग उस बातपर थोड़ा ध्यान दें। हम आपको सच्ची-झूठीकी बात तो क्या सुनावें? हमारे पास बम्बईमें ही एक बार एक बालक आया था। उसने बताया—'महाराज! एक संस्था ऐसी है, जिसको ढाई-सौ रुपया पहले देना पड़ता है और ढाई-सौ रुपया बादमें देना पड़ता है और वह एम.ए. (M.A.)' का सर्टिफिकेट (Certificate) दे देती है। महाराज! वह एम.ए. का सर्टिफिकेट हमको मिल सकता है। आपकी क्या आज्ञा है? हम वह लें कि न लें?' अब, भला बताओ! हम क्या आज्ञा दें? नारायण! सीताराम कहो। वह मैट्रिक तक पढ़ा हुआ है; लेकिन, उसको एम.ए. की डिग्री मिल जायेगी। माने उसने एफ.ए., बी.ए. क्लास (Class) के क्रमसे एम.ए. पास नहीं किया और वह सीधे एम.ए. हो गया। तो, भाई मेरे! उसकी योग्यता तो कुछ बढ़ेगी नहीं। वह तो मैट्रिककी ही रहेगी। हैं? हाँ!

अब आपको वह पीड़ावाली बात सुनाते हैं। यदि आपके किसीके विरुद्ध पड़ती हो, तो हम 'बच्चूभाई'की याद करके उनकी तरह पहलेसे ही कह देते हैं कि 'क्षमा करना!' माफ करना!' हम तो उनसे कभी-कभी हँसी भी करते हैं कि 'यदि बादमें माफ ही करना पड़ेगा, तो पहले कहनेकी क्या जरूरत है? ऐसी बात काहेको कहते हो, जिसमें माफ करना पड़े?' खैर! फिर भी, हम भी उन्हींका अनुकरण करके वैसी ही बात कहते हैं। आपको एक बात कहते हैं। जब पहले-पहल हम अपने गुरुजीके पास गये, तब उन्होंने कहा—'आओ! हम तुमको 'पंचदशी' पढ़ाते हैं। आज पावन गुरुपर्व है। गृहस्थाश्रममें जिनसे कृपा प्राप्त की, उनका स्मरण करते हैं। मैं गृहस्थ

था। वह संन्यासी थे। पंचदशीमें पहले संविद्का स्वरूप है। पंचदशीके पहले दस श्लोक ऐसे हैं–केवल पहले दस श्लोक गिनतीके–कि यदि उनसे दृष्टा-दृश्यका विवेक कर लिया जाये, तो उन्हींमें ही द्रष्टाकी अखण्ड-ब्रह्मकी एकताको समझा दिया गया है। केवल साक्षी मात्र आत्मा है और वह '**अखण्डं सच्चिदानन्दं महावाक्येन लक्ष्यते।**' अन्तिम दसवें श्लोकमें कह दिया गया कि यह साक्षी साक्षात् ब्रह्म है। वेदान्त तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे, उन दस श्लोकोंसे अधिक और कोई शिक्षा सारे वेदान्त ग्रन्थोंमें नहीं दी जाती है। उन्हीं दस श्लोकोंमें जितनी बातें कही गयी हैं, वही सारे वेदान्तमें सिखाई जाती हैं। तो, जब मैं अपने गुरुजीके पास गया, तब उन्होंने मुझसे कहा–'आओ! मैं तुमको पंचदशी पढ़ा देता हूँ। मैंने उनसे निवेदन किया–

*भरि लोचन बिलोकि अवधेसा।*
*तब सुनिहऊ निर्गुण उपदेशा।।*

पहले तो हमको भर आँख साकार भगवान्‌का साक्षात् दर्शन चाहिए। उस समय हमारी आँखोंमें आँसू आ गये थे। मैं पहले अपनी इन्हीं आँखोंसे भगवान्‌का दर्शन कर लूँगा, उसके बाद सुनूँगा निर्गुण उपदेश; क्योंकि, देहमें मैं-पना है और इन आँखोंसे जो दीखता है, वह सच्चा मालूम पड़ता है।

हम आपसे जो निवेदन करना चाहते हैं, वह यह है कि हमारी वेदान्तकी औपनिषद परम्परा है, जिसको बौद्धोंके द्वारा ध्वस्तप्राय हो जानेपर शंकराचार्यने पुनरुज्जीवित किया। वेदान्त माने उपनिषद्‌का ज्ञान। वह बौद्धोंसे पहले भी था। बल्कि, यों कहें कि बौद्धोंने उपनिषदोंसे ही थोड़ी-थोड़ी बात लेकरके अपने सम्प्रदायको संगठित किया। बौद्ध उपनिषद्-परम्परासे किञ्चित् नीचे चले गये। हमें यह कहनेमें कोई संकोच नहीं है। शंकराचार्यने स्वयं भी कहा है कि '**ऐकेन सौगतानाम् अति-सामीप्यं उक्तम्। नैतद् बुद्धेन भाषितं**'के भाष्यमें शंकराचार्यने कहा कि बुद्ध उपनिषदोंके अर्थके बहुत निकट हैं; क्योंकि, वे प्रपंचका निषेध करके शून्यकी स्थापना करते हैं। बौद्ध प्रपंचका निषेध करके शून्यकी स्थापना तो कर देते हैं; परन्तु, बिना किसी आलम्बनके। सत्यका ज्ञान हुए बिना किसीको असत्य नहीं कहा जा सकता है। आत्मा-ब्रह्म सत्य है। इस

सत्यका ज्ञान होनेपर प्रपंचकी असत्यता मालूम पड़ती है। **न हि अधिष्ठानं अविज्ञाय आरोप्यं आरोपितं निषिध्यते।** अधिष्ठानका ज्ञान हुए बिना अध्यारोपका अपवाद नहीं हो सकता है। रज्जुका ज्ञान हुए बिना सर्पका निषेध नहीं हो सकता है। जब तक सच्चाई दिख नहीं जाती है, तब तक किसीको झुठलानेका कोई हक किसीको नहीं है। तो, यह शांकर सम्प्रदाय-औपनिषद सम्प्रदाय-वेदान्त सम्प्रदायकी परम्परा रही है। इस परम्परामें पहले धर्मानुष्ठान है। धर्मानुष्ठानके बाद उपासना है। उपासनाके बाद योगाभ्यास है। यदि आप धर्मानुष्ठानको मैट्रिक क्लासका काम समझो, तो उपासनाको बी.ए. क्लासका काम समझो और योगाभ्यासको एम.ए. क्लासका काम समझो। जब वेदान्त आवे, तब आप समझो कि आपने 'डॉक्टरेट' (Doctorat) प्राप्त कर लिया। हाँ! आप 'पी.एच.डी.' (PH.D.) हो गये। आप 'डी.लिट्.' (D.LITT.) हो गये। इस ढंगसे यह परम्परा हमारे वेदान्त-सम्प्रदायकी रही है।

अभी थोड़े दिनोंकी एक बात है। एक वकीलसे कोई चर्चा हो रही थी। यहाँ वकील लोग बैठे होंगे-जानते होंगे। एक मुकदमेमें किसीको गवाही देनी थी। वकीलने पूछा 'जिनको गवाह बनाया जा रहा है, उनका नाम 'ब्लैक-लिस्ट' (Black List) में तो नहीं है?' हाँ! वकीलने ऐसे पूछा हो! उसने कहा–हिसाब-किताबका मामला है। अगर गवाहका नाम ब्लैक लिस्ट में होगा, तो जजकी अदालतमें उसकी गवाही मान्य नहीं होगी। यह साक्षी बनाकर अदालतमें पेश तो किये जा सकते हैं कि यह इस बातके साक्षी हैं कि इनके घरमें हमारे पाँच-लाख रुपये रखे हुए थे। इनके बही-खातेमें लिखा है। ठीक है। आप इनको साक्षी तो बना रहे हैं; परन्तु, प्रश्न यह है कि इनका नाम कहीं ब्लैक-लिस्टमें तो नहीं है?'

यदि आप कर्मतः पापाचरणसे मुक्त होनेका प्रयास नहीं करते हैं; आप मनसे, वासनासे मुक्त होनेका प्रयास नहीं करते हैं; आप बुद्धिसे तरह-तरहके संशय और भ्रमसे छूटनेका प्रयास नहीं करते हैं; और, आप अनादि-अविद्यासे मुक्त होनेके लिए किसी तत्त्वज्ञकी साक्षिताको स्वीकार नहीं करते हैं, तो आप स्वयं शुद्ध साक्षी होनेका सपना मत देखिये। यदि आपके गुरु ही साक्षी नहीं हुए, तो आप कहाँसे साक्षी हो जायेंगे? यदि आपके गुरुको ही

ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हुई, तो आपको कहाँसे ईश्वरकी प्राप्ति हो जायेगी? यदि आपकी दृष्टिमें सृष्टिमें कोई शुद्ध-निर्विकार महात्मा ही नहीं है, तो भला आप अपने शुद्ध-निर्विकार महात्मा होनेकी कल्पना कैसे कर सकते हैं?

नारायण! हमारे श्रौत-स्मार्त-धर्मकी यह परम्परा थी कि पहले धर्मानुष्ठान द्वारा अपने चरित्रको शुद्ध करके-दुश्चरित्रसे विरत होकरके, उपासनाके द्वारा अपने मनको दुर्वासनासे मुक्त करके, योगाभ्यासके द्वारा अपने मनोराज्यसे मुक्त होकरके, फिर वेदान्तकी शिक्षा-'तत्त्वमस्यादि' महावाक्यका श्रवण करते थे। और श्रवणमात्रसे ही अविद्याकी निवृत्ति करते थे। सम्प्रदाय-परम्परा यह थी। वेदान्तका सम्प्रदाय यह था। वेदान्तका नाम लेना ठीक नहीं। सनातन-धर्मकी यह परम्परा थी। वैदिक-धर्मकी यह परम्परा थी। श्रवणके पहले भी कुछ कर्त्तव्य नहीं और बादमें भी कुछ कर्त्तव्य नहीं। वेदान्त दर्शनमें-वैदिक वाङ्मयमें श्रवणमात्रसे ही अविद्याकी निवृत्ति होती है। देखो! इसका कारण यह है कि जो बुद्धिमानीकी बात होती है-समझदारीकी बात होती है, उसको अगर ठीक-ठीक समझनेकी कोशिश की जाये, तो एक बार समझानेसे समझमें आ जाती है। यदि एक बार समझानेसे समझ न आवे, तो हम कहते हैं कि नौ बार समझ लो। 'तत्त्वमसि' महावाक्यका प्रयोग तो नौ बार किया हुआ है। उसको समझ लो। हाँ! परन्तु, समझनेकी तैयारी करके आओ; क्योंकि, फिर शिखा-धर्म, सूत्र-धर्म, गृहस्थाश्रम-धर्म, वानप्रस्थ-धर्म-इनसे बिल्कुल ऊपर उठ जाते हैं।

आज हुआ यह। अभी हमने आपके सामने वह पीड़ाकी बात कही नहीं है। आपको केवल उसकी भूमिका ही सुनाई है। कहनेका अर्थ यह है कि जिन लोगोंका नाम ब्लैक-लिस्टमें लिखा हुआ है, वे आज सत्यके सम्बन्धमें गवाह बन रहे हैं। जो लोग कामसे तादात्म्यापन्न होकर कामी होते हैं; क्रोधसे तादात्म्यापन्न होकर क्रोधी होते हैं; लोभ-मोहसे तादात्म्यापन्न होकर लोभी-मोही होते हैं, वही लोग अदालतमें उपस्थित होकरके साक्षी हो जाते हैं और बाहर निकलकरके गुण्डागिरी करते हैं। गिरहकट्ट हो जाते हैं। उनके पास गवाही करनेका जो प्रमाण-पत्र है, वह उनको जाली एम.ए., जाली पी.एच.डी. और जाली डी.लिट्की तरह प्राप्त हुआ है। उनके

अनजान होनेके कारण या उनका शौक होनेके कारण या उनकी कोई महत्त्वाकांक्षा होनेके कारण एक राह चलता आदमी उनके सामनेसे गुजरा और उनको डिग्री देकर चला गया। इसका निषेध है।

**न विरतो दुश्चरितात् न शान्तो न समाहितः।**
**न शान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनेनमाप्नुयात्।।**

'कठोपनिषद्'का वचन है। यदि आप दुश्चरित्रसे उपराम नहीं हुए हैं; यदि आपके मनमें काम-क्रोधादि शान्त नहीं हो रहे हैं; यदि आपका मनोराज्य मिट नहीं रहा है; यदि आप बाहरी दुनियामें सिद्धियोंकी बात सुनकरके बभूतके लिए, कुंकुमके लिए, जेवरके लिए व्याकुल हो जाते हैं; और, यदि आप बाहरी दुनियाकी सिद्धियोंको देखकर व्याकुल हो जाते हैं, तो आप निश्चित समझो कि आपमें अभी तक वह योग्यता उत्पन्न नहीं हुई, जिससे आप स्वतः सिद्ध स्वयं प्रकाश-सर्वावभासक आत्म-ब्रह्म तत्त्वका साक्षात्कार कर सकें। केवल विद्या चाहे जितनी बड़ी हो, केवल बुद्धि चाहे जितनी बड़ी हो, केवल समझदारी चाहे जितनी बड़ी हो, यह जो वैदिक सिद्धान्त है, इसका साक्षात्कार क्रम-क्रमसे-सम्प्रदायक्रमसे करना चाहिए और उसके लिए पहले योग्यता उत्पन्न करनी चाहिए। गुरु-परम्पराका भंग हो जानेसे माने विश्वविद्यालयके कुलपतिके द्वारा-अधिकारीके द्वारा प्रमाणित सर्टिफिकेट न लेनेके कारण यह जाली सर्टिफिकेट ले करके आदमी दूसरेको दिखा सकता है कि हम एम.ए. पास हैं और स्वयंको भी धोखेमें रख सकता है कि हमारे पास एम.ए. की डिग्री है; लेकिन, वह डिग्री बिलकुल जाली होती है।

आज 'व्यास-पूर्णिमा'के दिन-'गुरु-पूर्णिमा' के दिन आप यह समझें कि हमारी अनादि-परम्परासे ज्ञानका दाता कोई तत्त्वज्ञ होता है। '**कश्चिद् तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत्**' जैसे दीयेसे दीया जलता है, वैसे तत्त्वज्ञानीसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है यह जो तत्त्वज्ञानकी सम्प्रदाय-परम्परा चली आ रही है, उसको भंग करके जिन लोगोंने अनधिकृत पुरुषोंसे अपनी एम.ए. या डॉक्टरेटकी डिग्री हासिल कर ली है, वे दूसरोंको भी धोखेमें डालते हैं और स्वयं भी धोखेमें पड़ते हैं। आज गुरु-पूर्णिमाके दिन आप जीवन्मुक्तिका अभिप्राय समझें। जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख माने वह

सुख, जिसका अनुभव संसारी पुरुषोंको नहीं हो सकता। जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख माने बिना मकानका सुख, बिना मोटरका सुख, बिना कपड़ेका सुख, बिना ब्याहका सुख। हाँ! जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख माने बिना यज्ञ-यागादिका सुख, बिना उपासनाका सुख, बिना योगका सुख। जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख माने स्वतः आत्मस्वरूप सुख।

देखो! वह सत्य सत्य नहीं है, जो ज्ञानके विरुद्ध होता है और वह ज्ञान ज्ञान नहीं है, जो सत्यके विरुद्ध होता है। जो सत्य होता है, वही ज्ञान होता है और जो ज्ञान होता है, वही सत्य होता है। वह सत्य और ज्ञान भी नहीं है, जो आनन्दके विरुद्ध है। हाँ! जो सत्य है, वही ज्ञान है। जो ज्ञान है, वही सत्य है। जो सत्य और ज्ञान है, वही आनन्द है। जो आनन्द है, वही सत्य और ज्ञान है। इस सच्चिदानन्दघन तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तत्त्वज्ञानी गुरुकी आवश्यकता होती है। गुरु-परम्परासे जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह सच्चा होता है। जो केवल शौकिया ज्ञान होता है, वह कभी दूसरेको और कभी अपनेको धोखेमें डालता है। इसलिए, गुरु-परम्पराकी आवश्यकता है।

जीवन्मुक्तसे ही जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख प्राप्त होता है। जब हम एक जीवन्मुक्तको देखते हैं—जह हम श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज' को देखते हैं, तब हमारा हृदय परमानन्दमें निमग्र हो जाता है। उनके दाँत तो हमेशा ही दिखते रहते हैं। मस्तानी चालसे चलते हुए जा रहे हैं। चदरा कंधे परसे कहाँ गिर गया, उसका कोई ख्याल नहीं है। जैसे दीयेसे दीया जलता है, वैसे गुरु-शिष्य परम्परासे जीवन्मुक्तिका विलक्षण परमानन्द प्राप्त होता है। इसलिए, हमें अपनी सम्प्रदाय-परम्पराका आदर करना चाहिए। हमें अपनी गुरु-परम्पराका आदर करना चाहिए। जैसे हम भिन्न-भिन्न मन्दिरोंमें परमेश्वरकी भिन्न-भिन्न मूर्त्तियोंकी पूजा करते हैं, वैसे हमें समस्त गुरुजनोंमें परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिए। परमेश्वरकी ही जो अनेक मूर्तियाँ हैं—गुरुजन, उनका आदर-सत्कार-पूजा हमारा कर्त्तव्य हो जाता है।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 7

## नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

कल 'गुरु-पूर्णिमा' आगयी। वैसे कल 'जीवन्मुक्ति' की थोड़ी-सी बात कही तो थी। आप इन बातोंपर थोड़ा-सा ध्यान दें। यह बात जरूरी है। पहली बात तो यह है कि संसारी लोग बन्धनकों ही नहीं समझते हैं। वह तो बन्धनको सुखका साधन मानते हैं। यदि स्वाभाविक रूपसे माताके गर्भसे दो-बच्चे बिलकुल एक साथ जुड़े हुए पैदा हों, तो डाक्टर लोग उनको अलग-अलग करनेकी कोशिश करते हैं। कभी-कभी दो-बच्चे आपसमें ग्रन्थि सहित बँधे हुए पैदा हो जाते हैं, तब डाक्टर लोग प्रयास करके उन दोनों बच्चोंके बीचमें जुड़ी हुई ग्रन्थिको-नलीको काट देते हैं। डाक्टर लोग यह प्रयास इसलिए करते हैं कि उन बच्चोंका अलग-अलग रहना जरूरी है;अन्यथा, उन दोनोंका जीवन बन्धनमें पड़ जायेगा और वे कोई काम ही नहीं कर सकेंगे।

मैंने साधुओंसे ऐसे सुना था कि एक कोई बहुत छोटा बच्चा था। उसने कहीं सोनेकी छोटी-सी गिन्नी-अशर्फी देखी। उसने उसको हाथमें उठा लिया और मुट्ठी बाँध ली। अब वह मुट्ठी ऐसी बँध गयी कि लोगोंसे नहीं खुली। डाक्टरोंको दिखाया गया। उन्होंने भी कोशिश करके देख ली। वह गिन्नी हाथके भीतर और मुट्ठी बँधी हुई। वह गिन्नी ऐसी जम गयी कि बच्चेकी मुट्ठी खुले नहीं। डाक्टरोंने कहा कि 'आपरेशन करना पड़ेगा।' उधरसे कोई महात्मा आये। उन्होंने पूछा कि 'बात क्या है?' लोगोंने कहा कि 'इस बच्चेकी मुट्ठीमें गिन्नी बँध गयी है मुट्ठी खुलती नहीं है। न इस बच्चेसे खुलती है, न हम लोगोंसे खुलती है और न डाक्टरोंसे खुलती है। डाक्टरोंका कहना है कि अब तो आपरेशन ही करना पड़ेगा।' महात्माने कहा कि 'नहीं! नहीं! आपरेशनकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप लोग चिन्ता न करें। देखो! भगवान् सब ठीक करेंगे। आप यह बताओ कि आप लोगोंके घरमें और गिन्नी है?' लोगोंने कहा कि 'हाँ! है।' महात्माने कहा कि 'उसको ले तो आओ।' जब दूसरी गिन्नी लाकर के उस बच्चेके सामने रखी गयी, तब उसने दूसरे हाथसे उसको पकड़नेकी कोशिश की। लोगोंने उसका दूसरा हाथ

पकड़ लिया। अब जब दूसरा हाथ पकड़ लिया, तब उस बच्चेने पहले हाथ की मुट्ठी खोलकर, उसीसे दूसरी गिन्नी उठा ली। लो भाई! आपरेशन किये बिना ही बच्चेकी मुट्ठी खुल गयी और गिन्नी मिल गयी।

हमने बचपनमें साधुओंसे यह बात सुनी थी। देखो! वह जो मुट्ठीका बन्धन था न, बच्चा उसको बन्धन नहीं समझता था। यदि दो जुड़वे बच्चे एक साथ पैदा हों। तो उनको हम बन्धन समझकर अलग-अलग करेंगे और दोनोंसे अलग-अलग काम लेंगे। बन्धनका अर्थ यह होता है कि आप अपने मनकी निर्बलतासे संसारकी कई अवस्थाओंमें बन्धनमें पड़ गये। हम किसी भी बन्धनको सहज या स्वाभाविक नहीं मानते हैं। यह हमारी एक मानसिक पकड़ है। जब उसके खिलाफ कोई काम होने लगता है, तब हम समझते हैं कि हमारे ऊपर क्लेशका पहाड़ टूट पड़ा। प्रश्न यह है कि यह जो तुम बन्धन मिटाना चाहते हो, वह क्या है? धन-प्राप्ति होने पर हम सुखी हो गये। धन-हरण होने पर हम दुःखी हो गये। जन-मरण अथवा जन-जन्म होने पर हम सुखी हो गये। जन-मरण होने पर हम दुःखी हो गये। हमने सुखके यह-यह साधन जुटाये—यह कर्तृत्व। हमने भोगके यह-यह साधन जुटाये—यह कर्तृत्व। मैं कर्त्ता हूँ। मैं भोक्ता हूँ। ये सब, असलमें, बुद्धिकी ही ग्रन्थियाँ हैं।

अब रही बात स्वाभाविकताकी। आप स्वाभाविक किसको कहते हैं? यह लोगोंके चित्तमें—बुद्धिमें स्वाभाविकताकी जो परिभाषा बैठी है, वह अभी तक हमारी समझमें नहीं बैठी है। लोग सार्वजनिक रूपसे स्वाभाविक किसको कहते हैं? यह हमको मालूम नहीं है। हाँ! यह हम जानते हैं कि शास्त्रमें स्वाभाविकको भी जन्य कहा जाता है। **स्वभावोऽध्यात्म उच्यते।** हम अपने जीवनमें कोई काम करते-करते, कोई भोग भोगत-भोगते, कोई बात सोचते-सोचते, वैसा करनेकी, भोगनेकी, सोचनेकी, जो आदत डाल लेते हैं। वही स्वाभाविक हो जाती है। फिर, उसीके अनुसार माने आदतजन्य स्वाभाविक जीवन जीते हैं। एक सज्जन बोले कि 'हमारी तो आदत पड़ गयी है कि दातुन करनेसे पहले दस-पन्द्रह मिनट हाथ-पाँव हिला लें, तब शौचालयमें जाने पर शौच होता है।' तो भाई मेरे! यह आदत तुम्हारी डाली हुई है। एक सज्जन कहते हैं कि 'यदि हम दूध न पियें, तो हमको टट्टी ही

नहीं होती है।' उन्होंने अपनी आदत बिगाड़ ली है। यह आदत प्रकृतिसे या ईश्वरके घरसे नहीं आयी है। असलमें, जब हमारे जीवनमें किसी भी कामके करनेका, किसी भी वस्तु या व्यक्तिके भोगनेका, किसी भी इन्द्रियके संचालनका, किसी भी बातको सोचनेका एक ढंग बैठ जाता है, तब वह हमारी आदत बन जाता है। स्वभाव भी संस्कारजन्य ही है।

मूल मृत्तिकामें घट नहीं है, वह गढ़ा हुआ है। मूल जलमें तरंग नहीं है, वह वायुसे पैदा हुई है। मूल अग्निमें लपटका उठना नहीं है। जब ईन्धनके संयोगसे अग्नि प्रज्ज्वलित होती है और वायु प्राप्त होता है, तब वह लपट उठती है। असलमें, देखते-देखते, करते-करते, हम लोगोंकी ऐसी आदत पड़ गयी है कि बहुत-सी बातोंको हम स्वाभाविक रूपसे स्वीकार कर लेते हैं और उनमें जो असंगति है, उसपर विचार नहीं करते हैं। हमसे 'प्रबुद्धानन्द' ही कई बार कह देते हैं कि 'ऐसे बोलनेकी हमारी आदत पड़ गई है।' अब ल्यो! बोलनेकी आदत कोई ईश्वरके घरसे तो आयी नहीं। प्रकृतिके घरसे तो आयी नहीं। हैं?

हमारे गुरुजी थे। उनका नाम था-'पण्डित रामभवन उपाध्याय'। वह व्याकरणके बड़े भारी विद्वान् पण्डित थे। वह पढ़ाते-पढ़ाते बीच-बीचमें बोलते थे-'ओ ल्यो!' हाँ! एक दिन मैंने उनसे पूछ ही लिया कि 'यह ओ ल्यो क्या है?' मैं उनका बहुत ढीठ विद्यार्थी था। अच्छा! एक और बात भी है वह बात पूरी नहीं बोलते थे हो! कहते थे-'ओ शन्तनु! गिलसवा' गिलसवा माने गिलास, जिसमें पानी पीते हैं। मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। मैंने कहा-'महाराज! गिलसवाको माँज दूँ कि गिलसवामें पानी ले आऊँ कि गिलसवाको पटक दूँ? आखिर, गिलसवाको क्या करूँ?' इस प्रकार, वह पूरी बात नहीं बोलते थे। बात अधूरी ही बोलते थे। इसको वह कहते थे कि 'ऐसी हमारी आदत पड़ गयी है। ऐसे बोलनेका स्वभाव बन गया है।' आप लोगोंने 'राम आसरेसे' तो बहुत सुना होगा। है ना? हाँ!

वृन्दावनमें एक हमारे पण्डितजी थे। वह हमको बड़ा भी मानते थे; हमारे पाँव भी छूते थे; लेकिन, जब वह हमसे बात करते थे, तब हर वाक्यके अन्तमें बोलते थे-'समझ गये ना?' हाँ! समझ गये ना? अच्छा! वह जानबूझ कर ऐसे नहीं बोलते थे। वह तो उनकी आदत पड़ गई थी।

परन्तु, वह आदत कोई ईश्वरके घरसे अथवा प्रकृतिके घरसे नहीं आई थी। यह आदत डाली हुई होती है। इस जन्ममें या पिछले जन्ममें भी हम लोगोंका तो यहाँ तक कहना है कि पिछले जन्मकी डाली हुई आदत भी इस जन्ममें अभिव्यक्त होती है। पुनर्जन्मवादी होनेसे यह बात कह देते हैं। देखो! यह स्वभाव बिलकुल हमारा बनाया हुआ है और इसको हम बदल सकते हैं।

असलमें, यह चित्त ब्रह्म नहीं है। आप तो खुद ही चित्तके साक्षी होना चाहते हैं। आप और चित्त दोनों एकमें मिल गये हैं। अतः विचारके द्वारा या निर्विचारके द्वारा अपनेको चित्तसे अलग करना है। हमारा साधनमें कोई आग्रह नहीं है। आप विचारके द्वारा या निर्विचारके द्वारा साक्षीका चित्तसे पृथक्करण चाहते हैं–आपरेशन चाहते हैं। हमारी–हमारे 'मैं'की–हमारे आत्माकी और चित्तकी जो गाँठ पड़ गई है, उस गाँठको खोलना चाहते हैं। साक्षीमें तो बन्धन है ही नहीं। बस! भ्रमवश चित्तका तादात्म्य है। यदि साक्षी और चित्तका आपरेशन करना है, तो भ्रम दूर करना पड़ेगा। साक्षीका चित्तकी गतिविधिसे और शान्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

आपको कल कि परसों साक्षीके बारेमें सुनाया था। संस्कृत भाषामें, साक्षी दो तरहके होते हैं–'कूट साक्षी' और 'शुद्ध साक्षी'। साक्षी माने गवाह। कूट साक्षी वह गवाह होता है, जो मुलजिमसे मिला हुआ होता है। मुलजिम माने अपराधी चित्तकी अवस्थाएँ।

आपने सुना होगा कि जब कलकत्ताके न्यायालयमें 'रासबिहारी बोस'का मुकदमा हो रहा था, तब अंग्रेजोंने रासबिहारी बोसके विरुद्ध एक साक्षी–गवाह उपस्थित किया था। उसका कहना था कि 'हमने अपनी आँखोंसे रास बिहारी बोसको हाथमें बम लेते हुए और अमुक साहबपर बम फेंकते हुए देखा था।' यह गवाही देनेके लिए वह न्यायालयमें आया था। अब रासबिहारी बोसके पक्षके लोग चाहते थे कि इस गवाहको किसी तरहसे फोड़ लिया जाये। उन्होंने सोचा कि यह अंग्रेजोंसे कुछ लेकरके ही तो झूठी गवाही दे रहा है। इसलिए, इसको कुछ देकरके फोड़ लिया जाये। अब उन्होंने दूरसे इशारा किया कि पाँच–सौ रुपया देंगे। वह गवाह कहे– 'नहीं साहब! हमने बिलकुल अपनी आँखोंसे रासबिहारी बोसको हाथमें

बम लेकर अमुक साहबपर फेंकते हुए देखा।' अब सामनेवालोंने इशारा किया कि छह-सौ रुपया देंगे। वह गवाह तो कहे—'नहीं साहब! हमने एकदम अपनी आँखोंसे देखा।' रासबिहारी बोसके पक्षके लोग इशारा करते जाते थे कि आठ-सौ रुपया देंगे। नौ-सौ रुपया देंगे। यह उस समयकी बात है हो! जब एक हजार परमामला पहुँचा, तब उस गवाहने कहा—'हाँ साहब! बस! इतना देखनेके बाद हमारी आँख खुल गयी। हम जाग गये।' अब रासबिहारी बोसके वकीलने पूछा—'अच्छा! देखो! तुमने यह बात कही कि हमने अपनी आँखोंसे रासबिहारी बोसको हाथमें बम लेते हुए देखा; अमुक साहब पर बम फेंकते हुए देखा; और मारते हुए देखा। है ना? अब तुम यह बताओ कि क्या तुमने यह सब सपनेमें देखा?' वह गवाह बोला—'हाँ साहब! सपनेकी ही तो बात है। जागते हुए मैंने कहाँ देखा?'

अब देखो! साक्षी पहले तो अंग्रेजोंका पक्षपाती था। बादमें, वह रासबिहारी बोसका पक्षपाती हो गया। असलमें, वह दोनोंका पक्षपाती नहीं था। वह तो रूपयोंका पक्षपाती था। अंग्रेज लोग उसको सौ-दो-सौ रुपया देते थे। इसलिए, वह रासबिहारी बोसके विरुद्ध गवाही दे रहा था। जब रासबिहारी बोसके पक्षके लोगोंने उसको हजार रुपया देनेको कहा, तब वह रासबिहारी बोसके पक्षमें गवाही देने लगा। इसको बोलते हैं—'कूट साक्षी' माने झूठी गवाही देनेवाला। 'शुद्ध साक्षी' वह है, जो दृश्यके साथ कभी भी तादात्म्यापन्न नहीं होता है। हाँ।

अब देखो! कामकी वृत्ति आयी और साक्षी व्यभिचारीसे एक हो गया। क्रोधकी वृत्ति आयी और साक्षी हिंसकसे एक हो गया। लोभकी वृत्ति आयी और साक्षी बेईमानसे एक हो गया। यह जो सामनेवालेसे-साक्ष्यसे बीच-बीचमें मिल जाता है न, वह 'कूट साक्षी' है। 'शुद्ध साक्षी' वह है, जो किसी भी दशामें साक्ष्यसे नहीं मिलता है। जो जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिमें भी चित्तके साथ तादात्म्यापन्न नहीं होता है, वह 'शुद्ध साक्षी' है। 'अहं सुप्तः'। 'मैं सोया'। यदि ऐसा कहता है, तो सोना तुझे मालूम कैसे पड़ा? है न? अरे! ओ बेवकूफ साक्षी! बोल तो! यदि तुझे सोना मालूम पड़ा, तो तू जाग रहा था। जाग्रत् और स्वप्नसे विलक्षण कोई चित्तकी अवस्था हो गयी थी। यदि उस सुषुप्तिको तूने देखा, तो तू जाग रहा था। तू अपनेको सोया हुआ क्यों

मानता है? बेवकूफी से। नासमझीसे। 'अहं सुप्तः' इत्याकारक जो स्मृति है, वह चित्त और साक्षीके तादात्म्यसे है। आहा!

आपको कल एक बात सुनायी थी। आप फिर याद कर लो। हमारे पाँवमें फुन्सी हो गयी थी। हमको कोई पच्चीस वर्षसे तो डायबिटीज है। आप जानते हैं। हमारे पाँवके पंजेपर एक फोड़ा हुआ। बहुत दवा करनेपर भी वह अच्छा नहीं हुआ। उसमें-से चार-छह महीनोंतक पानी निकलता रहा। वह अच्छा कैसे हुआ? यह चमत्कार तो हम आपको बादमें सुना देंगे। डाक्टरोंकी राय यह थी कि फोड़ेको थोड़ा काटना पड़ेगा। परन्तु, पहले जब डायबिटीज नार्मल हो जाये तब हम इसको काट सकते हैं—आपरेशन कर सकते हैं। यदि डायबिटीज नार्मल नहीं होगा, तो हम इसको काट नहीं सकते हैं। नारायण! आपके चित्तमें भी डायबिटीज है भला! उसका आपरेशन करके साक्षीको अलग करना है। यदि आप चित्तकी डायबिटीज नहीं मिटावेंगे—उसको नार्मल नहीं करेंगे, तो उसका आपरेशन कैसे होगा? चित्तसे साक्षीका पृथक्करण कैसे होगा? चित्तके साथ साक्षीके तादात्म्यका भ्रम कैसे टूटेगा? भला बताओ! पहले आप अपने चित्तको नार्मल करो। संस्कृत भाषामें 'नार्मल' बोल सकते हैं। **नर्म लाति। नर्म-शर्म-सुखं लाति।** जिसमें खूब सुख बना रहे, उसको नर्मल बोलेंगे। संस्कृतके नर्मलको अँग्रेजीदाँ लोगोंने 'नार्मल' कर दिया। अँग्रेजीदाँ लोगोंका यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वे किसी शब्दमें एक अकार बढ़ा देंगे-जोड़ देंगे। वे मिश्रको मिश्रा बोलेंगे। शुक्लको शुक्ला बोलेंगे। हाँ! ऐसे ही है।

अच्छा! आओ! देखना यह है कि बन्धन कहाँ है? देखो! बन्धन न चित्तमें है और न ही साक्षीमें है। साक्षीके शुद्ध स्वरूपके अज्ञानसे चित्तके साथ तादात्म्यका जो भ्रम हो गया है, यही बन्धन है। यह भ्रम निवृत्त करनेके लिए पहले साक्षीके स्वरूपको समझना पड़ेगा। कोई भी चीज समझमें तब आती है, जब गौरसे देखी जाती है। हाँ! जब किसी चीजकी तरफ गौर किया जाता है, तब वह समझमें आती है। आप पैसेपर तो गौर करते हैं और जीवन्मुक्तिको प्रारब्धपर छोड़ देते हैं। अपने आप हो जायेगी। जीवन्मुक्तिका एक विलक्षण सुख भी प्रारब्धसे ही होता है।

आपको पहले यह बात समझनी चाहिए कि प्रारब्ध कैसे काम करता

है? हाँ! प्रारब्ध कोई भूतकी तरह-शैतानकी तरह सामने आकर कूद नहीं पड़ता है। प्रारब्धको भी कोई जरिया बनाना पड़ता है। बिना जरियाके प्रारब्ध भी काम नहीं देता है। आप देखो! दो बालक एक साथ धूपमें खेल रहे हैं। एकको बुखार आ गया और एक बिलकुल स्वस्थ रहा। धूप तो एक ही है; परन्तु, एकको बुखार आया और एकको नहीं आया। इसमें क्या कारण है? इसमें कारण यह है कि दोनोंके शरीरमें उपादान अलग-अलग है। उनमें जो 'मैटर' (Mater) भरा हुआ है, वह अलग है। एकके शरीरका 'मैटर' ऐसा है, जो धूपसे प्रभावित होकरके तत्काल ज्वराकार हो जाता है और एकके शरीरका 'मैटर' ऐसा है, जो धूपके प्रभावसे ज्वराकार नहीं होता है। तो, धूपके निमित्तको लेकरके ज्वर आयेगा तो आयेगा। इस प्रकार, जनमरण-धनहरणके द्वारा माने निमित्त उत्पत्तिके द्वारा प्रारब्ध हमारे चित्तमें सुख-दुःखादि बनाता है।

प्रारब्ध भी बिना प्रक्रियाका नहीं होता है। देखो! यदि समष्टि प्रारब्धसे वर्षा बन्द हो जाये, तो कारीरेष्टि करके वर्षा करवायी जाती है। यदि किसीका पुत्र-जन्म प्रतिबद्ध हो जाये, तो यज्ञ-यागादिके द्वारा-पुत्रेष्टि आदिके द्वारा उसको भी पैदा करवानेकी रीति है। हमने एक लड़का देखा है। अभी उसकी उम्र 20-22 वर्षकी हो चुकी है। उसके पिताकी उम्र 70-72 वर्षकी होगी। जब 50 वर्षतक उन्हें बेटा नहीं हुआ, तब उन्होंने दक्षिणसे कारीरेष्टि करवानेवाले विद्वान् बुलवाये। पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया गया। उसके बाद उन्हें वह बच्चा पैदा हुआ। महाराज! ऐसा धार्मिक बच्चा है कि बापको बिलकुल पार कर गया। सदाचारी होनेमें बेटा बापसे आगे है; क्योंकि, वह धर्मजन्य है। है न? हाँ! अब यदि शराबके नशेमें बेटा पैदा होगा, तो उसके ऊपर शराबका थोड़ा असर तो आवेगा ही। यदि ठाकुरजीकी पूजा करके, ध्यान करके, जप करके, सदाचारके अनुसार बेटा होगा, तो सदाचारी होगा। बापोंकी यह शिकायत तो बिलकुल निर्मूल है कि बेटा हमारी बात नहीं मानता है। भला बताओ! क्या तुमने ऐसी हालतमें रहते हुए सन्तानको उत्पन्न किया है, जब तुम्हारा मनरूप बेटा तुम्हारी बात मान रहा हो? नारायण! यह बात बिलकुल गलत है कि प्रारब्धके कारण हम क्लेशसे मुक्त नहीं हो सकते हैं। यदि ऐसा होता, तो

खेती किये बिना अन्न पैदा हो जाना चाहिए। दवा किये बिना रोग दूर हो जाना चाहिए। व्यापार किये बिना धन आ जाना चाहिए। स्त्रीके बिना ही पुरुषको बच्चा हो जाना चाहिए। भाई मेरे! प्रारब्धको भी अपनेको प्रकट करनेके लिए पुरुषके प्रयत्नकी आवश्यकता होती है। पुरुषके प्रयत्नके बिना प्रारब्ध भी प्रकट नहीं होता है।

अब देखो! आपको एक दूसरी बात सुनाते हैं। यह चित्त क्या है? चित्तमें एक तो है—सदंश। एक है—चिदंश। एक है—आनन्दांश। चित्तके सामने जो है, उसको तो आप देखते हैं; परन्तु, चित्तके पीछे जो है, उसको आप नहीं देखते हैं। चित्त एक दर्पणके समान है। दर्पणके सामने जितनी भी चीजें आती हैं, वह उनका प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है और फिर उनको प्रकारान्तरसे बाहर फेंकता है। वृत्ति माने होता है—बर्ताव। योग-दर्शनके अनुसार चित्तका निरोध नहीं होता है। चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है। ***योग: चित्तवृत्तिनिरोध:।*** चित्तमें और चित्तकी वृत्तिमें फरक है। जैसे, हाथ तो चित्त है और उसका हिलना वृत्ति है। जीभ चित्त है और उसका बोलना वृत्ति है। वाक् वृत्ति है भला! पाँव चित्त है और उसका चलना वृत्ति है। अत: चित्तके व्यवहारका नाम होता है—चित्तवृत्ति। यह जो शास्त्रमें निरोधकी चर्चा आती है, वह वृत्तियोंके निरोधकी चर्चा आती है। चित्तके निरोधकी चर्चा नहीं आती है। वेदान्तकी दृष्टिसे चित्तका तो बाध होता है। वृत्तियोंका निरोध होता है—योगकी दृष्टिसे। भक्तिकी दृष्टिसे वृत्तियोंका अनुरोध होता है। **लालयेत् चित्तबालकं।**

देखो! यदि बच्चा चाकू उठाना चाहता हो, तो उसके सामने झुनझुना बजा दो। वह चाकू उठाना छोड़कर झुनझुनेकी ओर आ जायेगा। भक्तिका जो सिद्धान्त है, वह विषयको पकड़नेवाली वृत्तिके सामने झुनझुना बजाकर उसको चाकूसे छुड़ानेके लिए और अपनी ओर उन्मुख करनेके लिए है। यह अनुरोधका सिद्धान्त है। आहा! माँने एक चपत उठाकर मारा। बारबार चाकू उठाता है? यह विरोधका सिद्धान्त है भला! विरोधका सिद्धान्त है—बच्चेको चपत मारकर चाकूसे हटाना। अनुरोध का सिद्धान्त है—झुनझुना बजाकर बच्चेको चाकूसे हटाना। निरोधका सिद्धान्त है—बच्चेमें धीरे-धीरे ऐसा अभ्यास पैदा करना कि वह थोड़ा आराम भी करे। उसे हर समय घरके

बाहर जाकर खेलनेकी ही आदत न रहे। वह थोड़ा विश्राम भी करे। हाँ! आप बच्चोंकी ताकत जानते हैं। छोटे बच्चे जितना ज्यादा सोते हैं, उनके अन्दर उतनी ही अधिक शक्ति और बलका विकास होता है। छोटे बच्चोंको तो अठारह घण्टोंतक सोना चाहिए, जिससे सोते समय उनके शरीरमें स्वाभाविक विकास होता रहे। हर समय बच्चेको जगाकर रखना ठीक नहीं है। इसीसे कहते हैं कि गोदमें लिये-लिये बच्चे बिगड़ जाते हैं। उनको हर समय गोदमें नहीं रखना चाहिए। **लालयेत् चित्तबालकं।** यह वृत्तियाँ बच्चेकी तरह हैं। कोई विरोधके द्वारा, कोई अनुरोधके द्वारा, कोई निरोधके द्वारा, इन वृत्तियोंको ठीक करते हैं।

देखो! अब आपको इन वृत्तियोंके बारेमें एक दूसरी बात सुनाते हैं। असलमें, यह वृत्तियाँ दो काम करती हैं। चीजको बाहरसे भीतर ले जाकर बैठाना और भीतरसे बाहर निकालना। यह जो आपका ख्याल है कि जिस समय यह वृत्तियाँ शान्त रहती हैं, उस समय दुर्वासनाओंके बीज तो रह जाते हैं; परन्तु, सद्वासनाओंके बीज नहीं रहते हैं, गलत ख्याल है। जब वृत्तियाँ व्यवहारसे मुक्त होकरके चित्तमें जाकरके बैठती हैं, तब सद्वासना और दुर्वासना-दोनोंके बीज रहते हैं; क्योंकि, आपने इस जन्ममें और दूसरे जन्ममें जितने कर्म किये हैं, उन सबके संस्कार चित्तमें राशिकृत होकरके बैठे हुए हैं। यह योगदर्शनका सिद्धान्त है। उसमें पुनर्जन्म माना जाता है।

हमने जितने भले और बुरे कर्म किये हैं, भोग किये हैं और जानबूझ करके सोच-विचार किया है, उनका संस्कार चित्तमें बैठा है। अब प्रश्न यह है कि अच्छे-अच्छे संस्कारोंको ही कैसे जगाया जाये और बुरे-बुरे संस्कारोंसे कैसे बचा जाय? यह एक सवाल पैदा होता है न! इसका समाधान करके फिर आगे बढ़ते हैं। बात यह है कि यह तो कोई कह ही नहीं सकता है कि हमारे चित्तमें केवल दुर्वासनाका ही बीज है। हमारे चित्तमें सद्वासनाका बीज नहीं है, ऐसे तो कोई कह ही नहीं सकता है। जिन्दगीमें कभी तो अच्छा काम करके उसके मनमें एक सुखकी वृत्ति उदय हुई होगी। है न! एक गरीबको पानी पिलाकर हुई होगी। नहीं तो, कभी एक पवित्र लोटेमें कुएँका पानी खींचकर उस पवित्र जलको ले जाकरके शंकरजीकी मूर्तिपर चढ़ाया होगा। हर हर महादेव। बम बम शंकर। भाई! उसने कुछ तो

किया होगा न! तो, वृत्तिकी सुषुप्ति दशामें-महाप्रलयमें-मूर्च्छामें दुर्वासना और सद्वासना-दोनोंका बीज रहता है। हाँ!

हमने एक मूर्च्छा देखी थी। अपनी आँखसे देखी थी। हाँ! सन्का हमको ठीक याद नहीं है। सन् इकतीस (1931)के आसपास मर्दुमसुबारी हुई। ब्रिटिश राज्यमें यह जनगणना होती है। हम लोग कांग्रेसके सदस्य थे। जनगणनाके लिए हमारे मकानों पर जो नम्बर लगाये गये थे, वह हमने 'असहयोग आन्दोलन'में आकरके मिटा दिये थे। अब तो जाँच करनेके लिए डिप्टी-कलक्टर और कानूनगो आये। उन्होंने मुझे अपने सामने बुलाया। उन्होंने पूछा-'आपके मकानपर जो नम्बर लगाया गया था, उसको किसने मिटाया?' मैंने कहा-'हम लोग कभी सोते हैं। कभी बाहर जाते हैं। हर समय नम्बरकी पहरेदारी नहीं करते हैं।' हमको मालूम तो था कि नम्बर किसने मिटाया है; लेकिन, हमने डिप्टी-कलक्टरके सामने बयान यह दिया कि 'हम कोई हर समय नम्बरकी पहरेदारी थोड़े ही करते हैं कि देखें कि किसने नम्बर मिटाया है?' कुछ टेढ़ा-मेढ़ा होकरके बयान दिया था। उस समय इसको बड़ी बहादुरी समझा जाता था। इसमें इज्जत होती थी। अच्छा! इतनेमें हुआ क्या कि उनके साथ जो गिरदावर कानूनगो थे, उनका घोड़ा बड़ी जोरसे उछला और वह पटसे वहीं गिर पड़े। वह झटसे उठे और फिर घोड़ेपर सवार हो गये। जब डिप्टी कलक्टरने कानूनगोको जाते हुए देखा, तब उसने भी अपना घोड़ा लौटा लिया। वह भी लौट गया। अपने घरपर जाकर कानूनगो बेहोश हो गये। हम उनको देखनेके लिए गये; क्योंकि, उनसे हमारी मित्रता थी। पाँच घण्टे उनकी बेहोशी देखी। वह बेहोशीमें पलंगपरसे ऊपरको छलकते थे। एक हाथ-दो हाथ ऊपर तक उछल पड़ते थे। जब उछलते थे, तब उनके मुँहसे निकलता था-'हरिः ॐ तत् सत्।' पाँच-घण्टेके बाद दस मीलसे डाक्टर आया। साईकिलसे आदमी बुलाने गया और इक्केपर चढ़कर डाक्टर आया। जब डाक्टरने इंजेक्शन लगाया, तब कानूनगो होशमें आये। होशमें आनेपर मुझे देखा और तुरन्त बोले-'पालागी पंडितजी! आप कब आये?' अब देखो! उनके भीतरसे *'हरिः ॐ तत् सत्'* तो निकलता था; लेकिन, उनको यह मालूम नहीं था कि पंडितजी हमारे शरीरपर हाथ फेर रहे हैं। भला बताओ! वह

'हरिः ॐ तत् सत्' कहाँसे निकला? आप देखो! मूर्च्छामें, सुषुप्तिमें, अचेतन मनमें भले संस्कार रहते हैं।

आप अचेतन मन-अवचेतन मनकी चर्चा करते हैं न! आपको बताते हैं। हमने एक दिन सपना देखा कि हम बदरीनाथ पैदल जा रहे हैं। हनुमान् चट्टीसे आगे जहाँ पहाड़ोंके नीचेसे रास्ता निकलता है, वहाँ एक साधु बैठा है। उसके पेट पर बर्फ जमती है। वह उसको हाथसे पोंछकर अपने सिरपर रखता है और बर्फ गलकर गिर जाती है। यदि पूर्व जन्मके न मानें, तो इस जन्मके भी केवल बुरे-ही-बुरे संस्कार अवचेतन-चित्तमें रहते हैं, यह माननेका क्या कारण है? ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है।

अब तो इसकी कोई युक्ति निकल आवे कि हमारे अच्छे संस्कारोंकी धारा प्रवाहित हो जाये—जाहिर हो जाये और बुरे संस्कारोंकी धारा अभिभूत हो जाये—दब जाये। आहा! देखो! बचपनमें हमारे यहाँ एक जादूगर आता था। वह जलते हुए कोयलेके अँगारोंको अपने दोनों हाथों पर उठा लेता था। यह हमारे सामनेकी बात है। हमने अपनी आँखोंसे देखा है। वह अपना हाथ ऐसे करता और कोयलेके जलते हुए लाल-लाल अँगारे उसके हाथपर रख दिये जाते थे। हमको यह विश्वास नहीं होता था कि कोई देवी-देवता इसका हाथ जलनेसे बचाता है। वह तो हमारे गाँवका ही गोंड था। हाँ! यह भड़भूजे होते हैं न! वह हमारे गाँवका ही भड़भूजा था। हमको उसका नाम भी याद है। हाँ! वही ऐसा करता था। मैंने उससे कहाँ कि 'भाई! तुम हमको इसकी अक्ल बता दो कि तुम्हारा हाथ कैसे नहीं जलता है?' महाराज! वह तो जंजीरको पूरी तरह से आगमें डाल देता था। जब वह जंजीर बिलकुल लाल-लाल हो जाती थी, तब उसको दोनों हाथोंसे ऐसे दुहता था। जैसे कोई गाय दोहता हो। मैंने कहा कि 'भाई! तुम हमको इसकी युक्ति बता दो कि यह सब क्या है?' अब उसने हमको जो बताया, आप उसको करना तो मत; क्योंकि, उसको करनेमें खतरा है। हम आपको खतरेके काममें क्यों डालें? हम आपको वैसे करनेके लिए मना कर देते हैं भला! अच्छा देखो। उसने हमको बताया कि एक खास तरहका मेंढक होता है। उसकी चर्बी लेकर अपने हाथमें अच्छी तरहसे लगा लेनेके बाद हाथ आगमें बिलकुल नहीं जलता है। यह उसने हमको बताया था। तो, एक युक्ति ऐसी होती है कि

अग्नि जलाती नहीं है। एक मणि ऐसी होती है, जिसके सामने अग्नि जलाती नहीं है। एक मंत्र ऐसा होता है, जिससे आगको बाँध सकते हैं। हाँ! *'सूरज बाँधूं, चाँद बाँधूं, आकाश बाँधूं, पाताल बाँधूं और आग बाँधूं'*– ऐसा एक मन्त्र होता है। उस मन्त्रका उच्चारण करते हैं और आगको बाँध देते हैं। हमारा कहनेका अभिप्राय यह है कि हमारे चित्तमें जो दुर्वासनाएँ हैं, उनको क्रियान्वित होनेसे रोक दिया जाये। उनका अभिभव हो जाये। हमारे चित्तमें जो सद्‌वासनाएँ हैं, उनको क्रियान्वित होनेमें सहयोग दिया जाये। वह हमारे जीवनमें जाहिर हो जायें। हाँ!

नारायण! यदि सूखी जमीन होती है, तो उसको सींच देते हैं और उसको जोत देते हैं। यदि उसमें घास होती है, तो उसको उखाड़कर फेंक देते हैं। यदि उसमें कंकड़–पत्थर होते हैं, तो उनको अलग कर देते हैं। यदि उसमें कीड़े लग जाते हैं। तो उसपर दवा बरसाते हैं। कुल मिलाकर, ऐसी युक्ति करते हैं कि खेतीमें अन्न पैदा हो जाये। देखो! यदि हमें चित्तका आपरेशन करवाना है, तो उसके रोगको मिटानेकी प्रक्रिया सीखनी चाहिए। जीवन्मुक्ति वासना–क्षयकी प्रधानतासे होती है भला! हाँ! आप इस बातको गौरपूर्वक ध्यानमें लो। वासना–क्षयकी प्रधानतासे जीवन्मुक्ति होती है।

अब आप कहेंगे कि आप वह बता ही क्यों नहीं देते कि चित्तमें दुर्वासनाओंको कैसे दबाया जाये? सद्–वासनाओंको कैसे उठाया जाये? इसके सम्बन्धमें हम आपको पहले एक सिद्धान्त सुनाते हैं। बहुत थोड़ी–सी बात है। नारायण! पंचभूतसे चिड़िया बनती है। पंचभूतसे गाय–भैंस–ऊँट–हाथी–घोड़े भी बनते हैं। मनुष्यके शरीरमें भी पंचभूत ही हैं। सबके शरीरमें पंचभूत हैं। जाँच करनेपर माटी–पानी–आग–हवा–आकाशके सिवाय तो और कुछ नहीं है। मनुष्यकी शक्ल–आकृति ऐसे कैसे बनती है? इसमें कितनी बार धड़कन फैलनेकी ओर सिमटनेकी शक्ति होती है? यह कितनी गर्मी–सर्दी सह सकता है? आपको एक बात बतावें। मनुष्य–सामान्य प्रायः कर्म–साम्य होनेपर ही उत्पन्न होता है। देखो! यह आपको शास्त्रका सिद्धान्त सुना रहे हैं।

कर्म–साम्यका क्या अर्थ हैं? जब पूर्व–जन्मके पाप–पुण्य करीब–करीब बराबरी पर होते हैं, तब कर्म–साम्य होता है। ध्यान दें। करीब–

करीब। बिलकुल बराबर होनेपर तो नहीं हो सकता है। बिलकुल बराबर होनेपर तो शक्तिपात हो जाता है। यदि हमारे जीवनके पाप-पुण्य दोनों बराबर हो जायें, तो शक्तिपात होगा। उसी समय गुरु हमारे सिरपर हाथ रख करके अपनी शक्तिसे हमारे चित्तके बन्धनको काट देगा। यह योग-शास्त्रका सिद्धान्त है। अब आप लोग तुरन्त कहोगे कि 'गुरुडम' फैलाते हो। है न? इसलिए, हम ऐसी बात कभी कहते ही नहीं हैं। 'गुरुडम'की बात आपको क्या कहना!

बात उसमें यह है कि हम अपने गुरुजीके पास गये और बोले—'महाराज! हमको स्वीकार करो। आप हमपर शक्तिपात कर दो। अपनी शक्ति हमें दे दो।' गुरुजीने कहा—'ठहरो! एक बात बताओ। जो मैं आज्ञा करूँगा, वह क़रनेको तैयार हो? मैं तुम्हें तुरन्त संन्यासी होनेके लिए कह सकता हूँ। मैं तुम्हें चोरी करनेके लिए कह सकता हूँ। मैं तुम्हें व्यभिचार करनेके लिए भी कह सकता हूँ। हाँ! मैं तुम्हें अपना गला काटनेके लिए भी कह सकता हूँ। मैं तुम्हें ऐसी भी आज्ञा दे सकता हूँ कि तुम मेरा गला काट दो। क्या तुम मेरी बात माननेको तैयार हो? बोलो! नहीं तो चेले कैसे बनोगे?' आपको आश्चर्य होगा। हमने कहा—'अच्छा! महाराज! आप जो कहोगे, सो ही करेंगे।' गुरुजी बोले—'अच्छा! हम जो कहेंगे, सो करोगे? आओ! बैठो। घण्टेभर इन्तजार करो, तब मैं बोलूँगा।' अब तो महाराज! वह जो एक घण्टा था। उसने हमारे रिश्तेदार और दुश्मन-दोनोंको एक साथ बैठा दिया-फेंक दिया। हमारे राग और द्वेषको बिलकुल एक ओर अलग हटा दिया। हमारा जीना और मरना—दोनोंको एक साथ फेंक दिया। यह हमको जिन्दा रखेंगे कि मारेंगे? यह हमसे पाप करावेंगे कि पुण्य करावेंगे? उसको हमारे चित्तसे बिलकुल अलग करके फेंक दिया। अब हम एक घण्टेके बाद क्या करेंगे?—यह हमको मालूम नहीं। एक घण्टेके बाद हम क्या भोगेंगे?—यह हमको मालूम नहीं। हम कैसे रहेंगे?—यह हमको मालूम नहीं। उस समय हमारे पाप और पुण्य—दोनों अलग होकर समान हो गये। हमारे राग और द्वेष-दोनों अलग होकर समान हो गये। हमारे शत्रु और मित्र—दोनों अलग होकर समान हो गये। हाँ! इसको कर्मसाम्यकी दशा बोलते हैं हो! शास्त्रीय भाषामें इसको कर्मसाम्य बोलते हैं। कर्मसाम्य-

भोगसाम्य-विचारसाम्य। आहा! यहाँ कुछ भेद नहीं है। एक घण्टेके बाद गुरुजी आकर बोलते हैं-'बेटा! जो मैं हूँ, सो ही तू है।' हमारे मुँहसे निकला-'अरे महाराज! यह कैसे? समझमें नहीं आता।' जानते हो, गुरुजी क्या बोले? वह बोले-'देखो! पहले बात कर चुके हो। तुम मेरी बात माननेको तैयार हो और मेरे कहे अनुसार करनेको भी तैयार हो। है न? देखो! यह मैं और तुमका भेद शरीरमें है। आत्मामें भेद नहीं है। चेतनमें भेद नहीं है। है न! इसमें ननुनच मत करो। यह सारे-के-सारे भेद औपाधिक हैं। तत्त्वमें भेद नहीं है।'

देखो! यह कर्म-साम्य होनेपर-समताकी दशा आनेपर तो तत्काल शक्तिपात हो जाता है; इडा और पिंगला-दोनों सुषुम्नामें संचरित होने लगती हैं; लेकिन, समताकी दशाके आनेसे पहले भी हम आपको ऐसी युक्ति बता सकते हैं। जब आपका जन्म हुआ, तब पाप और पुण्यमें बराबरी थी। थोड़ा पाप कम था; पुण्य ज्यादा था; इसलिए, आप सुखी रहते हैं। थोड़ा पुण्य कम था; पाप ज्यादा था; इसलिए, आप दुःखी रहते हैं। पाप-प्रारब्धके कारण आप दुःखी रहते हैं और पुण्य-प्रारब्धके कारण आप सुखी होते रहते हैं। आपके जीवनमें पाप और पुण्य, सुख और दुःख-दोनोंका द्वन्द्व है। करीब-करीब बराबर पाप-पुण्य होने पर यह मनुष्य शरीर मिलता है; नहीं तो आप चिड़िया हो जाते; आप पशु हो जाते; आप मारवाड़के हवाई-जहाज बन जाते। आप मारवाड़का हवाई जहाज जानते हैं कि नहीं? वह जो टेढ़ा-मेढ़ा होकर चलता है ना? हाँ! लेकिन, कहीं-न-कहीं पुण्य है, तब आप सुखी होते हैं। कहीं-न-कहीं पाप है, तब आप दुःखी होते हैं। इनकी समतामें-प्रायः बराबरीमें यह मनुष्य शरीर मिलता है। देखो! आपके भीतर जो पुण्यका स्रोत है, वह तो बन्द हो गया है। जो पापका स्रोत है, वह खुल गया है। अब हम आपको वह युक्ति बताना चाहते हैं, जिससे आप जहाँसे सुखका झरना बहता है, उसका दरवाजा खोल दें। आपके जीवनमें केवल पुण्य-सुखकी धारा बहने लग जाये और पाप-दुःखका दरवाजा बन्द हो जाये। जिस कारणमें से दुःख बहकर आता है। उस कारणको हम रोक सकें। इसकी कोई युक्ति हमारे जीवनमें हो सकती है कि नहीं? आहा! नारायण! इसकी युक्ति हो सकती है।

क्या आपको मालूम है कि कई शेयर खरीदने वाले लोग पहलेसे पता कर लेते हैं कि किसका भाव घटनेवाला है और किसका भाव बढ़नेवाला है? नारायण! ये लोग पहलेसे पता कर लेते हैं। अच्छा! कई रेस खेलनेवाले लोग भी पहलेसे पता कर लेते हैं कि आज कौन-सा घोड़ा जानबूझकर जिताया जायेगा? यह सब संयोगवश ही नहीं होता है। अपनी जानकारी भी काम देती है। आपके जीवनमें केवल सुखकी नदी बहने लग जाये; और, उसका जो उद्‌गम-स्रोत रुका हुआ है-कमजोर पड़ गया है-बन्द हो गया है, वह खोल दिया जाये। आपके जीवनमें दुर्वासनाका दरवाजा बड़ा हो गया है। दुःखकी धारा ज्यादा आने लगी है। अतएव, कोई ऐसा बाँध लगाया जा सके कि दुःखकी धारा कम हो जाये। उसका जो उद्‌गम-स्रोत है, वह बन्द कर दिया जाये। आप खेती बढ़ानेका उद्योग कर सकते हैं और पुण्य बढ़ानेका उद्योग नहीं कर सकते? आप दवा करके अपनी उम्र बढ़ानेका उद्योग कर सकते हैं और पुण्य बढ़ानेका उद्योग नहीं कर सकते? आपके हृदयमें दुःख कम हो जाये-यह उद्योग आप नहीं कर सकते? आपके हृदयमें सुख बढ़ जाये-यह उद्योग आप नहीं कर सकते? नारायण! आप यह उद्योग कर सकते हो कि आपके जीवनमें केवल पुण्यकी-सुखकी धारा बहने लग जाये। आपके सुखकी नदी बड़ी हो जाये और आपके दुःखकी नदी छोटी पड़ जाये या बन्द हो जाये। इसके लिए युक्ति होती है। शास्त्रोंमें वर्णित युक्ति है। महात्माओंके द्वारा उपदिष्ट युक्ति है। एक बात पर ध्यान दें। यह केवल स्वर्गकी तरह नहीं है कि आप केवल श्रद्धा करें और शास्त्र एवम् गुरुका वचन मानें। यह बात नहीं है। यह अनुभव-पर्यवसाना युक्ति है। यह ऐसी युक्ति है, जिसके द्वारा आपको तुरन्त अनुभव हो जाये। अच्छा! अब कल। जब हम प्रारम्भ करें, तब याद दिलाना। शायद हम कल भूल जायें। ओऽऽम्।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## ४

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

यह मनुष्य व्यक्ति नहीं। माने व्यक्तिगत रूपसे एक मनुष्य नहीं। मनुष्य सामान्य। माने देखनेमें जो मनुष्य सरीखे लगते हैं। शक्ल-सूरत जिनकी एक सरीखी है। मनुष्य जाति। '**आकृतिग्रहणा जातिः।**' पाणिनिका सूत्र है कि आकृतिसे ही-शक्ल सूरतसे ही जिसका ग्रहण हो जाये, उसको जाति कहते हैं।

बोले-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आकृति से गृहीत नहीं होते हैं, तो ब्राह्मण-जाति, क्षत्रिय-जाति, वैश्य-जाति, शूद्र-जाति कैसे बोला जाता है? कहीं-कहीं तो देखनेमें आता है कि वैश्य और शूद्र चोटीमें, चन्दनमें, वेशभूषामें ब्राह्मणसे भी बढ़कर दिखते हैं। शरीरमें जो नाक-आँख-कानकी आकृति है, उसमें कोई फर्क नहीं होता है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र जाति नहीं है। वर्ण है भला! ये चार वर्ण हैं, मनुष्य जाति है और ब्राह्मण-क्षत्रियादि वर्ण हैं। इनको वर्ण क्यों कहते हैं? जाति आकृतिग्रहण होती है। वर्ण वर्णव्यंग्य होता है। उपदेश व्यंग्य होता है। माने बताना पड़ता है कि यह ब्राह्मण है, यह क्षत्रिय है, यह वैश्य है। '**वर्णनाद् वर्णः। वर्णाद् उच्यते।**' वर्णन करने पर पता चलेगा कि यह ब्राह्मण है-यह क्षत्रिय है। देखकर पता नहीं चल सकता।

अच्छा! ये हिन्दू-मुसलमान क्या हैं? ये न जाति हैं, न वर्ण हैं। यह मुसलमान तो मजहब है; क्योंकि, वह एक आचार्यके द्वारा चलाये हुए धर्म-मर्यादाको स्वीकार करते हैं। हिन्दू मजहबी नहीं हैं; क्योंकि, एक आचार्यके द्वारा चलाये हुए मजहब पर हिन्दू-लोग नहीं चलते हैं। हिन्दू समाज है। हिन्दू जो है, वह अनेक वर्णोंका और अनेक मजहबियोंका समाज है। हिन्दुओंमें शैव-शाक्त-गाणपत्य-सौर-वैष्णवादि बहुत सारे भेद होते हैं और सबकी समष्टिका नाम हिन्दू होता है। चारों वर्णोंकी समष्टिका नाम हिन्दू। वर्णबाह्यका नाम भी हिन्दू। पतित भले हो। है ना? एक ब्राह्मण कर्म भ्रष्ट भले हो। जैसे, एक मनुष्य कर्मभ्रष्ट भले हो; परन्तु वह रहेगा तो मनुष्य ही न! 'पतित' विशेषण उसको लगा दो। यह पतित मनुष्य है। यह उन्नत मनुष्य है।

आपको यह सब बात क्यों सुना रहा हूँ? यह मनुष्य जातिकी–जातिमात्रकी बात है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनोंका समावेश है।

'मनुष्य' शब्द ऐसा है, जिसमें आदमी और औरत–स्त्री और पुरुष दोनोंका समावेश होता है। स्त्री और पुरुषमें जातिभेद नहीं है। स्त्री और पुरुषमें लिंग भेद है। वैष्णव और शैवमें सम्प्रदाय भेद है। ब्राह्मण और क्षत्रियमें वर्णभेद है। मनुष्य और पशुमें जाति भेद है। आकृति भेद होनेके कारण पशुजाति और मनुष्य जाति भेद है। आकृति भेद होनेके कारण पशुजाति और मनुष्य जाति अलग–अलग हैं। जब पाप और पुण्य–इन दोनोंकी तौल प्रायः बराबर–बराबर होनेको आती है, तब मनुष्य–जन्म मिलता है। चाहे खुदा बनावे, चाहे ब्रह्मा बनावें, चाहे पूर्वकर्मसे बने, चाहे प्रकृतिसे बने, चाहे परम्परासे बने; परन्तु, मनुष्य–शरीर थोड़ी बुराई और थोड़ी भलाई–दोनोंके मिश्रणसे बनता है। केवल बुराई–बुराई हो, तो मनुष्य–योनिकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। कीट–पतंगादि योनिकी प्राप्ति होती है। केवल पुण्य–पुण्य हो, तो देवयोनिकी प्राप्ति होती है। उसमें भी पाप शेष रहता है। पशु–पक्षीके लिये भी पुण्य शेष रहता है। यह नहीं कि वहाँ पुण्यका अत्यन्ताभाव हो जाता है। जरा देखो तो सही, ये कुत्ते जो हैं, वे उन श्रीमतियोंकी गोदमें बैठते हैं। जिनकी गोदमें बैठनेका सौभाग्य उनके बच्चोंको भी प्राप्त नहीं होता है। हाँ! हम देखते हैं कि माता अपने कुत्तेको तो खुदकी गोदमें लेकर मोटरमें बैठती है और अपने बच्चेको आयाकी गोदमें डालकर कहती है कि 'तुम इसकी देखभाल करो। सार–सँभार करो।' भला बताओ! यदि उस कुत्तेमें पुण्य बिलकुल भी शेष न रहता, तो उसे इतनी बड़ी श्रीमतीकी गोदमें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त होता? नहीं न! और बड़ी–बड़ी बातें हैं। उनको हम भरी सभामें कहनेमें शरमाते हैं। हाँ! इसके बारेमें हमारी जानकारी कम नहीं है। हम उसको जाहिर नहीं करते हैं। नारायण! एक कुत्तेपर जितना खर्च होता है, उतनेमें चार मनुष्य–बच्चोंको एम.ए. तक पढ़ाया जा सकता है भला! माने पशुओंमें भी पुण्य शेष रहता है। उनको वह भोग प्राप्त होता है, जो मनुष्यको दुर्लभ है। नारायण! देवतामें भी पाप शेष रहता है। कभी–कभी देवताओंको भी वह दुःख प्राप्त होता है, जो पशु–पक्षियोंको भी प्राप्त नहीं होता है।

यह मनुष्य-योनि न पाप-प्रधान है, न पुण्य-प्रधान है। दोनोंकी लगभग साम्यावस्थामें मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति होती है। 'लगभग' इसलिए कहा कि पूर्ण कर्म-साम्य होनेपर तो अपना तराजू बिलकुल सीधा हो जाता है। बराबर होनेपर तराजूकी डण्डीमें भीतरका जो छेद है, वह बिलकुल खुला हो जाता है। जब तराजू टेढ़ा रहता है, माने जब तौलनेवाले ने जरा-सी मुट्ठी टेढ़ी की, तब मामला गड़बड़ा जाता है। हम जानते हैं कि यहाँ ऐसे लोग बैठे हैं, जिन्हें अपने हाथसे तौलनेका अवसर कभी नहीं मिला होगा। हम तो बिलकुल गाँवके गँवारू देहाती हैं न! आहा! घुटने पर अपनी कोहनी लगाकर कैसे तोला जाता है, वह हमको मालूम है। जरा अण्टी मारी, मुट्ठी जरा टेढ़ीकी, तो मामला बिगड़ जाता है। देखनेवाला देखता ही रह जाता है और तौलनेमें आध-सेर, पाव-भर बचा लेते हैं।

देखो! इडा और पिंगला-दो तराजू हैं। सुषुम्ना वह छिद्र है जो दोनोंकी सम अवस्थामें खुलता है और उसमें ब्राह्मी शक्ति प्रवेश करती है। यह कर्म-साम्यकी दशा ईश्वरके-गुरुके अनुग्रहके बिना या योगाभ्यासकी दृढ़ताके बिना नहीं आती है। जिन लोगोंने एम.ए. की जाली डिग्री प्राप्त कर ली है, उन लोगोंके लिये यह कामकी बात नहीं है। जो तौलनेवाला होता है, वह तुलाका साक्षी होता है। वह दाहिने और बायें-दोनों पलड़ोंका पक्षपात नहीं करता है। यदि वह बेईमानी करके लेनेवालेको ज्यादा देता है और देनेवालेका बचाता है, तो वह तुलाका-तराजूका साक्षी नहीं है।

हम आपको एक और बात सुनाते हैं। पहले बहुत प्लेग पड़ता था। 'प्लेग' एक रोग होता है। जब बाजारमें प्लेग पड़ता था, तब व्यापारी लोग बाजार छोड़कर अपनी दूकान गाँवमें ले आते थे। हमारे बैठकमें कपड़ेकी दूकान सज जाती थी। वह गजसे कपड़े नापकर फुटकर बेचते थे। अरे! महाराज! नापते समय एक गज में आधा गिरह तो बचा ही लेते थे। सोलह गिरहकी एक गज होती थी। वे नापनेमें आधा-गिरह इधर-उधरसे बचा लेते थे। वे गजके नापके साक्षी नहीं हुए। वे तो एक ओर मिल गये। लोभी मनके साथ उनका तादात्म्य हो गया। अतएव, उन्होंने गजसे नापनेके समय न्याय नहीं किया। आपकी साक्षिता क्या है? हमको तो अंग्रेजीका शब्द मालूम नहीं है। क्या होता है? एक 'टेम्पोरेरी' (Temporay) होता है और एक

'परमानेण्ट' (Permanent)। आपका 'साक्षीपना' जो है वह 'टेम्पोरेरी' माने घण्टे-आध-घण्टेके लिए है कि 'परमानेण्ट' माने चौबीसों घण्टोंके लिए है? आप जरा खुद ही इसको तौल लीजियेगा कि आपको किस कोटिका साक्षी रखा जाये—'टेम्पोरेरी' कि 'परमानेण्ट'?

अच्छा! अब मूल विषयपर आनेके पहले हम आपको अपने वृन्दावनकी दो बात सुनाते हैं। हमारे आश्रमके बहुत पासमें ही जयपुर राज्यका मन्दिर है। उसके सामने एक कुआँ है। अबसे दस बरस पहले तक उस कुएँका पानी ऐसा स्वादु माना जाता था कि दूर-दूरसे शहरके लोग—साधु लोग आकर अपने हाथसे उसमें-से पानी खींचकर पीते थे और ले जाते थे। वहाँसे घड़ोंमें पानी भरकर उन्हें ठेलेपर लादकर 'काठिया बाबा'के आश्रममें आता था। हमारे ब्रह्मचारी 'छोटेजी' थे। वह हमारे पीनेके लिए जयपुरवाले मन्दिरके कुएँसे पानी खींचकर लाते थे। पानी बड़ा स्वच्छ, बड़ा निर्मल, बड़ा स्वादु होता था। आमतौरपर, वृन्दावनमें पानी खारा होता है। अब महाराज! जानते हो 'म्युनिसिपैलिटी'ने क्या किया? यह गन्दे नाले जो हैं ना, इनके लिए एक जगह खेती शुरू की। वहाँ गन्दे नालोंको ले जानेके लिए नाली बनायी गयी। नालीने गन्दे नालोंका बहना रोक दिया। इससे उस कुएँके पास ही सब गन्दगी हो गयी। गन्दे नालोंका जो पानी था, वह कुएँके पास ही इकट्ठा हो गया। अब उस कुएँका पानी एकदम खारा हो गया। गन्दगीकी बात तो छोड़ दो। वह तो वहाँसे पीछे हटा दी गयी। लेकिन गन्दगी हटानेके बाद भी कुएँका पानी खारा ही रहा। अब कोई भी उस कुएँका पानी पीना पसन्द नहीं करता है। यह तो हुई एक बात।

अब दूसरी बात सुनो। यह भी एक मन्दिरका कुआँ है। यह भी हमारे आश्रमके पास है। बहुत ही पास है। एक ही लाईनपर है। मथुरा रोडपर ही दोनों हैं। वहाँ उन्होंने दो सौ-पाँच सौ फुट तक 'बोरिंग'की; परन्तु, मीठा पानी नहीं निकला। खारा ही पानी निकला। बादमें, कुएँके पास एक तालाब बनाया गया और नहरका पानी लाकरके तालाब भर दिया गया। अब उस कुएँका पानी मीठा हो गया है और लोगोंके काम आता है। सब लोग कुएँका मीठा पानी प्रेमसे पीते हैं। नारायण! खारे पानीको मीठा बनानेकी युक्ति

होती है। हाँ! यदि सावधानी न बरती जाय, तो मीठा पानी भी खारा हो जाता है।

आपको यह बात सुनाते हैं कि मनुष्यका जन्म एक कर्मके सन्तुलनसे प्रकट हुआ है। यह आकृति जो बनी है—यह शक्ल-सूरत जो बनी है, यह एक कर्मके सन्तुलनसे बनी है। देखो—

*'चित्तनदी उभयतोवाहिनी। वहति पापाय वहति पुण्याय च।'*

'योगदर्शन'के 'व्यासभाष्य'में यह है। चित्तनदी वस्तुको बाहरसे भीतर ले जाती है और भीतरसे बाहर ले आती है। यदि आप भीतरको स्वच्छ बनाना चाहते हो, तो आपको बाहरसे स्वच्छ भीतर भेजना चाहिए। जब आप बाहरसे भीतर स्वच्छ भेजने लगेंगे, तब थोड़े दिनों तक भीतरसे गन्दा ही निकलेगा; क्योंकि, भीतर तो गन्दगी भरी हुई है; परन्तु, बादमें, भीतरका सारा-का-सारा ही स्वच्छ हो जायेगा। हाँ! वह स्रोत फूट जायेगा।

अमृतसरमें एक बड़ा-भारी बगीचा है। उसमें एक कुआँ है। उसका पानी पीनेके लिये लोग बहुत दूर-दूरसे जाते हैं। उसको चार महीनेके लिये बन्दकर देते हैं। बन्द करते समय उसमें कोई चीज डाली जाती है। वह भी हमको मालूम है। गाँवमें तो हम लोगोंके यहाँ ऐसा होता है। अब हम तो गँवारू लोग हैं! आप लोग तो नलका पानी पीते हैं। गाँवमें जहाँ खारे पानीका कुआँ निकलता है, वहाँ कुएँके भीतर बहुत सारी आँवलेकी लकड़ी काट-काटकर डाल देते हैं। आँवलेकी लकड़ी डालनेके बाद कुएँको बन्द कर देते हैं। अब क्या होता है कि आँवलेकी लकड़ीके असरसे कुएँका जो पानी भरा होता है, वह दूसरे स्वादका हो जाता है। ऊपर बन्द होनेसे, वह निचले स्रोत को प्रभावित करता है। बाद में, कुएँके पानीका जो खारापन है, वह मिट जाता है। मैं यह बात इसलिए सुना रहा हूँ कि शहरके लोगोंको इसके बारेमें कुछ बात मालूम हो सकती है और कुछ नहीं भी हो सकती है। यह जो कुआँ है ना, इसको 'कंठकूप' बोलते हैं। संस्कृतमें तो 'कूप' बोलते हैं।

अच्छा! एक दूसरी बात सुनो। यह भी देहाती है। हम लोगोंके यहाँ कुएँसे पानी निकालनेके लिए बैलोंकी जोड़ीसे पूर चलता है। मोट चलती है। जब कुएँमें-से सिंचाई के लिए पानी निकालते हैं, तब किसीमें एक मोट

चलती है और किसीमें दो मोट चलती है। यदि पानी खुल जाता है, तो किसीमें चार भी चलती है। ऐसे-ऐसे कुएँ होते हैं कि दिनभर चार-चार मोट चलती रहे और पानी निकलता आवे। देखो! जिस कुएँमें से पानी निकालते हैं। उसमेंसे भीतरसे स्रोत फूटकर और-और पानी निकलता हैं, जिस कुएँमें-से पानी नहीं निकालते हैं, उसमें एक 'लेवल' पर आकर पानी रुक जाता है और उतना ही रहता है आपको यह बात भी मालूम होगी कि जितना-जितना पानी निकालते हैं, उतनी-ही-उतनी स्वच्छ जलधारा नीचेसे ऊपर आती है। अच्छा! देखो! अब आप सुख बाँटनेका काम करो। यदि आप अपने जीवनमें सुखी होना चाहते हैं, तो उन्मुक्त हृदयसे सुख बाँटो। आप यह करके देखो।

हम आपको सिद्धान्त वाली बात फिरसे सुना देते हैं। जब पाप और पुण्य करीब-करीब बराबर-बराबर होते हैं, तब मनुष्य-जन्म मिलता है। आप 'चेयरमैन' (Chairman) हैं। जहाँ दो पक्ष बराबर होते हैं, वहाँ आपके वोटकी ही सर्वाधिक कीमत होती है। आप जिस पक्षमें अपना वोट डाल देंगे, वह विजयी हो जायेगा। यह चेयरमैनका नियम है न? हाँ! देखो! पाप और पुण्य-दोनों बराबर हैं। यदि आप पुण्य-पक्षमें मिलकरके वर्तमान कालमें पुण्य अधिक करने लगेंगे, तो आपके पूर्वपुण्योंकी वृद्धि होगी; वे आपके पुण्य स्रोतसे मिल जायेंगे; और, आपके जीवनमें पुण्यकी धारा बहने लगेगी। यदि आप पापके पक्षमें अपना वोट देंगे और पाप करेंगे, तो पापका स्रोत बहुत खुल जायेगा और आपके जीवनमें पापकी धारा बहने लगेगी। देखो! जैसे कुएँमें-से पानी निकालनेसे कुएँमें और-और पानी आता है, वैसे यदि आप अपने जीवनमें-से पाप निकालेंगे-पाप बोलेंगे और पाप करेंगे, तो आपके अन्तःकरणमें छिपी हुई पापकी धाराको बल मिलेगा; वह बढ़ेगी; और, और पाप करेंगे, तो और-और निकलेगी। यदि आप पुण्य करेंगे, तो पुण्यका झरना खुल जायेगा-पुण्यका स्रोत खुल जायेगा और आपके जीवनमें और-और पुण्य आवेगा।

अब महाराज! यह भी एक बात है कि आजकल संस्कृत भाषाका पठन-पाठन तो जरा कम हो गया है न! हम 'पाप-पुण्य' शब्द बोलते हैं, तो लोग उसको बिलकुल बुर्जुआ मानते हैं। अरे! यह पाप-पुण्य क्या होता है?

हमको अभी एक बहुत प्रतिष्ठित घरमें जानेका काम पड़ा था। उनका जवान बेटा बोलता था–'पाप क्या होता है? पाप माने क्या? समझमें नहीं आया। पैंतीस वर्षकी उम्र हो गयी। अब तक समझमें नहीं आया कि पाप क्या होता है?' आहा! अब यह शब्द जो है, वह बुर्जुआ हो गया न? हमारे कॉमरेड (Comrade) भाइयोंकी समझमें 'पाप-पुण्य' शब्द पुराना हो गया। इसलिए, इसका अर्थ भी पुराना हो गया। लेकिन, उनके मतमें पूँजीपति होना पाप है और सर्वहारा होना पुण्य है भला! तो, उन्होंने भेद कर दिया कि नहीं? हम आपको पाप-पुण्य शब्दका अर्थ भी बताते हैं।

कर्मके दो भेद होते हैं। एक पतनीय और एक अभ्युदयनीय। पाप-पुण्यकी तरह पतनीय-अभ्युदयनीय–ये दोनों शब्द भी पुराने हैं–श्रौत। पतनीय कर्म वह है, जिससे सूरज समुद्रमें छिप जाता है। अभ्युदनीय कर्म वह है, जिससे सूर्य समुद्रमें-से निकलता है। पर्देसे ढकनेवाला कर्म पतनीय माने पतन देनेवाला कर्म है और पर्देको फाड़नेवाला कर्म अभ्युदयनीय माने अभ्युदय देनेवाला कर्म है। जिससे हमारी सत्ता-महत्ता ढक जाये, हमारा ज्ञान–प्रकाश ढक जाये, हमारा सुख-आनन्द ढक जाये, उसको पतनीय कर्म कहते हैं। जिससे हमारी सत्ता-महत्ता जाहिर हो, हमारा ज्ञान-प्रकाश जाहिर हो, हमारा सुख-आनन्द जाहिर हो, उसको अभ्युदयनीय कर्म कहते हैं।

यदि आप अपने जीवनमें सुखकी वृद्धि चाहते हैं, तो आप 'पुण्य' शब्दके अर्थको समझिये। यह 'पुण्य' शब्द *'पूञ पवने'* धातुसे बनता है। आप जानते हैं–गीली चीजको हवा सुखा देती है। अशुद्ध वस्तुको वायु स्वयं शुद्ध कर देता है। यदि मल बाहर पड़ा हो और उसको थोड़े दिनों तक हवां लगती रहे, तो वह सूख कर अपने कारणमें–मृत्तिकामें लीन हो जायेगा। अपने कारण-मृत्तिकामें लीन होते ही वह मल पवित्र हो जायेगा। जब तक वह पृथक् व्यक्तित्व रखता है, तब तक अपवित्र है। जब वह अपने व्यक्तित्वको खोकर अपने मूलभूत कारण मिट्टीमें मिल जायेगा, तब उसकी अपवित्रता चली जायेगी। यह पवित्रताका सिद्धान्त है। गन्ध-दुर्गन्ध पर एक सुगन्ध लगा दी। इससे पवित्रता नहीं आयी। वह दुर्गन्ध ढक गयी! वह सुगन्ध भी दुर्गन्ध होगी। उसको भी साबुन लगाकर धोना पड़ेगा। साबुन भी

अपनी एक गन्ध हाथमें छोड़ जाता है। यह आपको मालूम है कि नहीं? जब साबुन की सुगन्ध भी चली जायेगी, तब स्वच्छता आयेगी–तब वह पुरानी गन्ध–दुर्गन्ध जो साबुनसे ढक गयी है, पूरी तरहसे छूटेगी। अन्यथा, साबुनकी सुगन्धके साथ मिली हुई वह दुर्गन्ध रहेगी। हम आपको पवित्रताका सिद्धान्त बताते हैं। जब तक कार्य कारणमें लीन नहीं हो जाता है, तब तक वह पवित्र नहीं होता है।

संस्कृत भाषामें 'पुण्य' शब्दका अर्थ होता है–'पुनाति।' जो हमारे हृदयको पवित्र बनाता है–निर्मल बनाता है, उसको पुण्य कहते हैं। अच्छा! पाप किसको कहते हैं? जिससे अपना आपा पतित हो जाये, अपना आपा ढक जाये, उसको पाप कहते हैं। जिससे अपनेको हानि पहुँचे और दूसरेको हानि पहुँचे, उसको पाप कहते हैं।

अब आप चाहते तो हैं सुख; लेकिन, करते हैं पाप। आप चाहते हैं कि दुःख न हो और करते हैं पाप। आप चाहते हैं कि सुख हो; परन्तु, पुण्य नहीं करते हैं।

**पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।**

पुण्यका फल है–पवित्र होना–निर्मल होना। उस निर्मल दशामें अपने आत्माका स्वयंसिद्ध स्वभाव–निर्मल सत्ता, ज्ञान, आनन्द–प्रकट हो जाता है। पापका स्वभाव है कि वह अपनी निर्मल सत्ताको, निर्मल प्रकाशको, निर्मल आनन्दको ढक देता है।

अब देखो! आप पाप–पुण्यकी परिभाषा बनाओ। इसके लिए आप अपने मनमें कोई–न–कोई बात बैठाओ। अगर आप चाहते हो कि हमारे जीवनमें सुखका स्रोत खुल जाये, सुखका झरना बहने लगे, तो आप अपने सुखको बाँटो। आप पूरी बातपर ध्यान देना। जैसे कुएँमें–से पानी निकालते हैं, तो उसमें दूसरा पानी फिर आ जाता है, वैसे आप अपने जीवनमें–से सुखको निकालकर बाहर बिखेरिये, तो आपके जीवनमें सुखका प्रवाह होगा। सुखको तिजोरीमें बन्द मत कीजिये। आप अपने सुखको अपनी जीभसे थोड़ा बाहर निकालिये। अपनी आँखसे थोड़ा बाहर निकालिये। अपने हाथसे थोड़ा बाहर निकालिये। आप अपने सुखको भीतरसे निकालकर बाहर वितरित कीजिये। जब आप अपना सुख बाँटेंगे, तब

आपको सुख बाँटनेका पुण्य तो होगा ही और साथ-ही-साथ यह भी होगा कि जितना सुख आप बाहर डालेंगे, उससे कई गुणा सुख आपके भीतर वाले कुएँमें-से, जो अभी तक दबा पड़ा था, निकल आवेगा। सुखका झरना, सुखका उद्‌गम, सुखका स्रोत, सुखका उत्स खोलनेका उपाय यह है कि आप सुख बाँटिये। बाँटनेमें पुण्य अपने आप ही बढ़ता जायेगा। आप पुण्यके पक्षपाती हो जायेंगे।

हाँ! यदि आप दुःख बाँटेंगे, तो आपको दुःख बाँटनेका पाप होगा। दुःख तो पापमें-से निकलता है। यदि आप दुःख बाँटेंगे, तो दुःखका मूल स्रोत पाप-वासना बढ़ती जायेगी और बढ़ती ही जायेगी। इसलिए, यदि आप सुखी होनेका उपाय जानना चाहते हैं, तो सुखको बाँटो। सुख बाँटनेसे ही सुख मिलता है। यह सीधी-सादी बात है। यह सुखी होनेका सुगम उपाय है।

'उपाय' माने तो आप जानते ही हैं। बोले-'हम तो नहीं जानते हैं।' अच्छा! यदि आप नहीं जानते हैं, तो जान लो। क्या आप 'आय' माने जानते हैं? अरे! आजकल आयकरके बारेमें कौन नहीं जानता होगा? 'आय' माने आमदनी। सरकार उसपर कर लगाती है न! 'टैक्स' (Tax) लगाती है न! अतएव, आयकरको तो सब जानते हैं। 'उप' माने पास-नजदीक और 'आय' माने आना-आमदनी। 'उपाय' माने आमदनीके बिलकुल नजदीक। हमारे जीवनमें आमदनी बढ़ानेका जो सबसे सुगम तरीका है, वह उपाय है। आप जो व्यापार करते हैं, वह आमदनी बढ़ानेका-पैसा बढ़ानेका उपाय करते हैं। आप अपने जीवनमें सुख बढ़ानेका भी उपाय कीजिये। बोले-'वह तो पहलेसे ही मौजूद है।' अच्छा! सुख पहलेसे ही मौजूद है? आप सुखी हैं? भगवान् करे कि आपका सुख बना रहे। हम आपके प्रति शुभकामना प्रकट करते हैं और आशीर्वाद देते हैं कि आपके हृदयमें जो सुख है, वह बना रहे और बढ़े। देखो! यदि आप स्वयं अनुभव करते हैं कि हमारे जीवनमें सुखकी कमी है, तो सुखके लिए उपाय करना पड़ेगा। बोले-'हम तो स्वयं सुखस्वरूप हैं।' ठीक है। आप सुखस्वरूप हैं; लेकिन, आपका यह सुखस्वरूप थोड़ी-थोड़ी देरके लिए सो जाता है या कहीं विदेशकी यात्रा कर बैठता

है। आपका सुख परदेशमें चला जाता है। कभी हलवाईकी दूकानपर कढ़ाईमें तला जाता है, बिचारा। अब गर्मी तो भोगनी पड़ेगी। कभी बजाजकी दूकानपर फाड़ा जाता है। कभी सुनारकी दूकानपर पीटा जाता है। कभी जौहरी उसको घिसवाता है। भाई मेरे! यदि आपका सुख बाहर रहेगा, तो घिसाई भी होगी-पिटाई भी होगी-फड़ाई भी होगी-कड़ाई भी होगी-जलाई भी होगी। आपके सुखकी सब दुर्गति होगी। यदि आप आत्मसुखका द्वार खोल देंगे, तो आपके सुखका झरना नित्य-निरन्तर प्रवाहित होगा। अब देखना यह है कि आत्मसुखके द्वारका प्रतिबन्धक क्या है?

देखो! एक आदमी तो ऐसे बोला कि 'महाराज! हम तो बहुत साधन-भजन करते हैं; लेकिन, कुछ भी नहीं हुआ।' अब ऐसे आदमीको समझाते-बुझाते हैं कि 'भाई मेरे! साधनके मार्गमें निराश नहीं होना चाहिए। उदास नहीं होना चाहिए। अगर एक साल खेतमें अनाज बो दिया और कुछ पैदा नहीं हुआ, तो दूसरे साल खेती ही नहीं करना कौन-सी बुद्धिमानी है? खेती न करना बुद्धिमानी नहीं है। खेती तो करते जाना चाहिए।' ऐसे समझाते हैं।

अच्छा! देखो! दूसरे लोग कहते हैं कि 'उन्होंने खेती की; परन्तु, अन्न पैदा नहीं हुआ। उन्होंने व्यापार किया; परन्तु, उन्हें आमदनी नहीं हुई। इसलिए, हम भी खेती-व्यापार नहीं करेंगे।' अब उन्हें क्या समझायें? ऐसे समझाते हैं कि 'भाई मेरे! साधन करते-करते कभी-कभी जीवनमें विघ्न भी आ जाते हैं। उनसे उदास-निराश नहीं होना चाहिए। घबड़ाना नहीं चाहिए। अपना साधन-भजन छोड़ना नहीं चाहिए।'

***हरि से लागा रहु मेरे भाई, तेरी बनत बनत बन जाई।***

आपको क्या सुनावें? हमारे वेदान्तियोंमें 'आनन्द-बोधाचार्य' नामके एक आचार्य हुए हैं। उन्होंने जिस ढंगसे बात कही है, उसको सुनो!

**'न हि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्योनाऽधिश्रियन्ते।'**

'यदि घरमें रोटी पकेगी, तो कोई भिखारी आकर माँगने लगा जायेगा। इसलिए, रोटी पकाना बन्द कर दो।'

**'न हि ज्यूकाभावात् आवरणपरित्यागः।'**

'यदि कपड़ा पहनेंगे, तो उसमें जुएँ पड़ जायेंगी। इसलिए, कपड़ा ही खोलकर फेंक दो।'

अरे भाई! साधन करते-करते जीवनमें विघ्न भी आ जाते हैं। विघ्नोंके भयसे कहीं साधन छोड़ा जाता है? नहीं भाई! हिम्मत रखो। धैर्य धारण करो। जब ऊखलमें सिर डाला, तब मूसलसे क्या डरना?

'चरैवेति-चरैवेति।'

हमारे एक सेठ हैं। हम किसी कारणवश उनका नाम तो नहीं ले सकते हैं। वे हमारे बहुत मित्रोंमें-से हैं। उम्रमें तो वे हमसे बहुत बड़े हैं; लेकिन, हमारे मित्रोंमें-से हैं। हमको उनके एक निकट सम्बन्धीने बताया कि 'उनके पास पाँच करोड़की सम्पत्ति है; फिर भी, वे मोटर नहीं रखते हैं।' एक दिन हमने उनसे पूछ ही लिया कि 'आप खुद मोटर क्यों नहीं रखते हो?' वे बोले—'महाराज! मोटर रखी और माँगनेवालोंका ताँता शुरू हुआ। जब मोटरकी आदत पड़ती है, तब एक मोटर रखनेसे तो काम चलता ही नहीं है। कभी-कभी मोटर बिगड़ भी जाती है, तब तो बड़ी तकलीफ होती है। दूसरी मोटर रखनी ही पड़ती है।' अच्छा! देखो! यह बात तो है ही। जिनकी बात है, वह मुम्बईके नहीं हैं। ऐसे समझो कि किसी छोटे शहरके ही हैं। उस शहरमें बहुतोंके पास तो मोटर नहीं है। अतः जिसके घरमें ब्याह-शादी होती है, वे लोग मोटरवाले सेठजीसे मोटर माँगकर ले जाते हैं।

अच्छा! और सुनो! यहाँ एक सज्जन हैं। उनके पास बहुत बढ़िया मोटर है; परन्तु, वह ड्राइवर नहीं रखते हैं। आजकल ड्राइवरको साढ़े-तीन सौ-चार सौ रुपया महीना देना पड़ता है। वह पुर्जे चोरी कर लेता है। वह पेट्रोल भी चोरी करके बेच देता है और अपना पैसा बना लेता है। इस भयसे वह सज्जन ड्राइवर नहीं रखते हैं। अच्छा! खुद इतनी हिम्मत नहीं है कि मोटरको चलाकर सड़कपर ले चलें। अब लाख रुपयेकी मोटर घरमें रखी है। घरमें रखे-रखे उसके पहिये सड़ जाते हैं। यह हमको मालूम है।

हम एक सेठको जानते हैं। हमारे वह सेठ माँगने वालोंसे डरते हैं। उनके घरमें दस-बीस मोटरें चलती हैं। वह एक मोटर मँगनीमें देनेके लिए

रखते हैं। सबसे खराब मोटर वही है। रास्तेमें बिगड़ जाती है। वह जिसके यहाँ उस मोटरको भेज देते हैं, वह आदमी उनके पास फिर दुबारा मोटर माँगने नहीं जाता है। यह मैं छोटे सेठकी बात नहीं कर रहा हूँ। उनके यहाँ दस-बीस मोटरें चलती हैं। हाँ! लेकिन, एक मोटर उनके घरमें ऐसी है, जो बिलकुल गड़बड़झाला है। जिस व्यक्तिके बारेमें वह सेठ सोचते हैं कि यह फिर कभी मोटर माँगनेके लिये उनके पास न आवे, तो अपने ड्राइवरसे कह देते हैं कि-'तुम अमुक मोटर लेकर उनके पास जाना।' यह है-माँगने वालोंका भय।

अच्छा! देखो! हम आपको अपने सेठ मित्रकी बात सुना रहे थे। उनके पास पाँच करोड़की सम्पत्ति है, लेकिन, वह मोटर नहीं रखते हैं। क्यों? माँगने वालोंके भयसे। अब भला बताओ! बसके अड्डेपर खड़े होते हैं। छोटे गाँवके बसके अड्डेपर उनको खड़ा हुआ देखकर लोग तरह-तरहकी बातें बनाते हैं-अटकलें लगाते हैं। स्वाभाविक ही तो है। है न? अब जब उनके घरमें नये बेटोंका विवाह करनेका प्रसंग आया, तब लोगोंने अपनी बेटी ब्याहनेसे इन्कार कर दिया। बेटी वालोंने कह दिया कि 'जब हमारी बेटी तुम्हारे घर जायेगी, तब क्या वह तुम्हारे बेटेके साथ टाँगेपर चढ़कर घूमेगी? कदापि नहीं।' यह बात हुई। अब जब बेटोंका ब्याह करना हुआ, तब मोटर खरीदकर रखी गयी।

नारायण! आप देखो। आपके घरमें, सचमुचमें, पाँच करोड़की सम्पत्ति है। पाँच करोड़की नहीं, बल्कि, पाँच अरबकी सम्पत्ति है। अनन्तकी सम्पत्ति है; परन्तु, माँगने वालोंके डरसे आप अच्छे कपड़े नहीं पहनते हो, अच्छा खाते नहीं हो। भला बताओ! यह कोई बात है? नारायण! उस सुखको बाँटनेमें आपके मनमें जो संकोच है, वह संकोच आपके मनको ही संकुचित नहीं करता है; बल्कि उस संकुचित मनकी उपाधिसे आपको भी संकुचित करता है। संस्कृतमें संकुचित माने होता है-सिकुड़ा हुआ-छोटा। देखो!आपके मनमें सुखको बाँटनेमें जो संकोच है, वह आपको सिकोड़ करके रख देता है। यदि आप सुखके उद्‌गमको खोलना चाहते हैं, तो आप सुखको बाँटिये। कल प्रवचनके अन्तमें मैंने यही बात आपसे कही थी। यदि आप पुण्यकी वृद्धि चाहते हैं और सुखकी वृद्धि चाहते

हैं, तो इसका उपाय यह है कि आप अपना वोट पहले पुण्यको दीजिये और सुखको बाँटिये।

एक बात और है। यह दुःख आपको सतानेके लिये ही आता है। यह तो गुण्डेकी तरह है। यह आपका स्वरूप नहीं है। यह आपके परिवारका नहीं है। यह तो बाहरसे आकर आपके साथ जुड़ गया है। इसको संस्कृत भाषामें बोलेंगे–'अध्यारोपित'। 'अध्यारोपित' शब्दका अर्थ है–अपने साथ जोड़ा हुआ। अध्यारोपित माने एक चीज पर दूसरी चीजको थोप देना। 'अधि' माने ऊपर और 'आरोप' माने थोप-थोपना। आपने अपनेपर दुःखीपना अध्यारोपित किया है। आपने एक ऐसे गुण्डेसे दोस्ती कर ली, जिसका आपके साथ कोई मेल नहीं है। एक ऐसा गुण्डा, जो आपका स्वभाव नहीं है; जो आपका स्वरूप नहीं है; जो आपके आनन्दको मलिन बनाता है; जो आपके प्रकाशको धूमिल करता है; जो आपकी सत्ताको खण्ड-खण्ड करता है। हमारे पास एक मित्र आते हैं। वे खूब हँसते-बोलते हैं। यदि उनसे किसी सेठकी चर्चा करते हैं, तो कह देते हैं कि 'वह तो उसका चमचा है।' आप जानते ही हैं कि चमचा माने क्या होता है? यह मुम्बईके लोगोंसे बिलकुल छिपा हुआ नहीं है। अच्छा! देखो! चमचा माने चम्मच। चम्मच क्या करता है? भोगकी वस्तु मुँहमें लाकर डालता है। चमचा क्या करता है? सेठके पास किसी आसामीको फँसाना; उसके मनकी औरत उसके पास पहुँचाना; उसके जालमें दूसरोंको डालना; इत्यादि, सब काम चमचेका होता है। यह जो दुःख है, वह आपके परिवारका नहीं है। आपका हितैषी मित्र भी नहीं है। यह गुण्डेकी तरह है, जो आपको सतानेके लिए ही आता है।

आपका जो दुःखीपना है, यह आप नहीं हैं। आप स्वयं सुख-स्वरूप हैं। आपका सुखी अहं आपका परिवार है। सुख बाँटना आपका काम है–कर्त्तव्य है। हाँ! आप स्वयं ज्ञान हैं। आपका सबसे निकट सम्बन्धी ज्ञानी अहं है। है तो वह भी पराया; परन्तु सबसे निकट सम्बन्धी है। ज्ञानमें ज्ञानीपना नहीं है। सुखमें सुखीपना नहीं है। यह दुःख बिलकुल विजातीय द्रव्य है। यदि हमारे शरीरके भीतर कोई चीज डाल दी जाती है या कोई काँटा चुभ जाता है या कोई कील रह जाती है या कोई बन्दूककी

गोली घुस जाती है, तो हमारा शरीर उसको सहन नहीं करता है। उसको पचा नहीं पाता है। उसको बाहर निकालनेके लिए सूज जाता है, पक जाता है, छेद कर देता है। उसका ऑपरेशन करना पड़ता है और उसको निकालकर फेंकना पड़ता है। है ना? भाई मेरे! आपके स्वरूपमें यह दुःख बन्दूककी गोलीकी तरह घुसा हुआ है। यह तो बिलकुल बाहरसे डाला हुआ है। भीतर बिलकुल नहीं है। हाँ! आपने उसको अपना स्वरूप समझा। अपना निकट सम्बन्धी समझकर अहंके साथ जोड़ दिया। बस! दुःखी अहं हो गया।

आपको क्या सुनावें? यदि आप अपने जीवनमें सुख बढ़ाना चाहते हैं-ज्ञान बढ़ाना चाहते हैं, तो आप एक क्रम स्वीकार कीजिये। आप एम. ए. की जाली डिग्री मत ग्रहण कीजिये कि हम एम. ए. हो गये। अगर वह जाली डिग्री पकड़ी जायेगी, तो आपको बहुत तकलीफ देगी। वह समयपर पकड़ी ही जायेगी। वह यमराजके हाथों छूट नहीं सकती है। सुख-दुःखका जो विधान है, वह है-यमराज। कानून जालीको पकड़ सकता है। आपका जज अन्धा नहीं है और संविधान भी अन्धा नहीं है। वह आपके जाली अहंको पकड़ेगा। आपका जाली अहं जरूर पकड़ा जायेगा। उस समय आपको दुःखी होना पड़ेगा। अतएव, आप अपने जीवनमें सम्प्रदायका सोपान स्वीकार कीजिये। सोपान क्या है? सोपान माने सीढ़ी। श्रेणी। आप अपने जीवनमें वेदान्त-सम्प्रदायको सीढ़ी-दर-सीढ़ी क्रमसे स्वीकार कीजिये। जहाँ पहुँचना है, वहाँ हम पहुँच गये—ऐसा मानकर एक आदमी फिर नीचे उतरना चाहता है—नीचे उतरता है। जब आप चोरी करते हैं—बेईमानी करते हैं-छल करते हैं-कपट करते हैं, तब क्या आप साक्षीपनेमें करते हैं? उस समय आप चोरसे-बेईमानसे-छलीसे-कपटीसे एक होकर करते हैं।

वेदान्तका सिद्धान्त और वेदान्तका सम्प्रदाय—इन दोनोंमें फर्क होता है। आप वेदान्तके सिद्धान्तके बारेमें ज्यादा सुनते हैं। चूँकि आप धर्म-निरपेक्ष हो गये; इसलिए, वेदान्त-सम्प्रदायके बारेमें आप अपनी जानकारी थोड़ी कम रखते हैं। 'सम्प्रदाय' शब्दका अर्थ क्या होता है? सम् माने, सम्यक् माने भली-भाँति। प्र माने प्रकृष्ट माने उत्तम। दाय माने वही-दाय भागमें जो है माने

हकदारी। इस प्रकार, सम्प्रदाय माने भली-भाँति उत्तम वस्तुकी हकदारी। जैसे पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रका हक होता है, वैसे गुरुकी ज्ञान-सम्पदामें शिष्यकी हकदारी होती है। संस्कृत भाषामें उसको सम्प्रदाय बोला जाता है। गुरुकी उत्तम ज्ञान-सम्पत्तिमें शिष्यकी जो हकदारी है, वह वीर्य से नहीं आती है। रज और वीर्यके संयोगसे जो उत्पत्ति होती है और उसमें-से नहीं आती है। वह कानमें डाली जाती है और उसके अनुसार मन ऊपरको उठता है। आपको साफ-साफ बता देते हैं। सम्प्रदाय माने साधनका एक क्रम। संस्कृतमें 'क्रम' शब्दका अर्थ होता है—पादनिक्षेप। '**क्रमो पादनिक्षेपे**'। पाँव आगे बढ़ाना। प्रगति। आप सीढ़ी-दर-सीढ़ी क्रमसे चढ़िये।

देखो! आपका कर्म, आपका मन और आपकी बुद्धि—ये तीनों आपके व्यक्तिगत शरीरमें रहते हैं। आप जिन बातोंको बुद्धिसे ठीक समझते हैं, क्या आपका मन उन्हीं बातोंके बारेमें संकल्प करता है? क्या आपकी इन्द्रियाँ आपके मनमें उठे संकल्पके अनुसार क्रियाशील होती हैं? आपके घरमें तीन आदमी रहते हैं। सवाल यह है कि तीनों एक राय हैं कि नहीं? आपके इस शरीरमें बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ—ये तीन हैं। अगर ज्यादा बढ़ाना हो, तो पाँच कर लो। हम दो, हमारे तीन—ऐसे पाँच कर लो। अपने परिवारके बारेमें निश्चय कर लो। यदि परिवारमें सहमति नहीं होगी, तो क्या आपके घरमें सुखका निवास होगा? यदि आपके परिवारमें आपकी पत्नी, आपके माँ-बाप, आपके पुत्र और पुत्रवधू, आपके भाई-बहन आपसमें लड़ रहे हों, तो क्या आप गवाह बनकर देखते रहते हो? यह आपकी गवाही नहीं चलेगी। आपको या तो माँके पक्षमें होना पड़ेगा या पत्नीके पक्षमें होना पड़ेगा।

*वेद पुरान संत सब साखी।*

साखी माने साक्षी। साक्षी माने गवाह। आप गवाह होकरके परिवारमें रह रहे हैं, तो परिवारको समन्वित कर दीजिये। आपकी समझमें जो ठीक है, वही कर्म इन्द्रियोंके द्वारा कीजिये। बुद्धि और कर्म-दोनोंके बीचमें मनका जो संकल्प है, वह दोनोंके साथ समन्वित हो जाये। जब आपका जीवन समन्वित होगा, तब आप अपने साक्षीपनेका ठीक-ठीक अनुभव कर सकेंगे।

यह वेदान्त-सम्प्रदाय है। इसीको बोलते हैं:-शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधान। अरे! आप सब लोगोंको याद है। इसको षट्सम्पत्ति बोलते हैं। आप अपने अन्तःकरणमें षट्सम्पत्तिकी स्थापना कर दीजिये। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंका समन्वय कर दीजिये। पहले बुद्धि, मन और इन्द्रियोंका मेलजोल कर दीजिये-उनमें सामञ्जस्य बना दीजिये और फिर उनसे अलग होकर बैठिये। वे तो आपके सामने नाच-नाचकर, गा-गाकर, हँस-हँसकर अपना भोग उपस्थित करेंगे। सुख बढ़ानेका स्रोत यह है कि आप सुख बाँटनेका पुण्य कीजिये। जब आपके जीवनमें एक समन्वय-एक सामञ्जस्य स्थापित होगा, तब आप वासना-क्षयके मार्ग पर चलेंगे। जब आप वासना-क्षयके मार्गपर चलेंगे, तब जीवन्मुक्ति आपके चरण चूमेगी। आपने यह जो स्वर्गका संस्कार लिया, वैकुण्ठका संस्कार लिया, गोलोकका संस्कार लिया, इससे आप ऐसा मानने लगे कि मुक्ति तो मरनेके बाद होती है। जीवन्मुक्ति कहनेका अर्थ है कि इसी जीवनमें आप ब्रह्मसुखका आस्वादन कीजिये। आस्वादन करनेका तरीका यही है कि उसको बाँटिये। आप सुखका वितरण कीजिये और देखिये कि आपका अन्तःकरण सुखका उद्गम स्रोत हो जाता है। अच्छा! नारायण! अब फिर कल सुनावेंगे हो!

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!!

●

# 9

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!**

आजकलकी परिस्थितिमें–परिप्रेक्ष्यमें माने वर्तमान परिवेशमें यदि लोगोंको यह समझाना पड़े कि पौरुष–प्रयत्नसे सब कुछ हो सकता है, तो यह एक तरहका पिष्ट–पेषण ही है। पिसे हुएको पीसना है। आज चन्द्रलोककी यात्रा हो रही है। शुक्रपर विमान उतर रहे हैं। राकेट छोड़े जा रहे हैं। जिसकी कल्पना भी अबसे 25-50 वर्ष पहले लोगोंके मनमें नहीं आती थी, वह आज पौरुष-प्रयत्नसे प्राप्त हो रहा है।

वेदान्त पूर्वकर्मप्रधान सिद्धान्त नहीं है। वेदान्त फलभोग-प्रधान सिद्धान्त भी नहीं है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे वेदान्तको ईश्वरकी परतन्त्रता भी सहन नहीं है। वैष्णव सिद्धान्तको–शैव सिद्धान्तको हम नहीं लेते हैं। अद्वैत सिद्धान्तकी बात करते हैं। अद्वैत सिद्धान्तकी दृष्टिसे पुरुष पराधीनताको कभी सहन ही नहीं कर सकता है। यह पुरुष स्वभाव है। यह पुरुषके रग-रगमें है। आप जो भी चाहें, सो पौरुषसे मिल सकता है।

यदि सबसे प्रबल कोई भारतीय कर्मप्रधान सिद्धान्त मानें, तो जैन सिद्धान्त है। हमारे वैदिकोंमें पूर्वमीमांसाका कर्म–सिद्धान्त है। जैनोंमें ऐसा मानते हैं कि मनुष्य साधना–तपस्याके द्वारा पूर्वकर्मजन्य आश्रयपर विजय प्राप्त करके वीतराग पदवीतक पहुँच सकता है। उनको यह जरूरत नहीं है कि ईश्वर उनके ऊपर कृपा करे क्योंकि, उनके यहाँ तो ईश्वरकी मान्यता ही नहीं है। जब तीर्थंकर कृपा करे, तब उनका अन्तःकरण शुद्ध होगा–यह प्रयास वे नहीं करते हैं। तीर्थंकर तो तीर्थंकर होते ही अपने वीतराग शुद्ध स्वरूपमें स्थित हो जाता है। वह किसीके ऊपर कृपा करनेके लिए आता ही नहीं है। मनुष्यको स्वयं प्रयत्न करना पड़ता है। यह हमारे कर्मवादियोंमें जैन सिद्धान्त है! कर्मवादी और वीतराग–शुद्ध, राग–द्वेष रहित होनेका निश्चय।

बौद्धोंमें देखो। वह भी कर्मवादी हैं; परन्तु, वासनाको निवृत्त करना उनका मुख्य सिद्धान्त है। निर्वासन हुए बिना बुद्ध पदकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। वह भी मानते हैं कि पुरुष प्रयत्नसे वासनाका निवारण करना चाहिए।

चार्वाक मतमें पूर्व कर्मका और मरनेके बादका कोई प्रश्न ही नहीं है। बौद्ध मतमें और जैन मतमें पूर्व-कर्म और उत्तर-जन्मकी बात है; परन्तु, चार्वाक मतमें पूर्व-कर्म और उत्तर-जन्मकी कोई बात ही नहीं है। मनुष्य इसी जीवनमें अपने पौरुषसे–प्रयत्नसे अपने जीवनका निर्माण कर सकता है।

पूर्वमीमांसकोंका कहना है कि यदि मनुष्य ठीक-ठीक धर्मात्मा हो जाये–धर्मानुष्ठान करे, तो वह धर्मका फल प्राप्त करता है। यह भी आपको सुनाते हैं कि वे धर्मको संस्कार रूप नहीं मानते हैं। धर्मको संस्कार रूप तो नैयायिक मानते हैं। विहित क्रियाजन्य संस्कारका नाम धर्म है और निषिद्ध क्रियाजन्य संस्कारका नाम अधर्म है। धर्माधर्म अन्तःकरणमें रहते हैं। यह सिद्धान्त तो हमारे न्यायवैशेषिक दर्शनका है। वह भी क्रियाजन्य तो मानते ही हैं। जैसा काम करोगे, वैसा संस्कार हृदयमें बनेगा। अदृष्ट बनेगा। हमारे पूर्वमीमांसक धर्माधर्मको अदृष्ट रूप नहीं मानते हैं। वह तो विहित कर्मको ही धर्म मानते हैं। जो हम कर रहे हैं। वही धर्म है। है न! जो विहित कर्म माने शास्त्रोक्त कर्म कर रहे हैं, वही धर्म है। जो निषिद्ध कर्म कर रहे हैं, वही अधर्म है। यदि विहित कर्म-धर्म यहाँ फल न दे सके, तो उससे एक अपूर्वकी उत्पत्ति होती है। वह कर्त्ताके साथ जुड़ जाता है और फिर बादमें फल देता है। वे पौरुषका अत्यन्त माहात्म्य मानते हैं।

आपको पूर्वमीमांसकोंके पौरुषका माहात्म्य सुनाते हैं। वे कहते हैं कि प्रपंच-सम्बन्ध विलय पर्यन्त पौरुषकी गति है, प्रपंच-विलय नहीं हो! योगमें प्रपंच विलय माना जाता है। मीमांसा-शास्त्रमें प्रपंच-विलय नहीं माना जाता है। वे तो कहते हैं कि दुनिया तो हमेशासे ऐसी बनी आयी है। यही पंचभूत हैं। ऐसे ही, स्त्री-पुरुष पैदा होते हैं। ऐसे ही सृष्टि होती है। बीच-बीचमें कोई मर जाते हैं, कोई पैदा हो जाते हैं; लेकिन, सृष्टिकी परम्परा ऐसे ही चलती रहती है। **न कदाचिदनीदृशं जगत्**। उनके मतमें पौरुषका पर्यवसान कहाँ है? पौरुषका अन्त कहाँ है? बोले–आत्माका प्रपंचके साथ जो सम्बन्ध है, वह सम्बन्ध विलीन हो जाये। प्रपंच भी बना रहे; आत्मा भी बना रहे; परन्तु, सम्बन्ध-बोध टूट जाये। सम्बन्धकी बुद्धि टूट जाये–यह पौरुषका प्रयास है।

अच्छा! सांख्ययोगकी दृष्टिसे देखें, तो योगाभ्यास सारा-का-सारा पौरुष-प्रयत्न ही है। यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि। योगाभ्यास पौरुष-प्रयत्न है। यह ईश्वरवादियोंकी बात नहीं की ईश्वरवादियोंमें नैयायिकोंकी गणना है। वैशेषिकको तो अर्ध-नास्तिक ही मानते हैं।

अब आपको ईश्वरानुग्रहके सम्बन्धमें सुनाते हैं। जो ईश्वर मानते हैं, उनकी चर्चा सुनाते हैं। आपने सुना है न कि 'जो खुद अपनी मदद नहीं करता, खुदा भी उसकी मदद नहीं करता।' 'जो अपने को जोखिम में नहीं डालता, वह कभी फायदा नहीं उठा सकता।' ये कहावतें आपने सुनी होंगी। सच ही तो हैं। खतरा उठाये बिना कभी कोई लाभ नहीं होता। जो अपनी सहायता नहीं करता, ईश्वर भी उसकी सहायता नहीं करता। हम तो हाथ-पाँव फैलाकर पड़े रहेंगे; जो होना होय, सो होय—ऐसा कोई जवान आदमी कैसे सोच सकता है? **युवा आशिष्ठो दृढिष्ठः**। जो युवा है, आशावान् है, अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये दृढ़ है, वह भला कैसे कह सकता है कि जो होना होय, सो होय। है न? अब महाराज! यदि युवा साधक ऐसे नहीं सोचेगा-कहेगा, तो पुरुषका पुरुषत्व प्रकट कैसे होगा? पुरुषका पुरुषत्व अभिव्यक्त कैसे होगा? हाँ! यदि दमा हो गया हो, खाँसी हो गयी हो, टी० बी० हो गयी हो, मरीज होकर खाटपर पड़ा हो, जीवनसे निराश हो गया हो, तो पौरुष छोड़ सकता है और सोच-बोल सकता है कि 'बाबा! छोड़ो। जो होता है, सो होने दो।'

क्या हम केवल वासनाके पराधीन होकर जीवन व्यतीत करनेके लिए पैदा हुए हैं? जवान आदमीका काम तो यह है कि अगर उसको कोई गुलाम बनावे—कोई पराधीन बनावे, तो डंडा लेकर तैयार हो जाये। जवानका काम तो संघर्ष है। पलायनवाद तो असमर्थ बुड्ढे लोगोंके लिए है। अब हम तो पलायनवादी हैं। आपको स्वयं क्या बतावें? जब कोई आदमी हमारे मनके खिलाफ काम करता है न,तब हमको तकलीफ होती है। यदि कोई हमारे सामने रोवे, तो हमको तकलीफ होती है। यदि कोई गुस्सा करे, आपसमें लड़े-झगड़े, तो हमको तकलीफ होती है। उस समय हमको ऐसा लगता है कि हमारा दिल कुछ फूल रहा है, उसमें सूजन हो

रही है। अब हम तो पलायनवादके सिवाय और कुछ कर नहीं सकते हैं। हम अपने मनमें सोचते-कहते हैं कि 'अच्छा! भाया! तुम लड़ते हो, तो लड़कर मरो। रोते हो, तो रोवो।' है न? हाँ! यदि हम ऐसे सोच करके उनकी उपेक्षा न कर दें, तो अब हमारे 'हार्ट' (Heart) में वह सामर्थ्य नहीं है कि हम किसीका विरोध कर सकें। लेकिन, एक जवान आदमी, जिसको पौरुषकी स्वतन्त्रता प्रकट करनी है और जिसको अपनी गुलामी मिटानी है, वह ऐसा कैसे कर सकता है?

देखो! गुलामी केवल आदमीकी ही नहीं होती है। गुलामी अपनी वासनाकी भी होती है। जब हमारा मन शरीरको कुमार्गपर घसीटता है, तब हम मनके गुलाम होते हैं। कोई भी जवान साधक मनका गुलाम कैसे हो सकता है? **युवा आशिष्ठो दृढिष्ठः**। जो जवान है; अपने जीवनमें आशावान् है; और, अपने लक्ष्य-प्राप्तिके लिये साधनमें दृढ़ है, वह मनकी-वासनाकी गुलामीको-पराधीनताको कबूल नहीं कर सकता है। हमारा मन जो कहेगा, सो ही हम करेंगे-ऐसा कोई युवा साधक कैसे कर सकता है?

आप 'योगवासिष्ठ'का दूसरा प्रकरण पढ़ें। पहला वैराग्य प्रकरण है और दूसरा 'मुमुक्षु-व्यवहार' प्रकरण है। 'वसिष्ठजी'ने 'भगवान् रामचन्द्रजी' को मुमुक्षु-व्यवहार प्रकरणमें समझाते हुए कहा है-'**सम्यक् प्रयुक्तात् सर्वेण पौरुषात् समवाप्यते**।' दुनियाका चाहे जो आदमी यदि अपने पौरुषका ठीक-ठीक प्रयोग करे, तो जैसे 'विश्वामित्र'ने 'ब्रह्मा'के मुकाबलेमें दूसरी सृष्टि बना दी थी, वैसे उसमें सृष्टिके निर्माणका सामर्थ्य हो सकता है। सदंश होनेसे वह सर्वाकार हो सकता है। चिदंश होनेसे वह सर्वज्ञ हो सकता है। आनन्दांश होनेसे वह सर्वभोक्ता हो सकता है। अद्वितीय होनेसे वह किसीके द्वारा अभिभूत नहीं हो सकता है-दब नहीं सकता है। साधकके जीवनमें पौरुषका प्रकट होना अनिवार्य है। आज तक जिस किसीको जब कभी जो कुछ प्राप्त हुआ है, वह पौरुषसे मिला है। पौरुषका ठीक-ठीक प्रयोग करो। पौरुषको जीवनमें प्रकट करो।

एक हलवाहा था। एक दिन वह हल जोतते-जोतते पेड़के नीचे कलेऊ करने लग गया। जब वह वहाँसे चलने लगा, तब एक बड़ी-सी चिड़िया आकर उससे टकरा गयी। उसने वह चिड़िया पकड़ ली। अब उसने

उसे ले जाकर बाजारमें बेचा। उसे बीस रुपये मिले। उसने कहा–'अरे! राम-राम! साल भर काममें लगते हैं–हल चलाते हैं, तो क्या मिलता है? यह तो बढ़िया रोजगार है कि चिड़िया खुद आकर शरीरसे टकराये, पकड़ी जाये, बेची जाय और कमाई की जाये।' उसने खेती छोड़ दी। हल छोड़ दिया। बैल छोड़ दिये। अब वह जंगलमें जाकर ढूँढ़े कि कोई बड़ी-सी चिड़िया फिर से आकर हमसे अपने आप टकराये। हाँ! लेकिन, फिर ऐसा संयोग बना नहीं। परिणामतः वह भूखा मर गया। आप जो काम संयोगवश पर छोड़ देते हैं कि अपने आप हो जायेगा, वह आपकी समझदारी नहीं है। यह बात आप अपने ध्यानमें लें। संयोगवशपर छोड़ देनेसे आप चन्द्रलोकमें नहीं जा सकते हैं; शुक्रग्रह पर नहीं जा सकते है; और, शत्रुपर विजय नहीं प्राप्त कर सकते हैं–न बाह्य शत्रुपर और न ही अन्तर शत्रुपर। पौरुष करो। प्रयत्नसे उद्देश्य-पूर्त्ति होती है।

हम तो गाँवकी गँवारू बात जानते हैं। जब वर्षा-ऋतुमें वर्षा होती है और पानी इधर-उधर फैलने लगता है, तब किसान क्या करता है? मैंने भी किसानीकी है भला! मैंने दो बरसों तक पूरी अपनी जिम्मेवारीपर खेतीका काम किया है। मेरे पितामहकी मृत्यु हो गयी थी। मेरे सिवाय घरपर कोई नहीं था। मैं खुद अपने हाथसे फावड़ा चलाता था। मैंने कितने बीज अपने हाथसे बोये हैं। कितने धान रोपवाये हैं। खैर! जब वर्षा होनेपर पानी फैलने लगता है, तब फावड़ा लेकर एक ओर नाली-सी बनाते चले जाते हैं। जिधर गहराई बना दी जाती है, उधर वह फैलते हुए पानीका झुकाव हो जाता है। जो पानी फैल करके बिखर जाता है, उसे जिस खेतमें हम ले जाना चाहते हैं, उस खेतमें पहुँचा देते हैं। बहुत थोड़े पौरुषकी जरूरत पड़ती है। वह तो एक ओर झुकाव होना चाहिये। आपके अन्तःकरणमें जो वासनाकी वर्षा होती है, उसमें क्या हमेशा बुरी-बुरी बातें ही आती हैं? अच्छी बातें कभी आती ही नहीं? आप जरा-सा फावड़ा उठाइये और अच्छी बातोंकी ओर उनका झुकाव कर दीजिये।

**'सम्यक् प्रयुक्तात् सर्वेण पौरुषात् समवाप्यते।'**

पौरुष माने साधना। साधना छोड़ देनेका जो उपदेश है, वह आपकी प्रगतिका सहायक नहीं है। प्रगति माने आगे बढ़ना। आप लोग अखबारोंमें

प्रगति-प्रगति तो पढ़ते हैं न! गति माने चलना। प्रगति माने अच्छी दिशामें आगे बढ़ना—अच्छे लक्ष्यमें आगे बढ़ना—अच्छाईकी ओर बढ़ना। पहले लोग 'उन्नति' शब्दका प्रयोग ज्यादा करते थे। 'उन्नति'का अर्थ होता है—ऊपर उठना। जब स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठलोक लक्ष्य होता था, तब उसको उन्नति—ऊपर उठना बोलते थे। अब धरतीपर ही आगे चलना है, तो उसके लिये उन्नति शब्दका प्रयोग नहीं करते हैं; अपितु, प्रगति शब्दका प्रयोग करते हैं। वैसे पूछो, तो गति सामने भी होती है, ऊपर भी होती है, सब जगह होती है। देखो! पैसेसे लेकर वैकुण्ठ तक और मोक्ष तक आप अपने पौरुषसे प्राप्त कर सकते हैं।

पौरुष करनेका अर्थ क्या है? आपको बचपनकी एक बात सुनाते हैं। हमारे घरपर लकड़ीका काम करनेके लिये सुतार—बढ़ई आया करते थे। बीस काम होता था। कभी हल बनाना है। कभी जुआट बनानी है। कभी अरीठ बनानी है। कभी आरी बनानी है। कभी किवाड़ी बनानी है। जब वे सुतार लोग घरमें आकरके काम करना शुरू करते थे, तब हमारे लिए वह बहुत बढ़िया खेल हो जाता था। हम भी आरी लेकर उनके साथ काटने लगते थे। हम भी बसीला चलाते थे। एक बार अपने आप बसीला उठाकर मारा, तो जितना काटना चाहिए था, उससे ज्यादा कट गया। आरी चलाने लगा, तो वह टेढ़ी हो गयी—अटक गयी। एक सुतारने हमसे कहा कि 'ऐसे तो सब बिगड़ जायेगा। देखो! इस अन्दाजसे बसीला मारो, तो इतना कटेगा। इस अन्दाजसे आरी चलाओ, तो सीधी लकड़ी कटेगी।' उसने हमें बचपनमें यह सब काम सिखाया। इस प्रकार, एक है—सीखकर पौरुष करना और दूसरा है—बिना सीखे पौरुष करना।

एक हमारा बालक है। वह अमेरिकासे व्यापार करना सीखकर आया। व्यापारका 'मैनेजमेंट' (Management) होता है उसकी कोई शिक्षा होती है। वह मैनेजमेंट तो सीखकर आया अमेरिकासे और उसको व्यापार करना था हिन्दुस्तानमें। उसको तो बड़ा भारी अभिमान था अपनी शिक्षाका। वह ऐसा सोच-सोचकर आया कि हम यह करेंगे—हम यह करेंगे। यहाँ लोगोंने कहा कि 'तुमने अमेरिकाकी परिस्थितिमें सीखा है। जरा हिन्दुस्तानकी परिस्थितिको देख-समझ लो। यहाँके लोगोंकी मनोवृत्तिको

देख लो। यहाँकी चाल-ढाल थोड़ी-सी समझ लो।' वह नहीं माना। बड़े आदमीका बेटा। जब वह माना ही नहीं, तब लोगोने कहा-'अच्छा! तुम पहले लाख-दो-लाख रुपया खर्च करके बताओ।' जब किया, तब घाटा निकल गया। अब उसकी समझमें आया कि केवल पुस्तकीय जानकारीसे काम नहीं चलता है। कि जो अपनेसे ज्यादा जानकार हैं, अनुभवी हैं, उनके साथ रहकर हमको पहले यहाँकी परिस्थितिको समझना चाहिए। यहाँकी जानकारीके बिना काम नहीं चलेगा।

**'उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।'**

देखो! यदि आपको डॉक्टरी करनी हो, तो आप डॉक्टरके साथ रहकर सीखेंगे। यदि आपको वकालत करनी हो, तो आप बड़े वकीलके साथ रहकर सीखेंगे। है कि नहीं? अच्छा! यदि आपको व्यापार करना हो, तो आप बड़े व्यापारीके साथ रहकर सीखेंगे। लेकिन, यदि आपको साधना करनी हो, तो आप अपने मनसे अपने आप ही कर लेंगे। असलमें, साधनासे जो प्राप्त होता है, उसके बारेमें आपको ठीक-ठीक 'आइडिया' (Idea) नहीं है। वह किसी दिशामें मिलेगा? यह भी मालूम नहीं है। नारायण! साधनाके क्षेत्रमें अनुभवी पुरुषके अनुभवसे लाभ न उठाना अपनेको धोखेमें डालना है भला!

आपको अपने बचपनकी एक भूल सुनाते हैं—हमारे गाँवसे कोई डेढ़ मील दूर मदरसा स्कूल-प्राइमरी स्कूल पड़ता था। हमारे गाँवसे स्कूल तक जानेके लिए सड़क भी थी। जब थोड़े दिनों तक जाते-जाते होशियार हो गये, तब यह हुआ कि सड़कसे जानेसे जरा घूमकर जाना पड़ता है। अतः अब सीधे-सीधे चलेंगे। बाजरेका खेत लगा हुआ था। जिसमें हम डूब जायें, ऐसे बाजरे पड़े हुए थे। हमने सोचा कि इसी सीधमें हमारा गाँव पड़ता है, तो क्यों न यहींसे चला जाये! हम बाजरेके खेतमें घुस गये। महाराज! अब हम चलते-चलते पार ही न पावें। सैकड़ों एकड़में बाजरा लगा हुआ था। बाजरेके भीतर जानेके बाद दिग्भ्रम हो गया। पार ही न पावें कि किस ओर जायें, तो गाँव मिलेगा। अब हम रोते हुए बड़े जोरसे चिल्लाये। हमारा रोना-चिल्लाना सुनकर कोई खेतवाला आया। उसने आकर हमारा हाथ पकड़ा और हमें ठीक रास्ते पर पहुँचा गया। वह हमसे बोला—'देखो! अब

कभी भी बाजरेके खेतमें-से मत निकलना।' आप लोगोंको मालूम नहीं है कि गन्नेके पत्ते जो हैं न, वह तो शरीरको चीर डालते हैं। अगर गन्नेके खेतमें कोई भटक जाये, तो उसका बचकर निकलना बहुत कठिन है। रास्ता चलनेके लिए जाना हुआ रास्ता होना चाहिए। रास्ता चलनेके लिए अनुभवी पुरुषका बताया हुआ रास्ता होना चाहिए।

अब यह देखो कि अच्छी-बुरी-दोनों वासनाएँ आती हैं। यदि आप अपना झुकाव अच्छी वासनाओंकी ओर कर दोगे, तो बुरी वासनाएँ भी अच्छी बनकर अच्छी में आकरके मिल जायेंगी। यदि आप बुरी वासनाओंका पक्ष ले लोगे, तो अच्छी वासनाएँ भी बुरीमें मिल जायेंगी। इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। एक सज्जन बोले-'हमारे मनमें धनकी वासना है।' हमने कहा-'यदि तुम्हारे मनमें धनकी वासना है, तो खेती करो-व्यापार करो-नौकरी करो। अपनी परिस्थितिके अनुसार-कायदेके अनुसार काम करो।' वह बोले-'नहीं। हमसे कायदेके अनुसार कोई काम नहीं होगा। हम तो जेब काटेंगे और एक ही दिनमें धनी हो जायेंगे।' अब भला बताओ! हम क्या कहें-सुनें?

हमारा एक जाना हुआ आदमी है। वह गाँवसे बम्बईमें आया। हमारे मनमें एकाएक आया कि यह आदमी गाँवमें अच्छे भलेमानुस आदमीके घरमें काम कर रहा था। यह वहाँसे छोड़कर यहाँ क्यों आया? हमने चिट्ठी लिखकरके उसके बारेमें पूछा कि 'यह आदमी तुम्हारे यहाँसे काम छोड़कर क्यों आया है? इसके बारेमें जरा-सूचित करें।' उन्होंने लिखा कि 'हमारे यहाँ उसने कोई बदमाशी तो नहीं की है। कोई चोरी-चमारी भी नहीं की है। हाँ! यह बात अवश्य है कि उसके मनमें एक दिनमें करोड़पति होनेकी वासना जाग्रत् हो गयी है। इसी कारणवश, वह हमारे यहाँसे काम छोड़कर शहरमें गया है। 'भले वह चाहता है कि हम एक दिनमें करोड़पति हो जायें; लेकिन, एक दिनमें तो कोई करोड़पति होता नहीं। कर्जका बोझ उसके सिरपर बढ़ता जाता है। अगर वह कायदेसे काम करे और कायदेसे खर्च करे, तो ऐसा कैसे हो?' साधनामें भी कायदेका क्रोध, कायदेका काम, कायदेका लोभ चलता है। बेकायदे काम-परस्त्री, बेकायदे लोभ-परद्रव्यहरण, बेकायदे क्रोध-हिंसा साधनाके मार्गमें नहीं चलते हैं।

इस सम्बन्धमें आपको थोड़ी-सी ईश्वरवादियोंकी बात भी कह दें; अन्यथा, यहाँ बहुतसे लोग निराश हो जायेंगे। हमारे देशमें जितने वैदिक भक्त-सम्प्रदाय हैं, उनकी थोड़ी-सी बात आपको बताते हैं। वैदिक भक्त-सम्प्रदाय! यह भक्त-सम्प्रदायके नामके साथ वैदिक जोड़ लेते हैं। 'श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज' भगवान्के अनुग्रहका बहुत वर्णन करते हैं; परन्तु, उन्होंने भक्तिको दो हिस्सोंमें बाँट दिया है। आपने ध्यान दिया या नहीं? मर्यादा-भक्ति और पुष्टि-भक्ति। मर्यादा भक्ति कायदेसे करनी पड़ती है। उसमें बड़ा पौरुष होता है। यह छुओ-यह मत छुओ। यह खाओ-यह मत खाओ। ऐसे रहो-ऐसे मत रहो। देखो! श्रीवल्लभाचार्यजीका अनुग्रहका-पुष्टिका मार्ग है; किन्तु, मर्यादाका पालन किये बिना ईश्वरकी ओरसे पुष्टि नहीं आती है। बम्बईमें लोग इस बातसे बहुत परिचित होंगे।

अच्छा! आपको 'श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज'की बात सुनाते हैं। उनका महाविश्वासका मार्ग है। वह अपने साधनमार्गको महाविश्वास बोलते हैं। अगर तलवारसे गला काटता है, तो ईश्वर काटता है। महाविश्वास करो। उसमें तुम्हारा ही कल्याण होगा। वह भी भक्तिको-शरणागतिको महाविश्वास फलरूपा मानते हैं और क्रिया-योगको अनुष्ठान। यह मन्दिरोंमें पूजा करना, खड़ा चन्दन लगाना, द्वादश तिलक धारण करना, क्या खाना, क्या नहीं खाना, इत्यादि क्रियायोगका अनुष्ठान होता है। श्रीरामानुजाचार्यजी महाराजका सम्प्रदाय महाविश्वासका सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायमें हमारे तो बहुत सम्बन्धी हैं। हमारी माताजीने यह दीक्षा ली थी।

'स्वामीनारायण-सम्प्रदाय' भी 'रामानुज-सम्प्रदाय'से सिद्धान्तमें तो बिलकुल मिलता हुआ ही है। अच्छा! जब वह हमारे सम्बन्धी आते थे न, तब वह खड़ा चन्दन लगाये हुए रहते थे। शैव-लोग तो पड़ा चन्दन लगाते हैं और वैष्णव-लोग खड़ा-चन्दन लगाते हैं। एक चन्दन होता है-पड़ा और एक चन्दन होता है-खड़ा। खड़े चन्दनके भी बहुत भेद होते है। वह सब हम आपको नहीं बतावेंगे। अच्छा! वह हमारे सम्बन्धी आकरके आमकी खटाई लेकरके हमारे बर्तन माँजते थे। पर्दा टाँगकरके उसके भीतर अपने हाथसे रोटी बनाकरके तब भगवान्को भोग लगाते थे। वह इस बातका विशेष ध्यान रखते थे कि रोटी बनानेके पहले किसीकी दृष्टि न पड़े। कहीं

कुत्तेकी नजर न पड़ जाये। कहीं रजस्वलाकी नजर न पड़ जाये। क्रियायोगका अनुष्ठान होता है। पहले पौरुष होता है और फिर भगवान्‌पर महाविश्वास।

'अनन्योपायसाध्यत्वे महाविश्वासपूर्वकम्'

यह देखो! यह ईश्वरवादीका सिद्धान्त है। क्रियायोग और प्रपत्ति-शरणागति। इसमें और कोई नहीं हुआ है।

गौडेश्वर सम्प्रदायमें भक्तिके दो भेद मानते हैं। वैधी भक्ति और प्रेम लक्षणा भक्ति। प्रेम लक्षणा भक्तिके भी दो भेद मान्य हैं। रागानुगा भक्ति और रागात्मिका भक्ति। रागात्मिका भक्ति होती है—यशोदा-राधा आदि नित्य-सिद्ध भक्तोंमें। मानव-सिद्ध भक्तोंमें रागानुगा भक्ति होती है। लेकिन, उसके पहले उन्हें वैधी भक्ति करनी पड़ती है। भगवान्‌की वैधी भक्ति माने विहित भक्ति आप चैतन्य महाप्रभुके पन्थके राधारमणजीका दर्शन करने जाते होंगे! वहाँ पुजारीको, जो प्रसाद बाँटता है, अगर आप स्पर्श कर दो, तो वह बेचारा तुरन्त मन्दिरमें-से निकलकर स्नान करेगा, कपड़े बदलेगा, फिर चन्दन लगावेगा और तब मन्दिरमें जायेगा। यह है—वैधी भक्ति।

ऐसे ही, निम्बार्काचार्यके यहाँ भी साधनभक्ति होती है और रसभक्ति होती है। हरिदासियोंकी रसभक्ति है। जो साधारण निम्बार्क हैं, उनके यहाँ तो क्रमदीपिकाके अनुसार अष्टादशाक्षर मन्त्रका और दूसरे मन्त्रोंका भी जप होता है, ध्यान होता है, भगवान्‌की पूजा होती है—ऐसे है!

आपको यह ईश्वर-वादियोंकी-वैष्णवोंकी बात सुनाते हैं। शैवोंकी बात भी ऐसी है। हमारे पास वह शैव रहते हैं, जो अपने गलेमें शिवजीकी मूर्ति हमेशा बाँधकर रहते हैं। 'वीरसिंह' हमारे आश्रममें रहते हैं। रामानुजी वैष्णव हमारे आश्रममें रहते हैं। वल्लभी वैष्णव हमारे आश्रममें रहते हैं। हम उनकी बात जानते हैं। हमारे कहनेका अभिप्राय यह है कि ईश्वरके बारेमें इतना महाविश्वास रखते हुए भी पहले साधनाकी आवश्यकता पड़ती है।

आप खेतीको भविष्यपर नहीं छोड़ सकते। आप व्यापारको भविष्यपर नहीं छोड़ सकते। आप नौकरीको भविष्यपर—होनहारपर नहीं छोड़ सकते। आप रोगको होनहारपर नहीं छोड़ सकते। आप अपने छोटे बच्चेको होनहार पर नहीं छोड़ सकते। है न? पर, आप अपने मनको

होनहारपर छोड़ देते हैं। क्या यह आपकी बुद्धिमत्ता है? साधनाका जो समय है, वह वासनाके वेगको मर्यादाके अन्दर ले आना है-विधिके अन्दर ले आना है। पौरुषको शास्त्रीय बना देना है। साधनाको अनुशिष्ट बना देना है। यहाँसे वासना-क्षयका मार्ग प्रारम्भ होता है। इस शिष्टानुसारी साधनामें ऐसा मजा आता है कि आपको क्या बतावें? यह भोगमें जो मजा आता है, उसमें तो कुछ है ही नहीं। वह तो जिन लोगोंने साधना नहीं की है और केवल भोग-ही-भोग किया है, उनको फोड़ा फूटनेका मजा तो मालूम है कि फोड़ा फूट जानेपर जरा राहत मिलती है; लेकिन, उनको यह मालूम नहीं है कि स्वस्थ शरीरका क्या आनन्द होता है? शरीरका स्वास्थ्य दूसरी चीज है और फोड़ेका दर्द मिटनेका आनन्द दूसरा है। बिलकुल दूसरा है। यदि फोड़ेमें पानी भर गया हो, तो उसको निकाल देनेपर जो आराम मिलता है, वह दूसरी चीज है और स्वस्थ शरीरका आनन्द एक दूसरा आनन्द है। यह जो साधनाका आनन्द है, वह स्वास्थ्यका आनन्द है।

कहते हैं—'भाई! बचपनसे हमारी आदत पड़ गयी है।' अरे! आदत पड़ गयी है, तो डालनेसे ही तो पड़ी है।

**आबाल्याद् अलम्अभ्यस्तैः शास्त्र-सत्संगमादिभिः।**

यदि बालकपनेसे तुमने शास्त्रका और सत्संगका अभ्यास नहीं किया है, तो कोई हर्ज नहीं है। आजसे शुरू करो। आपके जीवनका शुभ दिन आज है। आपकी साधनाके मङ्गलाचरणका दिन आज है। शुभ संकल्प धारण करनेका दिन आज है। आजसे ही कहो कि हम बुराई छोड़ते हैं। अभीसे ही कहो।

**गुणैः पुरुषयत्नेन। सौरथः सम्पद्यते हितः।**

आओ! आप गुणको धारण करके और प्रयत्न करो। आप जो चाहते हो, सो मिलेगा। आप वासनाकी परतन्त्रता-वासनाकी गुलामी मत स्वीकार करो।

**पारतन्त्र्यनिवारणाय स्वोत्साहसम्पादितो**
**मनोवाक् कायजन्यः पुरुषव्यापारोऽपेक्षितः।**

जीवन्मुक्ति-विवेकका कहना है कि इस परतन्त्रताको मिटाना है। डट जाओ। जैसे आजका जवान बालक अपने माँ-बापके सामने डट जाता है,

वैसे तुम अपने मनके सामने डट जाओ कि 'हम तो यही करेंगे। तुम क्या करोगे?' है न? मनके सामने उत्साहके साथ डट जाओ कि हमको सफलता मिलेगी। मन तो हमारा गुलाम है।

एक कोतवाल शराब पीकर पागल हो जाता था! उस पागलपनकी दशामें वह थानेसे बाहर निकलनेकी कोशिश करता था। अतः उसने होश-हवासमें अपने सन्तरीको-पहरेदारको हुक्म दे रखा था कि 'यदि हम शराबके नशेमें कोतवालीसे बाहर जाना चाहें, तो तुम हमको रोक लेना!' पहरेदार बोला-'यह कैसे हो सकता है? आप मालिक हैं। मैं तो नौकर हूँ।' कोतवाल बोला-'कुछ नहीं। तुम हमको रोक लेना। यही हमारा हुक्म है।' अब पहरेदारको हुक्मका पालन करना ही था। जब आप पागल हो जाते हैं, तब आपको नौकरकी अधीनता कबूल करनी पड़ती है। जब होश-हवासमें रहते हैं, तब आपको नौकरके वशमें होनेकी क्या बात है? आप मनके हैं कि मन आपका है? यह तो असम्बन्धमें ही सम्बन्धकी कल्पना हुई है।

तीन बातें आपके ध्यानमें रखने लायक हैं। साक्षी आत्मा जो है, वह असङ्ग है। यह साधनकी बात है भला! असङ्ग है माने यदि दूसरे लोग उसके साथ चिपकना चाहते हैं, तो भी चिपक नहीं पाते हैं। वह तो किसीके साथ चिपकता ही नहीं है। यहाँ तक कि गाढ़ सुषुप्तिमें भी। आज आरामकी नींद आयी। आज नींद तो आयी; परन्तु, गाढ़ी नहीं आयी। निद्राके इन भेदोंको भी साक्षी देखता है। सुषुप्तिके भेदोंको भी साक्षी देखता है। उनमें-से किसीको पकड़ता नहीं है। हमेशा असङ्ग रहता है। जब हमारे अन्तःकरणकी वृत्तियोंमें साक्षीकी असङ्गता जाहिर होती है-प्रतिबिम्बित होती है, तब वैराग्य हो जाता है। हमारी वृत्तियोंमें राग-द्वेष नहीं रहता है। जबतक वृत्तियोंमें कर्म-संस्कारकी प्रधानता है, तबतक राग-द्वेष है। जब वृत्तियोंमें असंग साक्षीकी प्रधानता होती है, तब वैराग्य हो जाता है। वैराग्य माने राग-द्वेषकी शिथिलता रहती है। यह हमारा-शास्त्रका पारिभाषिक शब्द है। जब अन्तःकरणमें वैराग्य हो गया माने राग-द्वेषकी न्यूनता हो गयी, तब व्यवहारमें समता आगयी। शत्रु-मित्रके प्रति समता आगयी। व्यवहारमें समता, अन्तःकरणमें वैराग्य और स्वरूपमें साक्षिता। साक्षिताके ये तीन स्तर हैं।

यदि आप व्यवहारमें विषम हो माने मित्रका पक्षपात करते हो और शत्रुको मारते हो, तो आपके चित्तमें राग-द्वेष है। यदि आपके चित्तमें राग-द्वेष है, तो आप साक्षी नहीं हैं। साक्षी सच्चा नहीं है। यह कूट साक्षी है। यह झूठा गवाह है। यह तो पक्षपाती है। यह रागका पक्षपाती है या द्वेषका पक्षपाती है। जो पक्षपाती होता है, वह साक्षी नहीं होता है। इसीसे, जब कोई गवाही देता है, तब कहते हैं कि यह उनके रिश्तेदार हैं; यह तो उनसे पैसा लेकर उनसे मिले हुए हैं। साक्षी निष्पक्ष होना चाहिए। उसका नाम 'ब्लैक लिस्ट'में नहीं होना चाहिए; अन्यथा, उसकी साक्षिता नहीं मानी जायेगी।

देखो! एक बात सुनाते हैं। बात कहनेकी है या नहीं है, यह तो हम नहीं जानते हैं। हमारे एक मित्र हैं। वह 'सी.आई.डी.' (CID)के बहुत बड़े अफसर हैं। सारे देशके गुप्तचर विभागके बहुत बड़े अधिकारी पुरुष हैं। एक दिन उन्होंने हमसे प्रश्न किया कि 'महाराज! सत्सङ्ग करनेसे चोरी-बेईमानी करनेमें कुछ फरक पड़ता है कि नहीं?' हमने कहा कि 'भाई! सत्सङ्ग करनेसे फरक तो पड़ता है।' अब उन्होंने हमको नाम बताया कि 'देशमें अमुक व्यक्ति सत्सङ्गीके रूपमें बहुत विख्यात है; लेकिन, उसका नाम तो हमारी ब्लैककी लिस्टमें लिखा हुआ है। वह चोरीका माल विदेशोंसे मँगाता है और चोरीसे भेजता भी है। तो, स्वामीजी! वह है तो बहुत नामी सत्सङ्गी; परन्तु, हमारी ब्लैक लिस्टमें भी उसका नाम 'टॉप' (TOP) पर लिखा हुआ है। इसलिए, मेरे मनमें यह सवाल उठता है कि सत्सङ्ग करनेसे चोरी-बेईमानी करनेमें कोई अन्तर पड़ता है कि नहीं पड़ता है?' अब देखो भाई! सत्सङ्गका इतना फल तो होना चाहिए न? जब आप साक्षी हो, द्रष्टा हो, असङ्ग हो, तब राग-द्वेषका पक्षपात कहाँसे आया? जब आप राग या द्वेषके पक्षमें हो जाते हैं, तब आप साक्षी नहीं होते हैं।

*एवं पुरुषकारेण।* वाणीसे पौरुष करो। वाणीमें तीन गुण होने चाहिए। आपके ध्यानमें यह बात रहे। एक-वाणी हमेशा सत्य हो। दूसरा-अपनी समझसे मेल खाती हो। तीसरा-आनन्ददायक हो। हितकारी हो। ऐसे कहो। आप सच्चिदानन्द हैं। अतः आपकी वाणी भी सच्चिदानन्द हो। जब आपकी वाणी बोलती है, तब स्वतन्त्र होकर नहीं बोलती है। जब आप वाणीसे मिलकर बोलते हैं, तब आपके गुण आपकी वाणीमें आने चाहिए।

आप हैं सत्। अतः आपकी वाणी हो सत्। आप हैं चित्-ज्ञान। अतः आपकी वाणीमें हो समझदारी। आप हैं आनन्द। अतः आपकी वाणीमें हो हित। आपका सच्चिदानन्द वाणीके द्वारा जाहिर होना चाहिए। यदि आपकी वाणीमें हित नहीं है; लेकिन, समझदारी है और सच है, तो वह दुश्मनको बरगलानेके लिए भी हो सकती है। यदि आपकी वाणीमें समझदारी नहीं है; लेकिन, सत्य है और हित है, तो आप अपने मित्रका भी नुकसान कर सकते हैं। यदि आपकी वाणीमें सत्य नहीं है; लेकिन, समझदारी है और हित है, तो आप कबतक उसको पर्देके अन्दर ढककर रख सकते हैं? *मनोवाक्काय-जन्यः पुरुष-व्यापारो अपेक्षितः।* आपके मनमें सच्चिदानन्द हो। आपकी वाणीमें सच्चिदानन्द हो। आपके शारीरिक व्यापारमें-आपके व्यवहारमें सच्चिदानन्द हो।

देखो! यदि आपका जीवन शुभवासनाके अनुसार चल रहा है, तो धन्यवाद है। यदि अशुभ वासना आपको संकटमें ले जाती है, तो आपको उसपर विजय प्राप्त करना चाहिए। आपको तो ऐसे साधुओंके बारेमें बहुत ही ज्यादा मालूम है, जो अच्छे कपड़े पहनते हैं; बाल-वाल बनवाते हैं; और, चिकने-चुपड़े होकर आपलोगोंके बीचमें सिंहासनपर बैठते हैं। अब बाहरसे तो वे बहुत चिकने-चुपड़े हैं; लेकिन, भीतरसे वे कैसे हैं? यह कौन बतावे? हम आपको गङ्गा-किनारेके साधुओंके बारेमें बताते हैं। आप डरना नहीं। उन्होंने देखा कि मुर्दा बहा जा रहा है। तो, वे गंगाजीमें कूद पड़ते हैं और मुर्देको पकड़ लेते हैं। मुर्देके ऊपर जो कफन लिपटा हुआ होता है, वह निकाल लेते हैं और मुर्देको बह जाने देते हैं। उसी कफनको—कपड़ेको गंगाजीमें धो लेते हैं और अपनी लंगोटी बना लेते हैं। उनको किसीसे लंगोटीके लिये कपड़ा माँगनेकी जरूरत नहीं पड़ती है। ऐसे साधु गंगा-किनारे बैठते हैं। ऐसे साधु होते हैं भला! मुर्देको छोड़ दिया और कपड़ेको ले लिया। कपड़ेको धो डाला और लंगोटी बना ली। वासना नदीमें मुर्दे बहते हैं। आपकी वासनाकी नदीमें जो सड़नेवाला दुर्गन्धित मुर्दा है, उसको छोड़ दीजिये। *वासना माने वही।* उसमें भी वास ही है। कपड़ेमें भी जो वास लगी हुई है, उसको धो डालिये। आपकी वासना नदीमें अच्छाई और बुराई—दोनों बहती हैं। आप अच्छाई ले लीजिये और बुराईकी उपेक्षा कर दीजिये।

जब बच्चा मिट्टी खाता है, तब आप उसको लड्डू दिखाते हैं कि नहीं? 'अरे बेटा! खानेकी चीज तो लड्डू है। मिट्टी खानेकी चीज नहीं है।' यदि बच्चा हीरा उठा करके बाहर फेंक रहा हो, तो आप उसको झुनझुना, गेंद लाकरके देते हैं कि नहीं देते हैं? बच्चेको अशुभ वासनाकी ओरसे हटाकर शुभ वासनाकी ओर ले आना चाहिए। इसको लानेकी युक्ति क्या है? गुस्सा नहीं है।

**समता सान्त्वनाय रागयति शनैः शनैः।**
**पौरुषेण प्रयत्नेन लालयेत् चित्तबालकम्।।**

यह आपका मन बच्चेकी तरह खेलता है। चित्त रूपी बच्चेको लाड़ देना चाहिए। वह लाड़ कैसा देना चाहिए? गुस्सा न करके उसको धीरे-धीरे समझाना चाहिये और उसको अच्छे काम करनेका अभ्यास डालना चाहिये। नारायण! यह मनको शुभ वासनाकी ओर-शुभ कर्मकी ओर लानेकी युक्ति है।

एक दिन मैं 'टेलीविजन' (Television) का कारखाना देखने गया था। सेठ लोग हमारे प्रेमी हैं। बड़े प्रेमसे टेलीविजन बनाते हैं। टेलीविजन कैसे बनाया जाता है? यह दिखानेके लिए वे हमें अपने कारखानेमें ले गये। पहले तो हमको हिला-डुला-उठा-चलाकर टेलीविजनपर हमारी फोटो-वोटो ले ली और फिर तमाशा दिखाया। हमने अपना ही तमाशा देखा। हमारा तो ख्याल नहीं था कि ऐसा हो जायेगा। जैसे मैंने हाथ हिलाया, जैसे मैंने जीभ हिलायी, जो मैं बोला, वह सब-का-सब मैंने टेलीविजनपर देखा। अपना हाथ हिलाना भी देखा। अपना सिर हिलाना भी देखा। अपनी बोली भी सुनायी पड़ी। हमारा चश्मा जो है ना, वह कभी-कभी हम आँखकी जगह दिमागपर लगा लेते हैं। आपको मालूम है? ऐसे कर लेते हैं। अब वह चश्मा मैंने ऐसा लगाया, तो टेलीविजनपर वैसा ही दिखाया। अच्छा! जब वह कारखानेमें भीतर ले गये, तो लड़कियाँ-ही-लड़कियाँ। और, वे तार-पर-तार, तार-पर-तार जोड़ती चलीं गयीं। वह एक मशीन दस जगह घूमती है। एक तार एक लड़की जोड़ती है। दूसरा तार दूसरी लड़की जोड़ती है। तीसरा तार तीसरी लड़की जोड़ती है। उन लड़कियोंपर यह तार जोड़नेकी जिम्मेवारी है। मैंने उस सेठसे पूछा बच्चा है अपना पन्द्रह

वर्षका था, तबसे हमारी जान-पहचानका है। मैंने पूछा–'तुमने इस काममें लड़कियोंको क्यों जोड़ रखा है?' उसने कहा–'महाराज! हमारा यह अनुभव है कि जब लड़कोंको एक ही काम बार-बार करना पड़ता है–एक ही तार जोड़ना पड़ता है, तब वह थोड़ी देरके बाद 'बोर' (Bore) हो जाते हैं और गड़बड़ करने लग जाते हैं। तो लड़कियाँ होती हैं, उनको सीने-पिरोनेका ऐसा अभ्यास होता है कि वह बारम्बार एक ही काम करनेपर भी बोर नहीं होती हैं। जैसे कपड़ेमें बखिया करते हैं–सुई गड़ाना और उधेड़ना। एक ही तार बार-बार जोड़नेका उनको ऐसा अभ्यास हो जाता है कि देखती हैं दूसरी तरफ, बात करती हैं दूसरेसे, हँसती जाती हैं और हाथ मशीनको उठाकर बिलकुल ठीक-ठीक जगहपर अपना तार जोड़ देती हैं। इनसे गलती ही नहीं होती है। इनका मन इस धारामें बह जाता है। एकाग्र होकर एक काम करनेमें लड़कियाँ जितनी निपुण होती हैं, उतने लड़के नहीं होते हैं।' टेलीविजनके कारखानेके मालिकने हमको ऐसा बताया। नारायण! आपको इस काममें–यह मनकी मशीन जोड़नेमें थोड़ा लड़की बनना पड़ेगा। बारम्बार-बारम्बार-बारम्बार-बारम्बार। देखो! फिर कैसी आदत बनती है? अच्छा! अब फिर कल सुनावेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 10

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!**

'जीवन्मुक्ति' माने जीवित पुरुषके जीवनमें हर्ष-शोकका न होना- अत्यन्त शिथिल हो जाना। **तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।** जो लोग **विजानतः** और **अनुपश्यतः**को जानते हैं, वे जानते हैं कि यह वर्तमान जीवनकी चर्चा है। संस्कृत व्याकरणके अनुसार **आत्मैवाभूत् व्यजानतः। एकत्वं अनुपश्यतः।** ये वर्तमान कालके सम्बन्धमें प्रयोग हैं। शोक-मोहपर कः करके आक्षेप किया गया है। जीवित दशामें ही क्या शोक है? क्या मोह है? कब? जब एकत्वका दर्शन हो गया।

हम प्रायः जिस ब्रह्मज्ञानका-तत्त्वज्ञानका निरूपण करते हैं, वह तो सिद्ध वस्तुका निरूपण है। सिद्ध माने ठीक वस्तुका स्वरूप ही वही है। वह तुम जानते हो, तब भी वही है और नहीं जानते हो, तब भी वही है। यहाँ तक कि वह अनुभाव्य भी नहीं है। माने अनुभवका विषय भी नहीं है। हमारे दुनियादार लोग तो इस बातको सुनकर घबड़ा जायेंगे। वे कहेंगे-'जब अनुभवका विषय ही नहीं है, तब क्या खाक है?' अरे! वह अनुभविता भी नहीं है। माने वह अनुभव करनेवाला भी नहीं है। तब वह क्या है? अनुभवका विषय और अनुभव करनेवाला-दोनों जिसमें आरोपित हैं, ऐसा अनुभव स्वरूप है। **आरोपितं निषिध्यते।** नेति-नेतिके द्वारा। असलमें, सिद्ध वस्तुका निषेध नहीं हो सकता है। जो चीज है, उसका निषेध नहीं हो सकता है। जो वस्तु झूठमूठ भ्रान्तिसे मानी हुई होती है, उसीका निषेध होता है। अच्छा! यदि वह सिद्ध वस्तु दूसरी हो, तो श्रवण-मननके बाद भी उसको पानेके लिए प्रयास करना पड़ेगा। वह सिद्ध वस्तु अपना स्वरूप ही है। अतः उसको जाननेके बाद कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है।

जीवन्मुक्ति सिद्ध वस्तु नहीं है। यह साध्य वस्तु है। यह साधनाके द्वारा सम्पन्न होती है। इस स्थूल शरीरमें प्रायः रोग रहते हैं। मनमें कभी-कभी आते हैं। स्वरूपमें कोई रोग नहीं होता है। अगर आजकलका भौतिक

शरीरका कोई डाक्टर यह कहे कि हम शरीरके रोगकी तो दवा कर देते हैं; परन्तु, मनमें रोग रहना तो स्वाभाविक है, तो ऐसा समझना कि वह स्थूल शरीरका तो डाक्टर है; लेकिन, मनका डाक्टर नहीं है। अब यदि वह कहे कि आत्मामें ही कोई रोग है, तब तो हे भगवान्! उसने उपनिषद्का-वेदान्तका कभी श्रवण ही नहीं किया है। उसके चित्तमें कोई संस्कार ही नहीं है। आध्यात्मिक साधनाके सम्बन्धमें भौतिक शरीरके और मनोविज्ञानके डाक्टरकी सलाह नहीं चलती है। वह एक गलत बात है।

जीवन्मुक्ति साध्य है। साध्य है माने साधनके द्वारा की जाती है—जीवनमें बनायी जाती है। इसमें सहारा है-तत्त्वज्ञानका। माने एक सच्चाईके आधारपर यह मूर्ति गढ़ी गयी है। एक सच्चाईको जाहिर करने के लिए जीवन्मुक्तिकी तस्वीर गढ़ी गयी है। अब यदि हम आपको स्वर्गका लालच देकर आपसे कोई काम करावें, तो आप यज्ञशालामें कब तक बैठेंगे? यदि हम आपको वैकुण्ठका लालच देकर आपसे कोई काम करावें, तो आप कब तक नाचोगे-गाओगे? उससे वैकुण्ठ मिलेगा? यदि हम आपको समाधि-सुखका लालच दें, तो आप कब तक प्राणायाम-प्रत्याहार करोगे? देखो! जीवन्मुक्तिका अर्थ होता है कि यह केवल समाधि-कालमें ही नहीं रहती है, जाग्रत्कालमें भी रहती है। यह केवल सुखमें नहीं रहती है, दुःखमें भी रहती है। यह केवल स्वर्गमें नहीं रहती है, नरकमें भी रहती है। यह केवल वैकुण्ठमें ही नहीं रहती है, मर्त्यलोकमें भी रहती है। यह केवल सृष्टिके अभानमें ही नहीं रहती है, भानदशामें भी रहती है।

जीवन्मुक्तिका अर्थ है—बिलकुल नगद माल। सिद्ध वस्तु तो वह है, जिसको सुनने-समझनेके बाद न दूसरेके लिए कुछ करना है, न अपने लिए कुछ करना है। न ईश्वरके लिए कुछ करना है और न कुछ पाना है। सिद्ध वस्तु तो ज्ञान-मात्रसे ही उपलब्ध है। उसमें केवल एक बार महावाक्य प्रमाणसे जनित प्रमाका उदय हुआ और भ्रान्ति निवृत्त हुई। वह तो बात ही दूसरी है। अब रही बात—जीवन्मुक्तिकी साधना की। आपको व्यापारमें सफलता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। रोग निवृत्तिके लिए दवा करनी पड़ती है। आपको यह तो मालूम होगा कि हम लोग रोज-रोज जो भोजन करते हैं न—रोटी-दाल-चावल-सब्जी, इनको भी संस्कृत

भाषामें औषधि बोलते हैं। जौ भी औषधि है। गेहूँ भी औषधि है। मूँग भी औषधि है। उड़द भी औषधि है। शरीरमें क्षुधाका रोग लगा हुआ है। अतः उस रोगकी निवृत्तिके लिए रोज-रोज चनेकी-गेहूँकी गोली पीस-पीसके, पका-पकाके खानी पड़ती है। यदि आप कहो कि हम क्षुधा-निवृत्तिके लिए प्रयास नहीं करेंगे, तो बात बनेगी? नहीं! भोजन आपकी वासना-पूर्तिके लिए नहीं है। भोजन आपकी भोग-पूर्तिके लिए नहीं है। यदि आप वासनापूर्ति और भोग-पूर्तिके लिए भोजन करने लगोगे, तो आपको रोग और अधिक हो जायेगा। आपके शरीरमें निर्बलता नहीं आवे, रोग नहीं आवे, इसके लिए भोजन करना पड़ता है। जीवन्मुक्तिकी साधना माने बिलकुल नगद माल। शोक और हर्षसे मुक्ति।

**हर्षशोकौ जहाति।**

संस्कृतमें 'जहाति' पदका भी बड़ा सुन्दर अर्थ है।

हम नर्मदा किनारे हँडियाके उस पार 'आत्माराम बाबा'की समाधिका दर्शन करने गये थे। लोगोंने बताया कि बाबाको १०४ डिग्री बुखार आया हुआ था। शरीर थरथर काँप रहा था। इसी बीचमें एक फकीर मिलनेके लिये आ गये। लोगोंने कहा कि 'आपसे मिलनेके लिए साधु-फकीर आये हैं।' उन्होंने झट अपना ओढ़ा हुआ कम्बल उतारकर अलग रखा और खड़े हो गये। बड़े प्रेमसे स्वागत-सत्कार करने लगे। फकीरने देखा कि वह कम्बल, जो उतार- कर अलग रखा हुआ है, थर-थर, थर-थर काँप रहा है। फकीरने पूछा—'यह क्या है?' बाबाने कहा—'मैंने अपने बुखारसे कह दिया कि जब तक मैं इस फकीरसे बात करता हूँ, तब तक तुम कम्बलमें रहो। तो, कम्बलमें बुखार है और मैं आपका सत्कार कर रहा हूँ।' अब यह चमत्कारकी बात है। वहाँ लोगोंने हमको ऐसे सुनाया था।

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**

यह जो सांसारिक घटनाएँ हैं, उनको आप इस शरीर रूपी कम्बलके साथ जोड़ दें। स्वयं इससे अलग होकरके—अपने चित्तसे हाथ जोड़ करके ईश्वरके सामने हो जायें या निष्क्रिय होकरके परमात्माके साथ एक हो जायें। देखो! भले यह शरीरका कम्बल काँपता रहे; लेकिन, आप इस बुखारसे छूट जायेंगे। यह शरीर छोड़नेका अभ्यास भी कैसा होना चाहिए?

*दास कबीर जतनसे ओढ़ी,*
*ज्यों-की-त्यों धरि दीनि चदरिया।*
*झीनी-झीनी बीनी चदरिया।*

तो, ज्यों-की-त्यों धरि दीनि चदरिया। आप स्थूल शरीरके साथ चिपके हुए–आसक्त नहीं हैं। आप सूक्ष्म शरीरके साथ चिपके हुए–असक्त नहीं हैं। तब, गलती कब होती है? जब आप शरीर रूपी कम्बलको उतार कर अलग नहीं रखते हो और उसके काँपनेपर स्वयं भी काँपने लग जाते हो। आप स्वयं को असंग साक्षी–स्वरूप जानो-समझो और अनुभव करो।

आपको एक बात सुनाते हैं। एक बार हमलोग सारे हिन्दुस्तानमें तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेनमें घूम रहे थे। हम कोई चार बार तीर्थयात्रापर गये हैं और प्रत्येक बार कोई तीन-तीन महीने रेलगाड़ीमें अपना समय बिताये हैं। खाना-पीना-सोना-रहना। सब-का-सब रेलगाड़ीमें। सोते कहीं रेलगाड़ीमें और जागते कहीं रेलगाड़ीमें। 'श्रीनाथद्वारा'में गाड़ी पहुँची। वह तो स्टेशनसे दूर है। मोटरसे वहाँ गये थे। एक धर्मशालामें सब लोग ठहरे। वहाँसे प्रातःकाल 'एकलिंगनाथ'का दर्शन करनेके लिए बसोंसे जाना था। फिर 'उदयपुर' जाना था। 'काकरोली' जाना था। यात्री लोगोंने क्या किया कि रातको तो वहाँ खूब खाया-पिया। धर्मशालामें सोये। वह झूठी पत्तल-कुल्हड़-गन्दगी सारी-की-सारी धर्मशालामें छोड़कर सबेरे अपना बोरिया-बिस्तर बँधना लेकर बसपर बैठनेके लिए पहुँच गये। अब न तो 'शुकदेवानन्दजी' आये और न 'भजनानन्दजी' आये। सब-के-सब यात्री बसमें बैठे हुए हैं। आदमी भेजा गया कि वह लोग आते क्यों नहीं हैं? अब तक धर्मशालामें ही क्यों हैं? मालूम हुआ कि यात्री लोग जो अपनी झूठी पत्तल-कुल्हड़ और गन्दगी धर्मशालामें छोड़कर आये थे और जहाँ-तहाँ थूक कर आये थे-पिशाब कर आये थे, दोनों महामण्डलेश्वर-शुकदेवानन्दजी और भजनानन्दजी यात्रियोंकी वह झूठी पत्तल-कुल्हड़ वहाँसे उठा-उठाकर फेंक रहे थे और पानी डाल-डाल कर थूक-पिशाब और सब गन्दगी धो रहे थे। जब यह खबर यात्रियोंके पास पहुँची, तब बिचारे बससे उतरकर फिर दौड़े-दौड़े उसी धर्मशालामें आये और बोले-'महाराज! अपराध हुआ। हम लोग सफाई करते हैं।'

नारायण! वृत्तियाँ कभी सो जाती हैं और कभी काम करती हैं। आप न सोते हैं, न काम करते हैं। आप, सचमुचमें, साक्षी हैं, आपका इन वृत्तियोंके साथ, सचमुचमें, कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा! 'Divorce' (डाइवोर्स) एक असली होता है और एक नकली होता है। यह आप लोगोंको मालूम होगा। पाँच लाखकी सम्पदा हमारी पत्नीके पास रहे और पाँच लाखकी सम्पदा हमारे पति के पास रहे। इसके लिए दोनों अदालतमें नकली डाइवोर्स ले लेते हैं। दोनों पति-पत्नी अलग-अलग हो जाते हैं। पत्नीके पास भी पैसा और पतिके पास भी पैसा। परस्पर मिलते हैं-जुलते हैं, प्रेम करते हैं; लेकिन, पैसा बचानेके लिए दोनों अपने आपको अलग-अलग कर लेते हैं। आपका मन कामोपभोग करे, क्रोध-हिंसा करे, लोभ-बेईमानी-तस्करी करे--इसके लिए यदि आप कूट साक्षी बनते हैं, तो यह आपका मनके साथ नकली डाइवोर्स है। असली डाइवोर्स नहीं है। जब आप कामोपभोगमें मनका साथ देते हैं, तब आप अपने मनके गवाह नहीं माने जा सकते। आप मनकी की हुई चोरीके बेईमानीके-कामके-क्रोधके-लोभके जिम्मेवार ठहराये जायेंगे; क्योंकि, आप साथ मिल करके भोग करते हैं, हिंसा करते हैं, बेईमानी करते हैं, चोरी करते हैं। पहली बात तो यह है कि आप अपनी मनोवृत्तियोंको यदि छोड़ना भी चाहते हैं, तो उनको पवित्र कर लें। दूसरी बात यह है कि आप अपने स्वरूपको जानकर अपनी मनोवृत्तियोंको छोड़ते हैं कि बिना जाने छोड़ते हैं? यदि अपने असंग स्वरूपको जानकर छोड़ते हैं, तब तो असली डाइवोर्स होगा--असली तलाक होगा। यदि आप अपने साक्षी स्वरूपको जाने बिना ही छोड़नेकी भावना करते हैं, तो आप भावनाके कर्त्ता हो जाते हैं।

असलियतके ज्ञानमें और भावनामें क्या फर्क है? इसको आप समझ लें। आपको सचमुच कुछ करना पड़ता है और कुछ भोगना भी पड़ता है। इस बातपर आपका ध्यान नहीं जाता है। जिस समय आधे घण्टेके लिये आप अपने साक्षित्वको जगाते हैं, उस समय आधे घण्टेके पहले साक्षीकी भावना नहीं थी और आधे घण्टेके बाद भी साक्षी की भावना नहीं रहती है। यदि भावना कालमें आपका साक्षीपना जाग्रत् होता है, तो वह विनश्वर हो गया। असलमें, आप ऐसे साक्षी हैं, जिसमें आधे घण्टेकी जरूरत नहीं है।

कालकी कल्पनासे साक्षी निराला है। इस शरीरमें बैठकर हम साक्षी हैं और ये चोर-बेईमान सब-के-सब दुनियामें कर्त्ता-भोक्ता हैं। ऐसे नहीं होता है। साक्षी हैं, तो सब हैं, केवल तुम्हीं नहीं हो। हृदयके एक कोनेमें बैठकर मैं साक्षी हूँ। एक शरीरसे मैं साक्षी हूँ। एक कालमें मैं साक्षी हूँ। कुछ न करनेका तो मैं साक्षी हूँ और करनेमें करनेवाला हूँ। यह जो आप अपने साक्षीपनेको कालसे, स्थानसे, हृदय रूप उपाधिसे, व्यक्तित्वसे, क्रियासे, निष्क्रियतासे, भावनासे जोड़ते हैं, वह असली साक्षीपना नहीं है। जहाँ आप अपने आपको साक्षी बना लेते हैं, वहाँ वह साक्षिता जो है, वह नकली साक्षिता है। असली साक्षीपनेके लिए कुछ थोड़ा-सा ज्ञानके आधारपर तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय और मनोनाश-तीनोंका सम समयमें और युगपद् अभ्यास होना चाहिए और वह भी ईमानदारीसे।

आप दूसरोंको धोखेमें डाल सकते हैं कि 'भाई! हम तो गवाह हैं। बेटेसे हमारा क्या रिश्ता है?' हाँ! नारायण! ऐसे कह देते हैं। कई बार कई मिनिस्टरोंकी चर्चा आयी कि उनका बेटा बेईमानीमें या ब्लैकमें पकड़ा गया, तो उन्होंने कह दिया कि 'भाई! अब हमारा बेटेसे कोई रिश्ता नहीं है।' वे कानूनी तौरपर छूट जाते हैं। देखो! उनका बेटेके साथ भीतर-भीतरका जो रिश्ता बना हुआ है, उसके बारेमें वे जनताको धोखा दे सकते हैं, कानूनको धोखा दे सकते हैं, सरकारको धोखा दे सकते हैं; लेकिन, अपनी अन्तरात्माको धोखा नहीं दे सकते हैं। वे बेटेके साक्षी नहीं हैं। वे तो बेटेके साथ मिले हुए हैं और उसके लाभ-हानिमें जिम्मेवार हैं भला! जैसे मिनिस्टर लोग—चाहे पुराने, चाहे नये—कानूनी ढंगसे या दूसरोंकी नजरसे अपनेको बचानेकी कोशिश करते हैं, वह बात दूसरी है और ईमानदारीके साथ उससे अलग रहना—अलग्र रहना, वह दूसरी बात है। जिस समय यह अलगावका चिन्तन होता है, उस समय एक तो खोज ठण्डी पड़ने लगती है और दूसरा यह आलस्य आता है कि इसमें-तो कुछ करना ही नहीं है। खोजकी कमी और आलस्य। अपने साक्षीपनेके जाग्रत् रहनेमें विघ्न बताता हूँ। आप ध्यान रखो।

अब तो हम जान गये कि हम साक्षी हैं, तो खोज छूट जाती है। जब यह अन्वेषण, अनुसन्धान, शोध, खोज, जिज्ञासा शिथिल पड़ने लगती है,

तब समझना चाहिए कि बुढ़ापा आगया। *'अरे बुढ़ापा! तोरे मारे हम नकियाय गयेन।'* नारायण! यह बुढ़ापाको मरने दो और नये स्वर जगने दो। नये स्वरका जो संगीत है, उसे गूँजने दो। लोगोंकी उमर चार सौ वर्ष हो जाये, इसकी कोशिश मत करो। नयी प्रतिभा, नयी सूझ, नया स्वर वर्तमान परिस्थितिके अनुसार अभिव्यक्त होने दो। हाँ! यदि आपकी खोज-अनुसन्धान-अन्वेषण-जिज्ञासा शिथिल पड़ती है, तो समझना कि आपकी प्रगतिमें रुकावट आगयी है। यदि आप सोचें कि क्या रखा है साक्षी बनकर बैठनेमें? तो आलस्य आ गया हो! प्रमाद और आलस्यमें फर्क होता है। हम आपको शब्दोंका अर्थ बता देते हैं। किसीके लिए एक ग्लास पानी लेनेके लिए कमरेमें गये और ख्याल ही नहीं रहा कि हम पानी लेनेके लिए आये हैं। इसका नाम 'प्रमाद' है। अच्छा! याद तो रहा कि पानी पिलाना है। फिर सोच लिया कि अभी इतनी जल्दी क्या है? थोड़ा-सा कुछ और काम कर लें। पाँच-मिनट, दस-मिनट बाद ही पिला देंगे। इसका नाम 'आलस्य' है। इस प्रकार, अपने साक्षीपनेके जाग्रत् रहनेमें दो विघ्नोंपर आप ध्यान रखो। जिज्ञासाकी कमी और आलस्यका आना। आलस्य अर्थात् साधनमें रस न आना। कुत्तेको जहाँ रोज रोटी मिलती है, वहाँ समयपर पहुँच जाता है। चिड़ियोंको जहाँ रोज चारा मिलता है, वहाँ समयपर चुगनेके लिए पहुँच जाते हैं। अगर तुम्हारे मनको साधनमें रस मिलता है, तो वह आलस्य कैसे कर सकता है? यदि आपको अपनी प्रेयसीसे-प्रेमिकासे कहीं मिलना हो, तो कितनी जल्दी नींद टूटेगी! देखो! यह आलस्य वहाँ आता है, जहाँ लस नहीं होता। लस माने रस, ल और र एक ही है। अलस माने अरस। आलस्य माने अलसपने-अरसपनेका भाव। आलस्य वहाँ आता है, जहाँ आपको स्वाद नहीं आता है।

अच्छा! एक और बात देखो! जब आप साक्षी होकर बैठते हैं, तब एक गहरा दोष आनेकी सम्भावना रहती है। वह क्या? मनमें जो यह भोगकी इच्छाएँ होती हैं, वह तो मनमें होती हैं। मुझ साक्षीके साथ तो इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यदि यह मन भोग करे, तो इसमें क्या हानि है? आपको क्या बताया? खोजकी कमी और अभ्यासमें आलस्यका उदय। यदि मनमें भोगकी लालसा रहती है, तो रहने दो। एक और होता है। भजन करनेके लिए

बैठते हैं और नींद आ जाती है। हमारे एक महात्मा थे। उनका पेट जरा बड़ा था। उड़ियाबाबाजीके सामने ही बैठे-बैठे पेटपर ऐसे लटक जाते थे और उनकी साँस खर्र-खर्र चलने लगती थी। कभी-कभी मुँहसे पानी भी गिरने लगता था। उड़ियाबाबा कहते-'अरे गणेश! क्या कर रहा है?' वे झट सावधान होकर बैठ जाते और कहते-'महाराज! थोड़ी देर समाधि लग गयी थी।' यह जो घर्र-घर्र साँसका चलना है, वह क्या है? समाधिमें श्वासकी प्रक्रिया कहाँ होती है। मनकी एकाग्रतामें साँसकी गति धीमी पड़ती है। वह घर्र घर्र नहीं चलती है। अच्छा! और एक बात। यदि हम आपको समाधि और सुषुप्तिका फर्क बतलाने लग जायेंगे, तो बात दूसरी हो जायेगी। समाधिमें साँस बढ़ती नहीं है। नींदमें साँस बढ़ती है। समाधिमें भोजन पचता नहीं है। नींदमें भोजन पचता है। समाधिमें खून बहुत कम चलता है। नींदमें खून दौड़ता है। समाधिमें बाल बढ़ते नहीं हैं। सुषुप्तिमें बढ़ते हैं। यह बात पहचानमें आजाती है कि यह व्यक्ति साधन करते समय सो जाता है कि सचमुचमें समाधि लगती है। अच्छा! समाधि लगाते समय स्वाद आने लगता है, तब भोक्ता बन जाते हैं। तब साक्षी नहीं रहते हैं। और, एक शून्यताका आविर्भाव होता है, जिसमें आत्मसत्ता रहनेपर भी अप्रतीत-सी हो जाती है।

इन सब विघ्नोंसे बचकरके परमात्माकी ओर अग्रसर होनेके लिए-साधनके मार्गमें आगे बढ़नेके लिए प्रयास करना चाहिए। मृत-मुक्तिके लिए नहीं। सद्योमुक्तिके लिए। हमने एक महात्मासे पूछा कि 'महाराज! यह सब क्या मामला है? यह सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य। है न! यह सब क्या झगड़ा है? मुक्ति कितनी तरहकी होती है?' वह विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायके अनुयायी थे। भक्त थे। बड़े भक्त। उन्होंने कहा-'हम मुक्ति बहुत नहीं मानते हैं। एक ही मानते हैं। श्रीरामानुजाचार्यके मतमें एक ही मुक्ति है-सायुज्य। सायुज्यके सिवाय और कोई मुक्ति नहीं है।' वेदान्तियोंके मतमें क्रममुक्ति, सद्योमुक्ति, जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति-ये सब क्या गपड़चौथ है? जो असली-अच्छे वेदान्ती हैं, उनका कहना है कि मुक्ति माने सद्योमुक्ति। अविद्यानिवृत्तिसमकाल मुक्ति। एक ही मुक्ति है, जिसको कैवल्य बोलते हैं। चाहे व्यवहारमें रहें, चाहे व्यवहार मिट जाये; लेकिन, मुक्ति एक ही है और

वह है–आत्मा कैवल्य। कैवल्य–बोध नहीं। कैवल्य–बोध तो अविद्याकी निवृत्तिके लिए है। कैवल्य–बोध तो पैदा होता है और अविद्याकी निवृत्तिके करके मिट जाता है। कैवल्य जो है, वह मुक्तिका स्वरूप है। अविद्या-निवृत्तिसे उपलक्षित। अविद्याकी निवृत्तिका अधिष्ठान। अविद्याका जो अभाव है, वह अपने अधिष्ठान आत्मासे जुदा नहीं है। आत्म–स्वरूपमें ही बन्धकी अपेक्षासे मुक्ति नाम आरोपित है। आत्माके स्वरूपमें न बन्धन है और न ही मोक्ष है। बन्धन और मोक्षका भेद भी आत्मामें नहीं है।

अब आओ! पहली बात यह है कि धर्मशालाका यह कमरा छोड़ना है। यह सराय छोड़नी है। इस रोगको मिटाना है। तो, जरा साफ करके मिटाओ। इसको स्वच्छ करके–निर्मल करके मिटाओ। पहले अशुभ वासनाएँ निवृत्त होनी चाहिये। अच्छा! अगर आपके मनमें यह शंका हो कि अभी हमारी वासनाएँ निवृत्त हुईं कि नहीं, तो आपकी यह शंका ही आपके मनमें वासनाकी उपस्थितिका लक्षण है। अतएव, यदि मनमें शंका हो, तब भी अशुभ वासना मिटानेका प्रयास करना चाहिए। यदि आपको पाँच माला जप करना हो और पाँच माला पूरी होनेपर आपके मनमें यह शंका हो कि चार माला हुई कि पाँच माला हुई, तो आपको क्या करना चाहिये? आपको एक माला जप और कर लेना चाहिए। आपके मनमें चार माला होनेकी जो शंका है, वह तो मिट जायेगी और छठी मालाका जप हो जानेसे आपको कोई पाप तो लगेगा नहीं। वह तो और अच्छा काम हुआ। यदि सन्देह हो, तब भी आपको अच्छा काम करना चाहिए। यदि पाँच माला पूरी नहीं हुईं थीं, तो एक और करनेसे वह पूरी हो जायेगी। यदि पाँच मालाका जप पूरा हो चुका था, तो एक माला बढ़ा लेनेसे कोई दोष नहीं लगेगा।

एक बात और है। डाक्टरको डाक्टरी करनेके लिए डाक्टरके साथ रहना पड़ता है। केवल किताब पढ़नेसे या 'लेक्चर' (Lecture) सुननेसे वह डाक्टर नहीं हो जाता है। वकालत करनेके लिए बड़े वकीलके साथ रहकर काम करना पड़ता है। कानूनकी किताब पढ़नेसे या लेक्चर सुननेसे काम नहीं चलता है। व्यापार करनेके लिए भी बड़े व्यापारीका साथ करना पड़ता है।

अव्युत्पन्नमना यावद् भवान् अज्ञात ज्ञापकत्ववद्
गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर।
ततः तत्त्वकषायेण नूनं विज्ञातवस्तुना
शुभभोग्यसौक्तया त्याज्यौ वासनोभौ निराभिना।।

जबतक आपके मनमें परमात्मविषयक प्रतिभाका उदय नहीं हुआ है, तबतक आपको गुरु-शास्त्र प्रंमाणके द्वारा निर्णीत मार्ग से चलना चाहिए। प्रतिभा माने सूझ-बूझ हो उस गुरका मालूम पड़ जाना, जिसे गुरके अनुसार परमात्माके बारेमें विचार किया जाता है। देखो! परमात्माके बारेमें विचार करना कोई जंगलमें भटकना नहीं है। एक आदमीको इमली चाहिए थी। अब वह जंगलमें गया। इधर-उधर भटके कि इमलीका पेड़ कहा मिलेगा? मीलोंका जंगल। मालूम कुछ नहीं कि कहाँ मिलेगा? एक जानकार आया। उसने वहीं ले जाकर खड़ा कर दिया, जहाँसे वह चला था। वहीं इमलीका पेड़ था। जिस चीजको वह सारे जंगलमें भटककर ढूँढ़ रहा था, वह चीज तो वहाँ थी, जहाँसे उसकी यात्रा शुरू हुई थी, यात्राके अन्तमें वह चीज नहीं मिली। जहाँसे यात्रा शुरू हुई थी, वहीं वह चीज मिली। *गुरुशास्त्र-प्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर।* जो इसके गुरु लोग हैं—जानकार हैं और जो इसके सम्बन्धमें संविधान है, उसके द्वारा निर्णीत जो मार्ग है, उस मार्गसे चलना चाहिए। धीरे-धीरे अन्तःकरणके जो दोष हैं, वह परिपक्व हो जाते हैं।

देखो! जब कहाड़ीमें दूध औंटनेके लिए चढ़ाते हैं, तब उसके पहले उफान आता है। उस समय वहाँ रहना जरूरी होता है। उसपर थोड़ा पानी छिड़ककर और उसको थोड़ा चलाकर माने ऊपरसे उठाकर नीचे गिराकर धीरे-धीरे उसके उफानको पचाना पड़ता है। जब उफान पच जाता है, तब पानी डालनेकी जरूरत नहीं है और चलानेकी जरूरत नहीं है। माने उठाकर फिर गिरानेकी जरूरत नहीं है। तब आप शान्तिसे बैठ सकते हैं। परन्तु, फिर भी, ख्याल रखना पड़ता है कि कहीं जल न जाये। हाँ! नहीं तो धुँअरट जायेगा। ख्याल तो रखना ही पड़ेगा। यह जो दूधका ख्याल रखना है, वह तो साक्षी होकर बैठना है भला! लेकिन, कबतक? जब दूधमें उफान आना बन्द हो जाये, तब तक ख्याल रखना। सजग रहना। जबतक उफान आता

है, तबतक उपाय करो। उसमें ठंडे पानीका छींटा डालो। उसको ऊपर उठाकर नीचे धारके रूपमें गिराओ और जबतक गाढ़ा न हो जाये, तबतक उसको चलाओ। इसको बोलते हैं–दोषका पच जाना। आपके चित्तमें दोष हैं। उसमें उफान आता है। जब काम आता है, तब व्यभिचारकी ओर प्रवृत्ति होती है। जब क्रोध उफनता है, तब हिंसामें प्रवृत्ति होती है। जब लोभ उफनता है, तब चोरी-बेईमानीमें प्रवृत्ति होती है। ये उफान हैं भला! इन उफानोंको शान्त कर लो। देखो! आपका चित्त कहीं जल न जाये। जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख लेना है न? इसलिए, चित्तको जलानेसे भी बचाना। जल जानेसे वह धुँअरट जायेगा हो। यह क्या है? यह भी बड़ी मजेदार बात है।

आप जानते हैं कि आगसे पानीको गरम करके उस गरम पानीमें कपड़ेको डालते हैं, तो कपड़ा धुलता है–साफ होता है। कई चीजें ऐसी होती हैं उन्हें आप जानते हैं। बड़ी कड़ाहीमें पानी डाल दिया और गर्म कर दिया। गर्म पानीमें कपड़ा डालकर धो दिया। हमने तो मिलोंमें जाकर बड़ी-बड़ी भट्टी देखी हैं। जहाँ ये नये कपड़े धुलते हैं न, वहाँ भट्टी होती हैं। खूब धुआँ निकलता है। अब किसीने कहा कि जब गर्मीसे ही कपड़े धोना है, तब आओ, कड़ाहीके पानीमें न डालकर भट्टीमें ही डाल दें। इससे क्या होगा? कपड़ा जल जायेगा। कड़ाहीसे-पानीसे-गरमीसे-होशियारीसे-युक्तिसे, जो आग कपड़ा साफ करनेका साधन बनती है, वही आग अगर बिना युक्तिके काममें लायी जाये, तो कपड़ेको जला देती है। यह बात आपको मालूम है।

हमने देखा है महाराज! इस्त्री की जाती है न! क्या बढ़िया! कपड़ेको बिलकुल एकरस करनेके लिए इस्त्री की जाती है। कपड़ेमें कोई मोड़-तोड़-मरोड़ न रहे, इसके लिए इस्त्री की जाती है। स्त्रीमें गर्मी होती है। वही तो पुरुषको भी सीधा रखती है और सीधा करती है। वह पुरुषको बिना तोड़-मरोड़कर रखती-करती है। जैसे इस्त्री कपड़ेमें सिलवट ठीक करती है, वैसे पुरुषके जीवनमें भी जो सिलवट पड़ जाती है, उसको स्त्री ठीक करती है। एतदर्थ, इसका नाम तो ठीक ही है। परन्तु, महाराज! यदि इस्त्री असावधान हो जाये माने ज्यादा गरम हो जाये, तो कपड़ेको जला देगी कि

नहीं? बिलकुल आग लग जाती है। उसको भी ज्यादा गरम नहीं होना चाहिए।

नारायण! जो ज्ञान चित्तको शुद्ध करनेके काममें आता है, वही ज्ञान चित्तको जला भी सकता है। आप जलानेवाली ज्ञानाग्निको काममें लेना चाहते हैं और शुद्ध करनेवाली ज्ञानाग्निको काममें नहीं लेना चाहते हैं। शुद्ध करनेवाली ज्ञानाग्नि है—साधना। जलानेवाली ज्ञानाग्निसे विदेह मुक्ति होती है। जीवन्मुक्ति जो है, वह साधनाग्निके द्वारा होती है। साधनाग्निके द्वारा वासना-क्षय करके जीवन्मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। उसके बाद साधना भी छूट जाती है।

**यदपि सुभगं आर्यसेवितं तत्।**
**शुभमनुभूय शुभमनुसृत्य मनोज्ञ भावशुद्ध्या।**
**अभिगमय पदं तदा विशोकं।**
**तदप्यमुच्य स्वात्मपदं साधुतिष्ठ।**

जिस मार्गसे हमारे सन्त-महात्मा लोग चले हैं और जो स्वच्छताका मार्ग है, उस मार्गपर चलो। वह मार्ग है—भावकी पवित्रता। इससे अविशोक पदका अनुभव हो जाता है और फिर उसके बाद मार्ग नहीं रहता है। दूसरेके पास जाना होता है, तब मार्ग होता है। अपने पास पहुँचनेके लिए मार्ग नहीं होता है। उसके बाद सारी साधना अपने आप छूट जाती है। नारायण! मनुष्यको अपने जीवनमें ही विलक्षण ब्रह्मसुखका अनुभव करनेके लिए जीवन्मुक्तिकी साधना करनी चाहिए। जीवन्मुक्तिका स्वरूप क्या है? अब इस विषयमें और बात आपको फिर कल सुनायेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 11

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!**

'**जीवन्मुक्ति**'का अर्थ यदि कोई ऐसा समझता हो कि इसमें केवल त्याग-ही-त्याग है, निवृत्ति-ही-निवत्ति है या समाधि-ही-समाधि है, तो वह गलत समझता है। त्याग होता है—वस्तुओंका। निवृत्ति होती है—कर्म और भोगसे। समाधि माने वृत्तियोंका उत्थान न होना। आप इसका वर्गीकरण कर लें। वस्तुका-व्यक्तिका त्याग होता है। जो बाहरकी चीज है, उसका त्याग किया जा सकता है। कर्म और भोगसे निवृत्ति हो सकती है। मनमें काम-क्रोधका उदय हो जानेपर युक्ति करके उनका निवारण हो सकता है। वृत्तिमें काम-क्रोधका उदय ही न हो, ऐसी स्थिति बनायी जा सकती है। अपना स्वरूप असंग साक्षी है और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें अद्वितीय है। यह त्यागका मामला भी बहुत मजेदार है। यह कुछ बहुत डरने लायक चीज नहीं है। उसमें केवल दूसरेको ठगनेके लिए ढोंग नहीं आना चाहिए और अपने आपको धोखा नहीं देना चाहिए। त्यागमें दिखावा और आत्मवंचना नहीं होनी चाहिए।

हमारे एक मित्र थे। वह त्यागका अभ्यास करते थे। २५-३० वर्ष पहले की बात है। बात बम्बईकी नहीं है। इसलिए, अगर आप लोग कोई ऐसा करते हों, तो अपने ऊपर नहीं घटाना। अभी हमारे वह मित्र जीवित हैं और वृन्दावनमें रहते हैं। बड़े सम्पन्न हैं। आसपासके लोगोंका तो ख्याल है कि इनके घरमें 'चहबच्चा' है। यह शब्द हमारे गाँवका है। गाँवकी बोलीमें 'चहबच्चा'। माने कोई अटूट खजाना इनके घरमें—महलके भीतरमें धरा हुआ है—रखा हुआ है। जब हमारे मित्र कमरेमें भजन करनेके लिए बैठते थे न, तब वह त्यागका अभ्यास करते थे। घड़ी निकालकर अलग रख दी। कुर्त्ता निकालकर अलग रख दिया। धोती निकालकर अलग रख दी। नंगे हो गये। नंगे होकर बैठते थे कि अब हमने सब कुछका परित्याग कर दिया है। एक दिन मैंने उनसे पूछा कि 'यह तुम क्या करते हो? यह सन् ३५-३६ की बात है। उस समय मैं 'झूसीमें' 'प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी'के यहाँ भागवतकी

कथा करता था। 'उड़िया बाबाजी'को भागवत-कथा बहुत पसन्द आगयी। उन्होंने मुझे उधर बुलवा लिया। उनके किसी भक्तने बुला लिया। वहाँ वृन्दावनमें एक दिन उनसे बातचीत हुई कि 'तुम एकान्तमें बैठकर क्या करते हो?' वह बोले-'महाराज! मैं त्यागका अभ्यास करता हूँ। घड़ी अलग रख देता हूँ। कुर्त्ता अलग रख देता हूँ। धोती अलग रख देता हूँ। नग्न होकर-दिगम्बर होकर बैठता हूँ। धूलपर बैठता हूँ। आसन भी नहीं बिछाता हूँ।' वह मिट्टीके घरमें कमरेके भीतर अभ्यास करते थे। वह पक्के मकानमें त्यागका अभ्यास नहीं करते थे। उनके पास पक्का मकान है। हाँ! कभी धूलमें लोटते थे। कभी 'रमण महर्षि'की मुद्रामें लेटते थे। एक दिन क्या हुआ कि भजन करते समय किसी बच्चेने जानबूझकर उनकी घड़ी चुरा ली। जब वह त्यागका अभ्यास करके उठे। तब घड़ीके लिए उन्होंने जो उपद्रव मचाया, वह क्या कहना? नारायण! हमारा कहना यह है कि जो 'टेम्पोरेरी' (Temporary) त्याग है, वह सच्चा त्याग नहीं है। दिन-भरमें घण्टे-भरके लिए त्याग करते हैं। साल-भरमें महीने-भरके लिए त्याग करते हैं। बैंकमें-लॉकरमें अपनी सम्पदा खूब सुरक्षित रख करके एक महीनेके लिए त्यागका-असंगताका अभ्यास करते हैं। यह त्याग नहीं है। यह तो दिखावा है-ढोंग है-आत्मवंचना है। यह तो अपने आपको धोखा देना है।

अच्छा! आओ! आपको एक और बात सुनाते हैं। 'स्वर्गाश्रम'में 'सेठ जयदयालजीका सत्संग होता था। बड़े-बड़े मारवाड़ी सेठ उनके सत्संगमें आते थे। करोड़पति तो उनके सत्संगमें कम आते थे। करोड़पति लोग तो करोड़ कमानेमें फँसे रहते हैं न! उस समयके जो लखपति थे, वह लोग आते थे। उनमेंसे अब कई करोड़पति हो गये होंगे। वहाँ भोजनमें दो चीज खानेका अभ्यास करते थे। रोटी-दाल खायेंगे या रोटी-सब्जी खायेंगे या खिचड़ी खायेंगे या दूध-फल खायेंगे। ऐसेदो चीज खानेका अभ्यास वहाँ होता था। पन्द्रह-दिनोंमें अथवा महीने-भरमें यह अभ्यास पूरा होता था। जिस दिन यह त्यागका अभ्यास पूरा हो जाता था, उस दिन वे अभ्यासी सत्संगी लोग दूकानपर जाकरके दही-बड़ा जरूर खाते थे। मैं आपको और क्या-क्या सुनाऊँ? यह जो त्यागका अभ्यास होता है न, बस सीताराम कहो!

'चुरू'में 'सेठ जयदयालजी'का ही ब्रह्मचर्याश्रम है—'ऋषिकुल'। मैं वहाँका उन दिनोंका नियम जानता हूँ। अबका नियम तो मालूम नहीं है। वहाँ जो ब्रह्मचारी प्रविष्ट होता था, वह अपने पास पैसा नहीं रख सकता था। अखबार नहीं पढ़ सकता था। सिला कपड़ा नहीं पहन सकता था। बाजारकी कोई चीज खरीदकर खा नहीं सकता था। वहाँ यह नियम पालन करना पड़ता था। हमारे पुत्र भी उस ब्रह्मचर्याश्रममें रहे और वहाँके नियम-पालनमें सम्मिलित थे। जिस दिन वहाँका 'समावर्तन-संस्कार' होता था माने जिस दिन वहाँसे ब्रह्मचारी छोड़ दिये जाते थे—मुक्त होते थे, उसी दिन वे बाजारमें जाकरके मौज मनाते थे। जब उनके हाथमें पैसा आता था न, तब जो मौजमें होती थी, सो खरीदकरके खाते थे। अखबार पढ़ना भी शुरू करते थे। थोड़े दिनोंमें बाल रख लेते थे। वह जो उनका चार बरसका—छह बरसका कोर्स होता था, वह तो बस सीताराम कहो। आप लोग तो जानते ही हैं। कोर्स होता है न? कोर्स! को रसः? **तत्र न कोऽपि रसः।** उस त्यागके कोर्समें कोई रस नहीं होता है हो! ये बच्चे पढ़ने जाते हैं न, तो उनको कोर्सकी किताबमें रस नहीं आता है। उनको 'नॉवेल' (Novel)में रस आता है। वे कथा-कहानी पढ़ते हैं। आप लोग तो जानते ही हैं।

नारायण! ऐसा नहीं है कि बाहरी त्यागसे लोगोंको धोखेमें डाला जाये और आत्मवंचना की जाये। त्यागका कारण होता है—भीतरका वैराग्य। वेदान्त बाहरी चीज नहीं है। वेदान्तविद्या हृदयमें उदय होती है। इसलिए, हृदयमें वैराग्य होना चाहिए। निवृत्तिका नियम समझो। बोले—भाई! एक महीना छुट्टी मनाकर आये हैं। बहुत काम बाकी पड़ा है। अब आओ, इस महीनेमें पिछले महीनेका काम भी पूरा कर लें। अच्छा! एक महीनेतक भोगका परित्याग किया है। अब इस महीनेमें पिछले महीनेका और इस महीनेका—दोनोंका मिलाकरके भोग कर लिया जाये।' कर्म और भोगसे यह निवृत्ति अभ्यासको बनाती नहीं है, बल्कि बिगाड़नेमें हेतु हो जाती है।

अच्छा! अब हम आपको और आगे कहते हैं। हमारा यह मन बिलकुल चंचल बालक सरीखा है। हम आप लोगोंके मनकी बात नहीं कर सकते हैं। योगी लोग तो मानते हैं कि एक मनको दूसरे मनका ज्ञान हो जाता है। उन्होंने इसकी युक्ति भी बतायी है। **प्रत्ययसंयमात् परचित्तज्ञानम्।**

हम आपको अभी वह बात योगकी दृष्टिसे सुनाना नहीं चाहते हैं कि दूसरेके मनकी बात मालूम करनेका तरीका क्या है? **प्रत्ययसंयमात् परचित्त ज्ञानम्।** यह तरीका है--तरकीब है हो!

कुछ चीजें ऐसी होती हैं; जो हमारे जीवनमें बाहरसे आयी हुई होती हैं। एक बालक है। पाँच-सात बरसका है। उसको अपना अँगूठा मुँहमें डालकर चूसनेकी आदत पड़ गयी है। बिलकुल सच्ची घटना सुनाते हैं। अब नाखून काटते-काटते, अँगूठा चूसते-चूसते यह हालत हो गयी कि उसके अँगूठेमें-से खून बहे; लेकिन, वह माने नहीं। उसके अँगूठेपर कड़वी नीम बाँधी गयी। उसपर कड़वी चीजें लगायी गयीं। उसपर पट्टी बाँध दी गयी। लेकिन, वह किसी-न-किसी तरहसे उनको हटा देवे। अँगूठेको मुँहमें डाले और थूक दे। तो फिर उसके ऊपर जादूका प्रयोग किया गया। 'हिप्नोटाइज' (Hypnotize) करते हैं न? बिचारा बालक। उसको सुनानेके लिए टेप लगा रखा था। टेपमें भर दिया था कि यह काम—अँगूठा चूसना बहुत बुरा है। इसमें मल लगा रहता है। इससे रोग हो जाता है। इससे दाँत बाहर निकल आते हैं। ऐसी-ऐसी बातें उस टेपमें कही गयी थीं। जब वह सोने लगता, तब उसको वह टेप सुनाते। सोते समय बारम्बार-बारम्बार सुनाते। उसका थोड़ा संस्कार पड़ता। हफ्ते भर-दो हफ्ते भर छोड़ देता था और फिर चूसने लगता था।

इस तरहसे, मनुष्य अपने जीवनमें बाहरसे कई आदतें डाल लेता है और वह सोचता है कि इनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता है। इस आदमीके बिना, इस कपड़ेके बिना, इस भोजनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता है। मनुष्यके जीवनमें उधार आदतें आ जाती हैं। ये उधार आदतें अभ्यासके द्वारा छोड़ी जा सकती हैं भला! इन उधार ली हुई आदतोंको छोड़नेके लिये उपाय होता है। तूफानको शान्त करनेके लिए सान्त्वना भी होती है और दण्ड भी होता है। समझदार आदमी समझानेसे समझ जाता है और नासमझ आदमी समझानेसे नहीं समझता है। वह कहते हैं न कि **'लातका आदमी बातसे नहीं मानता है।'** ये जो हमारे बड़े-बड़े समझदार लोग हैं, वे अपनी नजरसे सब चीजोंको देखते हैं और सोचते हैं कि सबको समझाकरके ही काम चल सकता है। परन्तु, वे समझदार लोग

यह नहीं समझ पाते हैं कि एक पागल आदमीको, एक बच्चेको एक मूर्खको समझाना कितना मुश्किल होता है। इसलिए, थोड़ा दण्ड और थोड़ा पुरस्कार होता है। अच्छा काम करनेवालेको पुरस्कार भी दिया जाता है। और बुरा काम करनेवालेको दण्ड भी दिया जाता है। जैसी यह राजनीति है, वैसी ही अपने मनको समझानेकी भी रीति है। बाप कभी डाँटता है, तो माँ दुलार करती है। असलमें, दोनों आपसमें सलाह किये हुए होते हैं। इस तरहसे, दोनों मिलकरके अपने बच्चेको सुधारते हैं। तो भाई मेरे! लाड़-प्यार-दुलार भी चाहिए और साथ-ही-साथ डाँट-डपट, थोड़ा दण्ड-जुर्माना भी चाहिए।

'गीताप्रेस'में एक मनुष्य काम करते थे। वह जरा उपद्रवी ढंगके थे। इससे 'सेठ जयदयालजी'ने आज्ञा दे दी और वह निकाल दिये गये। निकाल देनेके बाद भी वह कम उपद्रव नहीं करते थे। यह नहीं कि जब गीताप्रेसमें थे, तब भीतर उपद्रव करते थे और बाहर निकाल देनेके बाद उपद्रव छोड़ दिये हों। अब 'हनुमानप्रसादजी' और 'जयदयालजी'की सलाह हुई। हनुमानप्रसादजी ने कहा—'चलो! सेठजीने निकाल दिया, तो क्या हुआ? हम तुमको व्यक्तिगत रूपसे रख लेते हैं। हम तुमको काम देंगे। हम तुमको पैसा देंगे। तुम हमारे यहाँ काम करो। सेठजीके निकालनेसे क्या काम नहीं मिलेगा?' अब महाराज! उनको ज्यादा पैसा देकर चार-पाँच महीने काम भी लिया और कृतज्ञ भी बना लिया। चार-पाँच महीने उनको समझा-बुझाकरके बिलकुल ठीक-ठाक भी कर लिया। फिर सेठजीसे सिफारिश कर दी कि 'यह बहुत अच्छे आदमी हैं। इनको निकालना ठीक नहीं है।' असलमें, दोनोंकी बिलकुल पक्की सलाह थी कि 'यह बड़े कामका आदमी है। इसको प्रेसमें रखना चाहिए।' सचमुचमें, वह बड़े कामका आदमी था। दस भाषाओंमें-फ्रेंचमें-जर्मनमें अनुवाद करके देनेवाला था। भिन्न-भिन्न भाषाओंकी बढ़िया-बढ़िया बातें और वस्तुएँ निकाल-निकाल-कर देनेवाला था। उसको दोनोंने मिल-जुलकर बिलकुल साध लिया। फिर तो वह मरते दम तक वहीं रहा। अपने मनको भी सधाना पड़ता है। यह नहीं कि आप केवल दण्ड-ही-दण्ड दें। उसको अच्छा काम करनेपर पुरस्कार भी दीजिये। अच्छा! देखो! जिस चीजपर वह ललचाता है, उससे बढ़िया

चीज उसको मिलेगी, तो वह छोटी चीजकी ओरसे अपनेको क्यों नहीं हटावेगा?

अब आपको यह बात सुनाते हैं कि जीवनमें कुछ चीजें ऐसी हैं, जिनको छोड़ना पड़ता है। जीवनमें जो बुरी आदतें आगयी हैं, उनको छोड़ना पड़ता है। कुर्सीपर बैठे-बैठे पाँव हिलाते रहते हैं। क्या आप यह आदत जन्मके पहले से लेकर आये हैं? कालीनपर बैठते हैं और उसको हाथसे नोचते हैं। यह नोचनेकी आदत पड़ जाती है। यह एक बुरी आदत है। यह छोड़ देने योग्य है। यह नहीं कि जो नोचता है, उसको नोचने दो। मना मत करो। बालक दूध गिरा रहा है या घीमें मिट्टी डाल रहा है, तो उसको मना मत करो। ऐसा नहीं है। कुछ चीजें ऐसी होती हैं, जो जीवनमें एक-दिन, दो-दिन, दस-दिनमें छोड़नेकी होती हैं। जो बुरी आदतें हैं, वह छोड़नेकी हैं।

अच्छा! कुछ चीजें ऐसी हैं, जो बिलकुल छोड़ी नहीं जा सकती हैं। उनको पचाना पड़ता है। औषधमें विरेचन भी होता है। लंघन भी होता है। पाचन भी होता है। आप जानते हैं न? विरेचन—जुलाब ले लेना। लंघन करना—न खाना। जो पेटके भीतर चला गया है, उसको पचा लेना। त्याग जो है, वह विरेचनके समान है। निवृत्ति जो है, वह लंघनके समान है। मनमें जो काम-क्रोध-लोभ-मोह बारम्बार उदय होते रहते हैं, वह तो आनेके बाद मालूम पड़ते हैं। उनका त्याग कैसे करोगे? जो चीज भीतर घुस आनेके बाद—जाहिर होनेके बाद मालूम पड़ी, उसको कैसे रोकोगे? उसमें जो उफान आता है, उसको कैसे रोकोगे? उफान आनेका क्या अर्थ है? कामसे व्यभिचार होना, क्रोधसे हिंसा होना, लोभसे बेईमानी-चोरी होना—ये मनमें आयी हुई वृत्तियोंका उफान है। हाँ! जबरदस्त ढक्कन लगानेपर भी भाप ज्यादा पैदा हो जायेगी और वह ढक्कनको फेंक देगी भला! आपको कल सुनाया था कि यदि थोड़ा-थोड़ा ठंडा पानी डालकर चलाते रहोगे, तो दूध धीरे-धीरे गाढ़ा हो जायेगा। इसको बोलते हैं—दोषोंका पाचन।

कुछ होते हैं सद्‌गुण। उनको प्राप्त करना पड़ता है। किसी-किसीको देनेकी आदत नहीं होती है। लेनेकी आदत होती है। हाँ! बचपनसे ही ऐसा हो जाता है। यदि वह उदार पुरुषके पास रहे और उसको दे-देकर खुश होते देखे, तो उसको भी देनेकी आदत पड़ जायेगी। कई आदमी ऐसा होते हैं,

जिनको देनेसे खुशी होती है। बनियावृत्ति तो यह है कि वह लेकर खुश होता है। उदार-पुरुषकी—सज्जनकी वृत्ति यह है कि देकर खुश होता है। यह सीखनेकी चीज है। यदि उदार पुरुषका संग करोगे, तो उदारता सीखोगे। यदि शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधानादि सद्‌गुणोंसे युक्त पुरुषका संग करोगे, तो ये सद्‌गुण सीखोगे।

एक माता है। उसको नाराज होनेकी, गाली देनेकी, गुस्सा करनेकी, रोनेकी, चिढ़नेकी बहुत आदत है। उस माताको वृन्दावनके आश्रममें एक ऐसी स्त्रीके साथ रहना पड़ा, जो न कभी नाराज होती है, न गाली देती है, न निन्दा करती है, न रोती-चिढ़ती है। उस माताने उस स्त्रीको महीने-भर देखा। अब उसको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह स्त्री तो कभी किसी दूसरेकी चर्चा ही नहीं करती है। यह तो कभी किसीकी निन्दा नहीं करती है। कभी किसीपर नाराज नहीं होती है। गाली नहीं देती है। रोती-चिढ़ती-कुढ़ती भी नहीं है। उस माताने सोचा कि यह स्त्री तो बहुत अच्छी है। उसने देखा कि मुझे तो दिन-भरमें पन्द्रह दफा रोना पड़ता है और यह तो जब देखो तब खिलती रहती है। रोने-चिढ़ने-कुढ़नेका नामोनिशान ही नहीं है। अब उसके मनमें यह प्रश्न उठा कि 'मैं अपनेको ऐसा बना सकती हूँ कि नहीं?' नारायण! यदि सद्‌गुणीका संग प्राप्त होवे, तो मनुष्य अपने मनमें सद्‌गुण लानेकी कोशिश करता है।

इस प्रकार, कुछ छोड़नेकी चीज है। कुछ पचानेकी चीज है। कुछ दूसरोंका आदर्श देखकरके ग्रहण करनेकी चीज है। यदि आप दूसरोंके आदर्शसे ग्रहण नहीं करेंगे, तो यह संस्कृति-संस्कृतिका नाम लेकर चिल्लानेवाले लोग बिलकुल व्यर्थ सिद्ध होते हैं। 'शिवाजी' सरीखा होना चाहिए। 'राणा प्रताप' सरीखा होना चाहिए। 'रामकृष्ण' सरीखा होना चाहिए। 'कबीर' सरीखा होना चाहिए। 'राधास्वामी' सरीखा होना चाहिए। 'शंकर-रामानुज' सरीखा होना चाहिए। 'अवधूत दत्तात्रेय'के समान होना चाहिए। किसी फकीरका नाम लेंगे। ये जो आदर्श हैं न, उनके आदर्शसे सद्‌गुण प्राप्तव्य हैं। यदि इन आदर्शोंसे सद्‌गुण ग्रहण न किये जायें, तो उनका इतिहास बिलकुल व्यर्थ हो जायेगा भला! अपनी नजरमें अपनेको जो दोष मालूम पड़ते हैं और मनमें आते हैं, उनको पचाना पड़ता है। जिनसे अपने

अन्दर हीन-भावना आती है, उन कर्मोंका-भोगोंका-वस्तुओंका त्याग करना पड़ता है। चोरीके मालका त्याग करना पड़ता है। यह नहीं कि अपने घरमें कोई चोरीका माल लाकरके रख दे, तो देखते रहो।

कल कि परसों—याद नहीं है। हमको एक सज्जनने एक कथा सुनायी। कोई सज्जन घरसे निकले। त्याग-वैराग्यका भाव लेकर निकले। उनको जाकर माँगनेमें शरम आवे। भूख तो लगे—प्यास तो लगे; परन्तु माँगनेमें शरम आवे। भीतर वैराग्य नहीं था। वैराग्यमें भूख लगनेपर अन्न माँग लेना भी अहम्‌को छुड़ानेवाला है। प्यास लगनेपर पानी माँग लेना भी अहम् भावसे छुड़ानेवाला है। कभी-कभी तो अहम् भाव बड़ा दुःख देता है।

हमने इलाहाबादमें एक सज्जनको देखा था। वह अपनी 'पेन्शन' (Pension) पर रहते थे। दान खूब करते थे। साधुओंके रहनेके लिए आश्रम भी बनवा दिया था। उनके भोजनका बन्दोबस्त भी कर दिया था। खुद जो हैं, अपनी पेन्शनमें गुजर करते थे। मैला-सैला कपड़ा पहनना। कुर्ता-वुर्ता नहीं पहनना। अपने हाथसे ऐसे बाटी सेंककर खा लेना। परन्तु, उनके जीवनमें कोई विकास, कोई प्रकाश नहीं था। हम लोगोंने 'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज'से पूछा कि 'ऐसा तपस्वी आदमी इतना सिमट कैसे गया? संकीर्ण कैसे हो गया?' श्रीउड़ियाबाबाजीने बताया कि 'इसके मनमें यह भाव है कि यह साधु लोग तो पराया माल खाते हैं और हम अपनी कमायीका खाते हैं। इसलिए, हम इन साधुओंसे बहुत श्रेष्ठ हैं। मजेकी बात तो यह है कि वह खुद ही साधुओंके लिए अन्नक्षेत्र खोलकर बैठा हुआ है और कहता है कि साधु तो पराया माल खानेवाले हैं। अपनी श्रेष्ठताका अभिमान होनेके कारण इसके अन्दर हीनवृत्तिका-हीनभावका उदय हो गया है।' कभी-कभी छह-आठ घरसे माँगनेमें जो गाली सुननी पड़ती है—अपमान सहना पड़ता है, वह तपस्या हो जाती है।

अच्छा! तो वह सज्जन पेड़के नीचे जाकर बैठ गये। वहाँ अपना आसन जमा लिया। लोग देखते कि यह सज्जन पेड़के नीचे से उठते ही नहीं हैं। कोई भोजन लाकर खिला देता। जब धीरे-धीरे गाँवमें बात फैलने लगी, तब उनके लिए वहीं दूध भी आने लगा; रबड़ी-मलाई भी आने लगी; मिठाई वगैरह भी आने लगी। वह पेड़के नीचे बैठकर खूब मजेसे खाते-पीते और

बड़ी मस्तीसे रहते। वह कहते–'देखो! हमारे प्रारब्धने सब भेज दिया। ईश्वरने हमारे पास यह सब खान-पानका सामान भेज दिया।' थोड़े दिनोंके बाद क्या हुआ कि गाँवमें चोरी हुई। चोर लोगोंने सोचा कि यह माल छिपानेके लिए सबसे बढ़िया जगह कौन-सी हो सकती है? उन्होंने विचार किया कि वही साधु, जो कहीं जाता नहीं है, उसकी कुटियाके आसपास माल छिपा दिया जाये तो किसीको पता नहीं लगेगा। अब ले जाकर माल उसकी कुटियाके पास छिपा दिया। धीरे-धीरे सुराग लगा। पुलिसको पता लगा। बाबाजीकी कुटियाकी दीवारमें-से वह माल निकला। बाबाजी पकड़े गये। पुराना जमाना उस समय तो चोरीकी बड़ी कड़ी सजा थी। उनके हाथ कटवा दिये गये। फिर भी, उन्होंने इसपर कुछ बहुत ध्यान नहीं दिया। परन्तु, उन्होंने ईश्वरसे पूछा कि 'जब मैंने चोरी नहीं की और मुझे उसके बारेमें कुछ मालूम भी नहीं था, तब मेरे हाथ क्यों कटवाये गये? यह मेरे किस अपराधका दण्ड है?' ईश्वरने उनके हृदयमें बताया कि 'हमने तुमको काम करनेके लिए दो हाथ दिये थे। जब तुमने उनको बिलकुल निकम्मा बना दिया, तब उनको तुम्हारे पास रखनेसे क्या फायदा है? तुमने उनको व्यर्थ कर दिया। अब वह तुम्हारे पास रहने योग्य नहीं रहे। इसलिए, तुमसे छीन लिये।' ईश्वरने उनके दिलमें यह जवाब दिया। अब बेचारेको उसके प्रश्नका उत्तर मिल गया। महात्मा था। सन्तोष हो गया। वहाँसे उठा और जाकर दूसरी जगह बैठ गया। उसने तो कोई चोरी-चमारी नहीं की थी।

आप यह देखो! जब जीवनमें इतिहास है, तब उसकी घटनाओंसे सीखना चाहिए। हमारी संस्कृति भी है, तो, उसको समझना चाहिए। बुरा करनेसे बुरा फल भोगना पड़ता है। अच्छा करनेसे अच्छा फल मिलता है। जीवनकी घटनाओंसे-इतिहाससे-संस्कृतिसे अपने मनको कुछ सिखाना-समझाना चाहिए, अन्यथा संस्कृति माने तो कुछ होता ही नहीं है। अगर आपने रामसे कुछ नहीं सीखा, शिवाजीसे कुछ नहीं सीखा, शुकदेवजीसे कुछ नहीं सीखा, तो संस्कृति माने तो कुछ होता ही नहीं है।

चित्तमें जो विकार आते हैं, उनका संस्कार करना पड़ता है। यह कैसे होता है? इसको आप साफ-साफ समझ लो। शरीरमें पसीना आनेसे दुर्गन्ध आती है। अब आप शरीरमें-से पसीना निकालते तो नहीं हैं न! वह शरीरका

विकार है। आप उसको साबुन लगाकर धोते हैं। पसीना आना विकार है और साबुनसे धो देना उसका संस्कार है। यह संस्कार भी दो तरहका होता है। एक तो केवल पसीनेको धो देना दोषापनयन अथवा इसको कहते हैं—मलापनयन। दूसरा यह कि सुगन्धित वस्तुका प्रयोग करके सुगन्ध लगाना। इसको कहते हैं—गुणाधान। यह दो तरहका संस्कार होता है। यह जो आपका मन है, इसमें विकारांश भी है और संस्कारांश भी है। जैसे शरीरमें-से पसीना निकलता है; मल निकलता है; मूत्र निकलता है, वैसे, मनमें विकार और संस्कार हैं। आपके मनमें जो विकार आते हैं, उनको संस्कारोंके द्वारा धो दीजिये और उनकी जगहपर अच्छे सद्‌गुणोंका प्रयोग कीजिये। आप वासना-क्षयके मार्गमें आगे बढ़ेंगे।

अब देखो! समाधि क्या है? समाधि तो वृत्तिका अनुदय है। कामका उदय होनेपर भी, क्रोधका उदय होनेपर भी क्रियान्वित मत करो। काम-क्रोधको क्रियापर्यन्त मत जाने दो समताकी युक्तिसे भोग और निर्भोग दोनोंमें समत्व रखो। एक प्याससे आदमीकी पानी पीनेपर जो स्थिति होती है, वही स्थिति प्यास न लगनेपर होती है। अपने मनमें जो विकार आते हैं, उनको समताकी युक्तिसे और समझानेकी युक्तिसे पचाना चाहिए। संस्कारके द्वारा दत्तात्रेयके आदर्शसे-जनकके आदर्शसे-शुकदेवके आदर्शसे सीखना-समझना चाहिए। अपने जो अच्छे-अच्छे सत्पुरुष हैं—रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गाँधी आदिके सद्‌गुणोंको धारण करना चाहिए। आजकल भी अच्छे-अच्छे सत्पुरुष हैं। हमने इन आँखोंसे ऐसे अच्छे-अच्छे सत्पुरुषोंका दर्शन किया है कि आज भी उनका स्मरण करके हृदय आनन्दसे उल्लसित हो जाता है। उनके संस्कार हमारे मनमें हैं। जब कोई उनको गाली देता था—अपमान करता था, तब भी वे खुश रहते थे। यह हमने अपनी आँखोंसे देखा है। हमने पिटनेंवाले सन्तोंको भी देखा है। पिटते समय भी—अपमान सहते समय भी उनके चेहरेपर मुस्कराहट ज्यों-की-त्यों होती थी। ये हमारे सामने समताके-सान्त्वनाके उपाय हैं। इनसे अपने मनको शान्त करना चाहिए। अब रही बात यह कि वृत्तिका उदय ही न हो। इसके लिए समाधिका अभ्यास करना पड़ता है। समाधिके अभ्यासको भी हम छोड़ देते हैं। जीवन्मुक्तिकी बात करते हैं।

यह जीवन्मुक्ति विरेचन नहीं है–जुलाब नहीं है। यह लंघन भी नहीं है कि खाना-पीना बन्द कर दिया जाय। यह कर्म और भोगसे निवृत्ति भी नहीं है। यह वृत्तिका अनुदय भी नहीं है कि चित्तमें कोई वृत्ति उदय ही नहीं होती है। जीवन्मुक्तिका अर्थ है–आत्मस्वरूपमें स्थित ज्ञानी पुरुषकी व्यावहारिक स्थिति। ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित होकर एक प्रदीप्त-प्रज्वलित अन्तर्दृष्टिसे शाश्वत वस्तुपर दृष्टि रखकर जो व्यवहार करता है, उस व्यावहारिक स्थितिका नाम जीवन्मुक्ति होता है। जीवन्मुक्ति इसी जीवनमें आनेवाली चीज है।

तत्त्वज्ञानके पूर्व भी वासना शान्त की जा सकती है; क्योंकि, सुषुप्तिमें वासनाएँ शान्त हो जाती हैं। यदि आपको प्रकृतिसे सुषुप्ति आ सकती है, तो क्या अभ्याससे सुषुप्ति नहीं आ सकती? यह कोरी कल्पना है कि व्यवहारमें वासनाएँ शान्त नहीं होती हैं। हाँ! यह अविचारपूर्ण है। आपको विश्राम देनेके लिए प्रकृति सुषुप्तिमें ले जाती है और उस समय सारी वासनाएँ शान्त हो जाती हैं। अतएव, आप अभ्यासके द्वारा एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं, जिसमें वासनाओंका उदय न हो। सुषुप्तिमें वासनाका बीज रहता है। उठनेपर फिर वैसी ही वासनाएँ–वैसी ही ममता–वैसा ही मोह–वैसा ही प्यार, वैसी ही मुहब्बत निकल आती है। अभ्यास-जन्य सुषुप्तिका नाम समाधि है और प्रकृतिजन्य समाधिका नाम सुषुप्ति है। प्राकृतिक विश्रामका नाम है–सुषुप्ति। आभ्यासिक विश्रामका नाम है–समाधि। आपकी साक्षिता जो है, वह दोनों हालतमें अलग है। आभ्यासिक विश्राम-समाधिसे आप अलग हैं। उसपर आपकी नजर है। प्राकृतिक विश्राम-सुषुप्तिसे आप अलग हैं और उसपर आपकी नजर है। आप चाहे समझें और चाहे न समझें। समझ और नासमझका तो फरक है। सुषुप्ति रोज आती है; परन्तु, उसमें बीजग्रन्थिका नाश नहीं होता है। आभ्यासिक समाधि कभी आनेपर आपकी साक्षिता बिलकुल स्पष्ट दिखायी पड़ेगी। अभ्यास-जन्य होनेसे समाधि सात्त्विक है और प्रकृतिजन्य होनेसे सुषुप्ति तामस है। **अभ्यासाद् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।** सात्त्विक सुखका लक्षण है–अभ्यासाद् रमते यत्र।

अब जब हम जीवन्मुक्तिकी चर्चा करते हैं, तब पहली बात तो यह है

कि जबतक जीवन्मुक्तिके सम्बन्धमें बात पूरी तरहसे समझमें न आ जाये, तबतक समझनेका प्रयास करते रहना चाहिए। कल एक भाईसे बात हो रही थी कि बच्चेको गोदमें रखनेकी जरूरत होती है। जब वह बड़ा हो जाता है, तब उसको कहते हैं कि 'अब तुम जाओ। 'टूर (Tour) पर जाओ। स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास करो।' लेकिन पहले शुरू-शुरूमें बच्चेको गोदमें रखना पड़ता है। साधक भी जब बच्चा होता है, तब वह गुरुकी गोदमें होता है और उसको शास्त्ररूप अनुशासनके अनुसार चलना पड़ता है। जैसे बालक अपने माता-पिताकी नकल करता है, वैसे साधक भी अपने गुरुजुनोंकी नकल करता है। साधक दशामें तीन बातें होनी चाहिये। माता-पिताकी गोदकी तरह गुरुकी गोद चाहिए। जैसे बालक आज्ञाकारी होता है, वैसे गुरुकी आज्ञाका पालन करना चाहिए। जो अपने बड़े लोग-भले लोग हैं, उनका अनुकरण करना चाहिए। गोदमें सुरक्षित रहना-संरक्षणमें रहना, आज्ञाकारी होना और शुभ-अनुकरण करना-ये तीन बातें जैसे बालकमें होती हैं, वैसे साधक-बालक--जो शुरू-शुरूका साधक है, उसके जीवनमें होनी चाहिए।

जब पौधा लगाते हैं, तब उसको थालेमें लगाते हैं। उसको गोड़ते हैं। उसको सींचते हैं। बाड़ लगाते हैं। देखो! मरीन ड्राइवपर छोटे-छोटे पौधोंकी रक्षाके लिए आजकल क्या-क्या उपाय किये जाते हैं? लेकिन, जब यही पौधे बड़े हो जाते हैं, तब न उनको गोड़ना पड़ता है, न सींचना पड़ता है, न बाड़ लगानी पड़ती है। आपने देखा होगा कि पौधोंके बड़े होनेपर बाड़ हटा देते हैं और लोग आकर धूपमें उनके नीचे बैठते हैं और उनकी ठंडी हवासे विश्राम प्राप्त करते हैं। साधक भी एक पौधेकी तरह है। जैसे पौधेको एक मालीकी देखरेखमें कभी गोड़ना पड़ता है; कभी सींचना पड़ता है; कभी पानी देना बन्द करना पड़ता है; कभी खाद देना पड़ता है; कभी छटाई भी करनी पड़ती है; ठीक वैसे ही, साधकको एक नये पौधेकी तरह विकसित करना पड़ता है। जब वह बड़ा हो जाता है, तब दूसरोंके लिए छाया करता है, फल देता है, फूल देता है। साधकका जीवन एक वृक्षकी तरह है।

जो लोग कहते हैं कि 'बच्चेको शुरू-शुरूमें ही अकेला छोड़ दो,' वह यह नहीं सोचते हैं कि बच्चेको घरमें रहनेवाले चूहे ही खा सकते हैं। घरकी

बिल्ली ही कभी बच्चेको काट सकती है। बच्चेको कुत्ते नोच सकते हैं। बच्चेको साँप काट सकते हैं। अरे भाई! छोटे बच्चेको तो सँभालकर रखना पड़ता है। देखो! मन भी चंचल बच्चा है। इसके साथ भी शुरू-शुरूमें छोटे बच्चेकी तरह व्यवहार करना पड़ता है। खूब सँभालना पड़ता है। बादमें, जब मनरूपी बच्चा बड़ा हो जाता है, तब उसे स्वतन्त्रता देकर बिलकुल स्वावलम्बी बनाया जाता है। इस बातपर आप ध्यान रखना कि जैसे छोटे बच्चे और बड़े बच्चेके साथ अलग-अलग बर्ताव किया जाता है। ठीक वैसे ही मनरूपी बच्चेके साथ भी शुरू-शुरूमें और बादमें जो बर्ताव किया जाता है, उसमें थोड़ा फरक होता है। आप तो पहले ही दिन एम०ए० की जाली डिग्री पाना चाहते हो। आप तो पहले ही दिन नकली डाक्टरेट प्राप्त करना चाहते हो। यह जाली-नकली डिग्री आपके लिए बहुत हानिकारक होगी।

अब देखो! जीवन्मुक्ति माने तत्त्वज्ञान नहीं है। जीवन्मुक्ति तो सीमित है। यदि तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश—तीनोंका युगपद् अभ्यास करके स्थिति प्राप्त कर ली जाये, तो यह जीवन्मुक्ति जीवनमें पैदा होती है और मरनेके बाद जीवन्मुक्ति समाप्त हो जाती है। आत्मा जो है, वह तुम्हारे साधक होनेके पहले भी—जन्म होनेके पहले भी आत्मा था और मरनेके बाद भी आत्मा रहेगा। वह दूसरी चीज है। साक्षी—चैतन्य जो है, वह दूसरी चीज है। नारायण! फिर जीवन्मुक्तिकी जरूरत क्या है? जीवन्मुक्तिकी जरूरत यह है कि इसमें विलक्षण सुख की उपलब्धि है। विषय-भोगसे विलक्षण, कर्मसे विलक्षण, आलस्य-प्रमादसे विलक्षण, निवृत्तिसे विलक्षण, पाचनसे विलक्षण, लंघनसे विलक्षण और समाधिसे विलक्षण सुखकी उपलब्धि है। इसी जीवनमें चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते एक विलक्षण सुख की उपलब्धि, जिसको ब्रह्मानन्द कहते हैं। श्रुतिमें आया है—**यक्षण क्रीडण रममाणः स्त्रीभिर्वाज्ञानैर्वा वैचर्यवानोपजन्म स्मरणमिदं शरीरम्। यक्षण।** खा रहा है। व्याकरणकी रीतिसे यक्षत होता है; परन्तु, श्रुतिमें यक्षणपदका प्रयोग है। **क्रीडण।** खेल रहा है। **रममाणः।** भोग कररहा है। रम रहा है। खाते-खेलते-भोगते-रमते हुए भी उसके जीवनमें इस भ्रान्तिका उदय कभी नहीं होता है कि 'मैं शरीर हूँ।' देखो!

मनुष्यकी बुद्धिमें सहज स्वभावसे यह बात आ नहीं सकती है कि मनुष्यके जीवनमें ऐसी स्थिति भी हो सकती है।

प्रत्यक्ष और अनुमानसे आप दूसरेके बारेमें कुछ भी मालूम नहीं कर सकते हैं। महात्मा जो हैं, वह प्रत्यक्ष नहीं होता है। आप देखो! आपको एक बात सुनाते हैं। आप लोग कहते हैं न कि 'हमने यह महात्मा देखा। हमने वह महात्मा देखा। हमने अमुक महात्मा देखा।' सच तो यह है कि आपने एक नंगा देखा होगा। आपने एक धूल-लपेटा देखा होगा। आपने एक बन्द आँखका आदमी देखा होगा। एक अनबोल आदमी देखा होगा। एक निष्क्रिय आदमी देखा होगा। आपने हड्डी-मांस-चामका एक पुतला देखा होगा। आपने जो महात्मा देखा, उसमें जो महात्मापन है, वह न तो प्रत्यक्षगम्य है और न अनुमानगम्य ही है। महात्मापन श्रद्धागम्य है। जब उस व्यक्तिके प्रति आपकी श्रद्धा होगी। तब वह महात्मा मालूम पड़ेगा। अच्छा देखो! एक दिन एक आदमी आकर हमारे सामने खड़ा हो गया। उसकी वेशभूषासे-पगड़ीसे-बगलबन्दीसे-दुपट्टेसे यह तो मालूम पड़ गया कि यह ब्राह्मण है; परन्तु, उसकी शकल देखनेसे यह बात मालूम नहीं पड़ी कि यह ब्राह्मण विद्वान् है। जब एक दूसरे आदमीने बताया कि '**अयं विद्वान्**' ; '**अयं ब्राह्मणो विद्वान्**,' तब मालूम पड़ा कि यह विद्वान् है। जब उससे बातचीत की, तब उसकी विद्वत्ताका-वैदुष्यका साक्षात् अनुभव हो गया। हम आपको यह बात सुनाते हैं कि आप चाहे कितनी परीक्षा लो और कितनी खोज करो; लेकिन, महात्मापना जो है, वह कभी दृश्य नहीं होता है। महात्मापना परमात्मासे भिन्न नहीं होता है। इसलिए; कभी दृश्य भी नहीं होता है। जो दृष्टिगोचर होता है, वह तो एक मांसका पिण्ड होता है। इसीसे, राम और कृष्ण ईश्वर हैं, इसमें विप्रतिपत्ति है। लोगोंको इसमें शंका होती है न, कि एक आदमी ईश्वर कैसे हो सकता है? राम ईश्वर कैसे हो सकता है? कृष्ण ईश्वर कैसे हो सकता है? हम राम और कृष्णको भी तो मनुष्यके रूपमें देखते हैं। रामका रामत्व और कृष्णका कृष्णत्व प्रत्यक्ष और अनुमानगम्य नहीं है। वह भी जब वचनपर श्रद्धा होगी, तब मालूम पड़ेगा। आहा!

महात्माका महात्मापना श्रद्धागम्य है। ये खाते हैं; परन्तु, भोजनमें इनकी आसक्ति नहीं है। ये कर्म करते हैं; परन्तु, कर्ममें इनका अहं भाव नहीं

है। ये परिच्छिन्न दीखते हैं; परन्तु, ये अपरिच्छिन्नसे एक हैं। महात्माका व्यक्तित्व प्रत्यक्ष होनेपर भी उसका जो महत्त्व है, उसकी जो अनुभूति है, वह प्रत्यक्ष नहीं है। क्रिया देखकरके जो अनुमान किया जाता है, वह तो बाहरसे उसके अन्तःकरणपर थोपा जाता है। जो प्रत्यक्ष नहीं है, उसका अनुमान भी नहीं होता है। कोई महात्मा है—जीवन्मुक्त है, इसका पता शास्त्रप्रमाणके द्वारा लगता है। शुकदेव जीवन्मुक्त हैं। ऋषभदेव जीवन्मुक्त हैं। जड़भरत जीवन्मुक्त हैं। हमने भी लोगोंके बतानेसे कई महात्माओंका सत्संग करके, उनके ज्ञानको देखकरके, उनकी रहनीको देखकरके, उनपर श्रद्धा की कि ये महात्मा हैं। महात्माका महात्मापना श्रद्धागम्य है। आत्माका परमात्मापना श्रद्धागम्य नहीं है। अपना-आत्माका परमात्मापना साक्षात् अपरोक्ष है। जैसे **'दशमत्वमसि'**-तुम ही दसवे पुरुष हो—वचनके उच्चारण करते ही, श्रद्धाको बीचमें डाले बिना, अपरोक्षसाक्षात्कार होता है, वैसे श्रुति वचनके उच्चारण करते ही आत्माका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है।

यह जीवन्मुक्ति महात्माका वर्णन है। यह जीवन्मुक्ति परमात्माका वर्णन नहीं है। जब हम परमात्माका वर्णन करेंगे, तब हम अपनेसे—आत्मासे अभिन्नके रूपमें करेंगे। अगर कोई अपनेसे अन्यके रूपमें परमात्माको सिद्ध करने लगेगा, तो हम उसका खण्डन कर देंगे। अगर कोई यह वर्णन करे कि अपनेसे-आत्मासे अन्य कोई परमात्मा है, तो उसको हम तुरन्त काट देंगे। असलमें, यही काम हम करते हैं। लोगोंकी समझमें यह बातन नहीं आती है। जब महात्माका वर्णन करना होगा, तब वह तो एक मुमुक्षुके लिए होगा। महात्माका वर्णन तो एक जिज्ञासुके लिए होगा—एक साधकके लिए होगा। बच्चेको बताया जाता है कि 'यह तुम्हारे पिता हैं'। 'यह तुम्हारी माता हैं'—यह भी बच्चेको बताया जाता है। 'बेटा! तुमको यह काम करना चाहिए और यह काम नहीं करना चाहिए'—यह भी बताया जाता है। बच्चेको अपने माता-पिताका ज्ञान वचनसे होता है। बच्चेको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान वचन और अनुकरण—दोनोंसे होता है। स्वतन्त्र छोड़ देनेपर—जंगलमें छोड़ देनेपर तो उसको खड़ा होकर चलना भी नहीं आता है और हाथ से उठाकर खाना भी नहीं आता है; ऐसे-ऐसे बच्चे मिले हैं, जिनको केवल दो पाँवोसे चलना नहीं आता है, क्योंकि, वे भेड़ियेके साथ रहे। ऐसे-ऐसे बच्चे मिले हैं,

जिनको हाथसे उठाकर खाना नहीं आता है—जो मुँहसे खाते हैं, क्योंकि, उन्होंने अनुकरण नहीं किया। यदि वे माँ-बापके साथ रहते, तो उनको अनुकरण करनेको मिलता।

शास्त्रवचन और श्रद्धाके सहकारसे दूसरेका महात्मापना ज्ञात होता है। अपनी दृष्टिसे स्वयं वह महात्मा नहीं होता है। अपनी दृष्टिसे तो होता है—ब्रह्म। स्वदृष्टिसे तो वह ब्रह्म है। अपनी दृष्टिसे जो महात्मा है, वह तो अभिमानी है। वह तो देहाभिमानी है—अतःकरणाभिमानी है-गुणाभिमानी है। वह तो परिच्छिन्न है। अपनी दृष्टिसे जो महात्मा है, वह महात्मा है ही नहीं। अपनी दृष्टि से जो परमात्मा है, श्रद्धालु पुरुषोंकी दृष्टिसे वह व्यक्तिके रूपमें महात्मा होता है और विचारकी दृष्टिसे वह परमात्मासे एकताका ज्ञान प्राप्त किये हुए होता है।

आओ! हम महात्माको कैसे पहचानें? शास्त्रमें आया—'विमुक्तस्य विमुच्यते।' जो इसी जीवनमें कामके उफानसे, क्रोधके उफानसे, लोभके उफानसे, चोरी-बेईमानीसे, छल-कपटसे, आचार-व्यभिचारसे बच गया है, उसके दोषोंका पाचन हो गया है। अब यह कच्चा दूध नहीं है। अब यह मलाई है। अब यह रबड़ी है। है न? श्रद्धालु लोग अपने दोषोंका पाचन करते हैं।

महात्माका वर्णन अलग और परमात्माका वर्णन अलग होता है। वचन और श्रद्धाके सहकारसे महात्माका दर्शन होता है। जब लोग बताते हैं कि 'ये महात्मा हैं' तब जाकर उनके सद्‌गुणोंको देखते हैं, उनके व्यक्तित्वको देखते हैं और यह श्रद्धा करते हैं कि इनका अन्तर बड़ा उज्ज्वल है। महात्माका दर्शन ऐसे होता है। परमात्माके दर्शनमें वचन भी बाधित हो जाते हैं। अपने अर्थका साक्षात्कार करानेके बाद वचन बाधित हो जाते हैं। जैसे—मिथ्या भाषण। अर्थके मिथ्यात्वका साक्षात्कार हो जानेके बाद भाषण मिथ्या होगा। यदि कोई मिथ्या भाषण करे, तो मिथ्या भाषण मिथ्या कब होगा? जब उस भाषणके द्वारा प्रतिपादित अर्थके मिथ्यात्वका साक्षात्कार होगा तब मालूम पड़ेगा कि वह भाषण मिथ्या है। नहीं तो, भाषण तो कानमें सुनायी पड़ता है और वह सच्चा है। भाषण तो सच्चा है; परन्तु, अर्थ झूठा होने पर वह भाषण भी झूठा हो जायेगा। इसी प्रकार, इस

मिथ्या वचन मिथ्यात्वका-भेदका प्रतिपादन करने वाला वचन है। अभेद रूप अर्थका साक्षात्कार हो जानेपर भेद प्रतिपादक वचन सब-के-सब मिथ्या हो जायेंगे। अभेद प्रतिपादक वचन निष्प्रयोजन होनेसे मिथ्या हो जायेंगे। यह उनकी दशा होगी। अच्छा! अभेदका साक्षात्कार बिना श्रद्धाके और बिना वचनके सहकारके होता है। अपने स्वरूपका साक्षात् अपरोक्ष साक्षात्कार होता है। यह बात दुनियामें बहुत कम लोग जानते हैं कि परमात्माका वर्णन निराला है और महात्माका वर्णन निराला है।

व्यक्तिगत गुण-वासना-क्षय और मनोनाशके सहकारसे तत्त्वज्ञानीका जो वर्णन है, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं। जब तत्त्वका वर्णन करेंगे, तब वासना-क्षय और मनोनाशसे विविक्त करके-अलग करके वर्णन करेंगे कि तत्त्वका स्वरूप कैसा होता है? हमारा जो विभाग है न, वह तत्त्व-निरूपणका-सिद्ध वस्तुके निरूपणका विभाग है। इसलिए, हम आपको कभी-'माण्डूक्य-कारिका', कभी 'ब्रह्मसूत्र' और कभी 'अष्टावक्र गीता'-ऐसे सुनाते हैं। 'जीवन्मुक्ति-विवेक'का जो प्रकरण है, वह महात्माके प्रतिपादनका विभाग है।

आपको जीवन्मुक्तिका एक सीधा-सा वर्णन सुना देते हैं। यह श्रुतियोंमें वचनसे तो सिद्ध है। अथ मृत्योर्मृत्यो भवति। अत्र ब्रह्म समश्नुते। यहीं इसी व्यक्तिगत जीवनमें ब्रह्मसुखका आस्वादन होता है। सुख ब्रह्म और व्यक्तिगत जीवन तो बहुत छोटा। देखो! आपको वासना-क्षयकी एक सीधी-सी युक्ति बताते हैं। हाँ! बहुत ही सीधी-सी युक्ति है। आप रोज सुषुप्तिको देखते हैं न? आप जागते-जागते सुषुप्तिको देखिये। हाँ बस! इसमें कोई मुश्किल नहीं है। हम आपको कोई ऐसी बात नहीं सुना रहे हैं जो आपकी समझमें न आवे। आप जागते रहिये और देखिये सुषुप्तिको। बस! आज आपको इतनी ही बात सुनानी है। अब कल इसकी युक्ति सुनावेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## 12

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!

जो लोग वेदान्तमें जैसा क्रम है, उस क्रमसे अन्तःकरणकी शुद्धि करके तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं, उनके लिये तो वासनाक्षय-मनोनाशका कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। परन्तु, अगर कोई घूस देकरके डिग्री प्राप्त कर ले, तो बादमें उसको अपनी योग्यता बढ़ानी पड़ती है। केवल 'सर्टिफिकेट' से काम नहीं चलता है। अपनी योग्यता बढ़ानी पड़ती है। यह बात आपके ध्यानमें आयी न? जिसने सचमुच अभ्यास करके पहली कक्षासे लेकर एम०ए० तक सुचारु रूपसे अध्ययन किया है। और एम०ए० की डिग्री प्राप्त की है, उसके लिए तो फिर तैयारीकी कोई बात नहीं उठती है। परन्तु, जो पहलेका स्वाध्याय ठीक-ठीक पूर्ण किये बिना, पहलेका अभ्यास ठीक-ठीक पूर्ण किये बिना ही एम०ए० की डिग्री प्राप्त कर लेता है, उसको फिर अपनी योग्यता बनानी पड़ती है और बढ़ानी पड़ती है।

यदि ज्ञानके पूर्व उसी योग्यताको बढ़ाते हैं, तो उसको शम-दम आदि सम्पत्ति कहते हैं। अगर शम-दम आदिकी योग्यता प्राप्त किये बिना तत्त्वज्ञानी बन गये तो उनको फिरसे वासनाक्षयके लिए शम-दम आदिकी जरूरत पड़ती है। तत्त्वज्ञानके पूर्व शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधानको ज्ञानका साधन कहा जाता है। यदि किसीको अभिमान हो गया-समझो कि वह मान बैठा कि 'मैं तो ज्ञानी ही हूँ', तो उसके लिए यह तो नहीं कह सकते कि 'तुम अज्ञानी हो'; क्योंकि, कोई हजार कहे कि 'तुम अज्ञानी हो', तो वह माननेको तैयार नहीं होगा। उसको नरकका डर दिखाओं, तो नहीं मानेगा। स्वर्गका लालच दिखाओ, तो नहीं मानेगा। तुम्हारी वासनायें तुम्हारे जीवनमें दुःखका सर्जन कर रही हैं। इन वासनाओंका विसर्जन करनेके लिये उन्हीं शम-दमादिकोंको जब ज्ञानके बाद अभ्यासमें ले आते हैं, तब उनका नाम वासनाक्षयका साधन हो जाता है।

असलमें, आदमीको कोई दुःख नहीं देता है। देखो! हमारी भरी जवानीमें जेलखानेमें जाना और पुलिसके हाथों पिटना दुःख नहीं माना जाता था। 'जवाहरलाल नेहरू'पर भी डण्डे पड़ जाते थे। 'गोविन्दवल्लभ पन्त' भी पिट जाते थे। उनको तो बहुत चोट लगी थी। उस समय जेलमें जाना, पिटना, गाली खाना—यह सब सुखका साधन था। क्यों? एक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये वैसा करना पड़ता है। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिये वैसा करना पड़ता है। भला बताओ! कौन भलेमानुस है, जो जेल जाना पसन्द करे, जो पिटना पसन्द करे, जो गाली खाना पसन्द करे? हैं? अब यदि उस समय कह देते कि 'यह जेल जाना तो अस्वाभाविक है, यह पिटना तो अस्वाभाविक है, यह गाली खाना तो अस्वाभाविक है', तो स्वतन्त्रता तो प्राप्त नहीं होती। परतन्त्रता ही बनी रहती। परतन्त्रता मिटानेके लिये प्रयास-अभ्यास करना पड़ता है।

असलमें, बन्धन जो है, वह साक्षीमें नहीं है। साक्षी तो बन्धनका भी साक्षी है। लेकिन, उसने चित्तके साथ अपनेको एक कर दिया है। चित्तका बन्धन और साक्षीका नित्य अस्तित्व—दोनों आपसमें मिल गये हैं। चित्तमें जो वासनाके बीज हैं, वह साक्षीमें मालूम पड़ते हैं; क्योंकि, दोनों एकमें मिल गये हैं। साक्षीमें माने मुझमें। अतः मालूम पड़ता है कि 'मैं वासनावान् हूँ। मुझे यह चाहिये, यह चाहिये।' यह चाहिए '**कामान् यः कामयते मन्यमानः सः कामभिर्जायते तत्र तत्र।**' यह श्रुति है। जो संसारके भोगोंको बहुत बड़ी वस्तु समझ करके उनके पीछे दौड़ता है, उसको जहाँ उसकी कामनापूर्त्ति हो, वहाँ जाना पड़ता है। उसको चाहे 'अण्डमान' भेजो और चाहे 'पेरिस' भेजो। उसकी वासना उसको वहाँ ले जायेगी। असलमें, वासना ही वाहन है। आत्मामें आना-जाना नहीं है। हम वासनाके वाहनपर-कामनाकी मोटर पर चढ़कर शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धके पास जाते हैं वही श्रुति कहती है—'**पर्याप्त-कामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।**' 'इहैव' को हम बहुत जोर देकर बोलते हैं, जो 'पर्याप्त काम' है। आप पर्याप्त कामका अर्थ यह नहीं समझना कि बेहोश है। हाँ! पर्याप्त कामका अर्थ है—होश-हवासमें। कामना-निवृत्तिका क्या अर्थ है? आप गीतासे पूछिये। '**स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।**' कौन?

जो समुद्रकी तरह 'आपूर्य-माणमचलप्रतिष्ठं' है। संसारके सारे विषय उसके सामने आते हैं। जैसे सारी नदियाँ समुद्र में जाती हैं, वैसे विषयकी धारा स्वयं उसके पास आती है।

अगर आप बुरे अर्थमें न लें, तो हम आपको एक बात सुनाते हैं। नारायण! देखो! आप उसका बुरा अर्थ मत लेना; क्योंकि, यह भी सम्भावना है कि कोई-कोई उसको गलत समझे। मोक्षकी-तत्त्वज्ञानकी अनेक साधनायें हैं। उन साधनाओंकी फलश्रुति है। फलश्रुति माने यह साधना करनेपर क्या फल आता हैं? यदि कहो, तो हम आपको थोड़ा-सा बोलकर बता दें। आप लोगोंके मनमें कई बार महात्माओंके प्रति शंकाका उदय होता है। है ना? तो सुनो!

**कुरंगाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं**
**दशप्रत्यक्षौणी पतिरपि धरित्रीपरिदृढः।**
**रिपुः कारागारं कलयति परं केलिकलया**
**चिरं जीवन्मुक्तः स च भवति भक्तः प्रतिजनुः।।**

सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ उसके पीछे-पीछे घूमने लगती हैं। भले वह बुड्ढा हो। उसके दाँत टूट गये हों। झुर्रियाँ पड़ गयी हों। डण्डा लेकर चलता हो। **कुरंगाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं**। बनावट से नहीं; बल्कि, प्रेमसे युक्त होकर के सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ उसके पीछे-पीछे घूमती हैं। **दशप्रत्यक्षौणीपतिरपि धरित्रीपरिदृढः**। धरतीका मालिक उसके वशमें हो जाता है। **रिपुः कारागारं कलयति**। जो उससे दुश्मनी करता है, उसको जेलखानेमें जाना पड़ता है। **चिरं जीवन्मुक्तः**। वह चिरकाल तक दीर्घायुष्यका जीवन व्यतीत करता है। अर्थात् उसकी आयु भी बढ़ जाती है। यह बात शास्त्रमें एक जगहपर नहीं; अपितु, सौ जगहपर लिखी हुई है। यह केवल एक उदाहरणमात्र सुनाया।

आप गीताका यह श्लोक पढ़ते होंगे—

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।**
**तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।**

संसारके सारे विषय-भोग उसके सामने ऐसे आते हैं, जैसे नदियाँ आ-आकरके समुद्रमें अपने आप गिरती हैं। किसके सामने? जो समुद्रकी

तरह अपने स्वरूपमें बैठा हुआ जीवन्मुक्त महापुरुष है। जो अपनी प्रतिष्ठा, अपनी वेला, अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता है, निडर होकरके चिड़िया भी उसके सिरपर बैठ जाती है और निडर होकरके मच्छर भी उसको काट लेते हैं; क्योंकि, उससे किसीको भय नहीं है। आप लोग बुरे अर्थमें इस बातको मत लेना। हम गीताके इस श्लोकके अर्थका ही अनुसन्धान कर रहे हैं। संस्कृतमें 'अप' शब्द बहुवचनान्त है। 'आपः' माने बहुतसे जल। बूँद-बूँद जल। झरना-झरना जल। नदी-नदी जल। समुद्रका दृष्टान्त है। नाना नदियोंका जल समुद्रकी ओर दौड़ता है और अपना जल उसमें डाल रहा है; परन्तु, समुद्र अपनी प्रतिष्ठामें अचल है। **तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे।** संसारके जितने अच्छे भोग हैं, जितनी अच्छी चीजें हैं, वह उस जीवन्मुक्त महापुरुषकी ओर दौड़-दौड़कर आती हैं और उसमें समा जाती हैं। जैसे मिट्टीका ढेला धरतीपर आता है और जैसे आग सूर्यकी ओर जाती है, वैसे अपने मूलभूत परमात्मासे एक हुआ जो महात्मा है, उसके प्रति सारे भोग अपने आप ही दौड़ते हैं। अब मूर्खोंको समझानेका तो कोई तरीका ही नहीं है। जैसे सब जल समुद्रकी ओर; जैसे सब प्रकाश सूर्यकी ओर; जैसे पेड़में लगे हुए फल धरतीकी ओर आते हैं, **तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे।** 'न्यूटन' का-'नवतनु' का यह 'गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त' है। संस्कृतमें न्यूटनको नवतनु बोलते हैं हो। संसारके सब भोग उसके पीछे भागते हैं। वह भोगके पीछे नहीं भागता है। वह परछाईंके पीछे नहीं भागता है। परछाईं उसके पीछे चलती है। दुनियाके भोग उसकी परछाईंकी तरह हैं। वह जिधर जाता है, भोग उसके पीछे उधर चलते हैं।

देखो! हम बड़े-बड़े महात्माओंकी चर्चा छोड़ देते हैं भला! हम तो उन छोटे-छोटे महात्माओंकी बात जानते हैं, जो चुपचाप अपनी जगहपर बैठे हैं। हाँ! अपने स्वरूपमें बैठे हैं। अपनी जगहमें बैठनेका अर्थ है-अपने स्वरूपमें बैठना। जीवित दशामें ही, वासनाकी मोटरपर चढ़कर दूसरेके घरमें न जाना। जब दूसरे अपने घरमें आते हैं, तब भी उनके साथ बँध नहीं जाना। नहीं तो, वह घसीट ले जाते हैं भला! जीवन्मुक्त निर्द्वन्द्व होता है। जीवन्मुक्त माने जिन्दा है और मुक्त है। अपने घरपर बैठा हुआ है। **स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।** उसको शान्ति मिलती है। यह दुनियाकी

वस्तुओं और उनके भोगके पीछे दौड़नेवालेको कभी शान्ति नहीं मिलती है। हाँ!

चित्त और आत्मामें ग्रन्थि पड़ गई है। चित्तने अपनी वासनाको आत्माके सिरपर मढ़ दिया है। एक बार 'नन्दाजी' ने 'सदाचार समिति' बनायी। मुझे नाम ठीक याद नहीं है। कुछ ऐसा ही नाम था। सदाचार समिति बनानेके बाद नन्दाजी घण्टे-दो-घण्टे बैठते थे कि भ्रष्टाचारकी शिकायत करनेके लिये चाहे जो आकर हमसे मिले। वह तो अपने बँगलेमें बैठते थे। वहाँ कैसे कोई जाये और उनसे मिले? चपरासी जिनसे पैसा लेता था, उनको उनके पास जाने देता था। जो पैसा न दें, उनको नहीं जाने देता था। रोक देता था। इससे लोग नन्दाजीकी निन्दा करने लगे। अब भला बताओ! चपरासीकी गलतीसे नन्दाजीका क्या वास्ता? क्या रिश्ता? कहनेका अभिप्राय यह है कि असलमें, यह चित्त चपरासियोंके रहनेकी जगह है।

सारी वासनाओंका जो मूलभूत बीज है, उसका नाम है—चित्त। यह क्या करता है? यह कर्मचारी लोग—सेक्रेटरी लोग बड़ोंके नामसे फोन कर देते हैं कि 'कलेक्टर साहब! मिनिस्टरकी यह इच्छा है और आप ऐसा कर दीजिये।' अब कलेक्टर बेचारा मिनिस्टरकी इच्छाका नाम सुनकर डर जाता है और मिनिस्टरको पता ही नहीं होता है। ऐसे भी अनेक प्रसंग होते हैं। हाँ! सेक्रेटरी लोग कहते हैं कि मिनिस्टरोंकी यह इच्छा है और उनसे पता लगानेपर मालूम पड़ता है कि उनकी यह इच्छा बिलकुल भी नहीं है। इसके बारेमें उनकी कोई दस्तान्दाजी भी नहीं है। यह चित्त जो है, वह आत्माके नामपर अपनी वासनाओंको आत्माके साथ जोड़ देता है।

एक बार एक आदमी बदमाशीमें पकड़ा गया। उस बदमाशने यह बयान दिया कि 'अमुक महात्मा ऐसा करते हैं; अमुक महात्मा ऐसा करते हैं; अमुक महात्मा ऐसा करते हैं; और, उनकी इच्छाके अनुसार हम भी ऐसा करते हैं।' आत्माका नाम लेकरके यह चित्त अपनी ही वासनाको आत्माकी वासना बताता है—हमारे मैं की वासना बताता है और आत्माके अस्तित्वसे लाभ उठाता है।

यह साक्षी देवता क्या करते हैं? आत्मा क्या करता है? आत्मा अपनी

नित्यताको, अपनी विषयानुभूतिको-विषयप्रकाशकताको, अपने स्वरूप-भूत आनन्दको चित्तके हवाले कर देता है। आत्माके तीन धर्म चित्तमें आ जाते हैं। नित्यता, अनुभूति और आनन्द। चित्तका समग्र वासनापुंज आत्माके साथ जुड़ जाता है। इसलिये, हम अपने को वासनावान् मानते हैं। असलमें, वासनावान्पना जो है, वह एक अविचारित ग्रन्थि है। अज्ञानमूलक ग्रन्थि है। भ्रान्तिमूलक ग्रन्थि है। कल्पित ग्रन्थि है। साक्षी और चित्तके बीचमें गाँठ पड़ गयी है। चित्तके धर्मको आत्मा अपनेमें स्वीकार कर रहा है। चित्तके पास स्पुतनी बहुत हैं। ये अय्यार हैं। जैसे दूसरोंसे मिलानेवाली औरतें होती हैं, वैसे ये वृत्तियाँ चित्तके अधीन है, चित्तकी दासी हैं। ये चित्तवृत्तियाँ आत्मदेवको विषयोंसे मिलानेका काम करती हैं।

जीवन्मुक्तिका अर्थ क्या होता है? ये जो वृत्तियाँ हैं और इनका जो मालिक है, जिसमें जाकरके ये सोती हैं--लीन होती हैं; जो बीज है--चित्त, उनके साथ आत्माकी असंगता। असंगता-साक्षीपना। केवल देख रहा है। उनके बदलनेपर बदलता नहीं है। वृत्तिमें, चित्तमें लम्बाई-चौड़ाईकी ओर देखकर जो देश-कल्पना होती है; विषयोंकी ओर देखकर उनकी जो काल-कल्पना होती है; और, उनकी प्रतीतिमात्रसे उनकी सत्ताका जो भ्रम होता है, उन सबको यह आत्मदेव देख रहा है। यह बदलने वाली वृत्तियोंका साक्षी है। वृत्तियोंमें आने वाले विषयोंका साक्षी है। विषयों की उपाधिसे मालूम पड़ने वाले देश-कालका साक्षी है। उनके बीजका साक्षी है। वह बीज दशा सुषुप्तिमें भी रहती है। सुषुप्तिका भी साक्षी है। सुषुप्ति-कालमें अज्ञान होता है। उस अज्ञानमें ही ये सारी वृत्तियाँ, चित्तकी सत्ता-महत्ता, देश-काल, सब-के-सब लीन हो जाते हैं। यह हुई एक बात।

आपको सुनाना यह था कि जीवन्मुक्तिका अर्थ यह होता है कि हम जीवनकालमें यह जो बाहरकी वस्तुओं से बँधे हुए हैं, यह अर्थ की वासना हुई। हम यह जो व्यक्तियोंसे बँधे हुए हैं, यह भोगकी वासना हुई। हम यह जो अमुक प्रकारकी वृत्तियाँ बनी रहें यह धर्मवासना हुई। वृत्तियाँ उठें ही नहीं, यह योगवासना हुई। वृत्तियाँ हमारे संस्कारके अनुकूल रहें-हमारी संस्कृतिके अनुकूल रहें, यह धर्मवासना है। यह व्यक्ति हमारे साथ जुड़ा रहे, यह कामवासना है। यह वस्तु हमारे साथ जुड़ी रहे, यह अर्थवासना है।

अर्थवासना-कामवासना-धर्मवासना-योगवासना भला! इन सब वासनाओंको और वासनाओं के बीजोंको चित्त अपने पेटमें रखता है। उस चित्तसे एक होकरके हम अपनेको कामकामी मानते हैं। कामकामीको कभी शान्ति नहीं मिल सकती है।

**तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे। सशान्तिमाप्नोति न कामकामी।**

विषय-भोग स्वयं उसके पास आते हैं और वह अपने स्वरूपमें बैठा रहता है। समुद्र अर्थात् मुद्रा सहित। समुद्र कभी शान्त मुद्रामें होता है और कभी विक्षिप्त मुद्रामें होता है। ये दो मुद्रा हैं। मुद्रा माने ऐसे बैठना। मुद्रा माने **'सुमुखं संपुटं चैव विकासं विस्तृतं तथा।'** शरीरकी मुद्रा तरह-तरहकी बनती है ना? गुस्सा आनेपर एक मुद्रा होती है और प्यार आनेपर शरीरमें एक मुद्रा आती है। मुद्रा माने चेहरे का 'पोज' (Pose)। संसारके विषय-भोगोंकी उपस्थितिमें भी जिसका 'पोज' बना रहता है, जिसकी 'पोजीशन' (Position) बनी रहती है अर्थात् जो अपने पोज और पोजीशन नहीं छोड़ता है; अपनी जगहपर बिलकुल ठीक-ठीक बैठा हुआ है, उसको तो शान्ति मिलती है। जो वासनाओंकी मोटरपर चढ़कर इधर-से-उधर भागता फिरता है, उसको शान्ति नहीं मिलती है। यह बात आपने गीता में पढ़ी है। अच्छा! भला बताओ! वह जीवनकालकी है कि मरनेके बादकी है? वह जीवनकालकी है भला! स्थितप्रज्ञ जिन्दा होता है। मुर्देका नाम स्थितप्रज्ञ नहीं होता है। अगर आप यह समझते हों कि मुर्देका नाम स्थितप्रज्ञ है। समाधिस्थका नाम स्थितप्रज्ञ है, तो आपकी समझका फेर है। स्थितप्रज्ञ कभी समाधिस्थ होता है और कभी व्यवहारस्थ होता है। **'नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।'** आह! जीवन्मुक्तिकी बात यह है। यही बात **'अथ मृत्योमृतो भवति। अत्र ब्रह्म समश्नुते।'** में कही गयी। यह जीवन्मुक्तिका लक्षण है।

दूसरी श्रुति कहती है-**'स चक्षुश्चक्षुरिव। सकर्णोऽकर्म इव। समना अमना इव। स प्राणो अप्राण इव'**। क्या बैठा है? अभी समाधि है। आसन करनेका नाम समाधि नहीं है भला! असलमें, समाधि साध्य नहीं हैं। समाधि तो एक साधन है। यह बात भी कम लोगोंको मालूम है। आजकल जो योग की शिक्षा देनेवाले लोग हैं, उनको भी नहीं मालूम है।

योगके आठ अंग हैं। उनमें आठवाँ अंग समाधि है। अंगी योग है। आठवीं चीज समाधि है। अंग एक होता है। हाथ भी अंग है। पाँव भी अंग है। नाक भी अंग है। आँख भी अंग है। सिर भी अंग है। शरीर अंगी है। जब बोलते हैं—अष्टाङ्गानि—योगके आठ अंग हैं, तब स्पष्ट है कि समाधि भी योगका अंग है। समाधिका नाम ही योग नहीं है। आँख है। आँख कभी गुस्सेसे भर जाती है और कभी प्यारसे भर जाती है। मुहब्बत और गुस्सा—दोनों आँखको दबा लेते हैं। जीवन्मुक्तकी आँख ऐसी है कि वह देखता तो है; परन्तु, प्यार और गुस्सा—दोनों उसकी आँखोंमें छा नहीं जाते। उसको अभिभूत नहीं कर लेते। उसके कान तो हैं और लोगोंकी आवाज भी सुनता है; परन्तु, सुनी हुई बात उसके ऊपर अपना असर नहीं जमा बैठती। उसके मन तो है। परन्तु, वह मनमें आयी हुई कल्पनाको प्रतीतिमात्र समझता है। **समना अमना इव।** वह समन होने पर भी अमनके समान है। हम बात सुनाने जा रहे थे—जीवन्मुक्त कैसा है? आँख वाला होने पर भी प्यार और गुस्सा उसकी आँखपर छा नहीं जाते। आँख माने दृष्टि—ज्ञानदृष्टि। राग और द्वेष उसकी ज्ञानदृष्टिको अभिभूत नहीं कर लेते। निन्दा-स्तुति उसके कानोंको अपने साथ खींच नहीं ले जातीं। यदि खींच ले जाती हैं, तो आदमी बहरा हो जाता है। अगर तारीफ सुनते-सुनते आदमीका कान खिंच गया, तो वह बहरा हो जाता है। वह फिर दूसरी बात सुनना पसन्द ही नहीं करता है। यह तो बड़ा भारी रोग है।

मैंने कल 'गगनबिहारीलाल मेहता', जो पहले अमेरिकामें राजदूत थे, का एक लेख **'नेतागिरीका रोग'** पढ़ा। उन्होंने पूरा उसका निदान और उसकी चिकित्सा सब बतायी है। जैसे-जैसे **नेतागिरीका** रोग आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे उस रोगीको होता है कि लोगोंकी नजर हमारी तरफ खिंचे। हमारा नाम अखबारमें छपे। हमारी फोटो अखबार में छपे। हम किसी संस्थाके-म्युनिसिपैलिटीके सदस्य हो जायें। यदि संस्थामें आदर न हो, तो नई संस्था कैसे बना ली जाती है? आहा? कैसे-कैसे **नेतागिरीका** रोग आगे बढ़ता है? इसकी शान्तिका उपाय क्या है? यह सब उनके लेखमें पढ़कर बहुत मजा आया। उन्होंने बिलकुल ठीक बताया कि **नेतागिरीका** रोग दुःसाध्य रोग होता है। जिसको यह रोग लग गया, वह दुश्चिकित्स्य होता है।

अब यह जीवन्मुक्तको देखो। वह तो **समना अमना इव**। उसको मालूम पड़ता है कि सूर्योदय हुआ; सूर्यास्त हुआ; उसने भोजन किया; वह रास्तेमें चला; परन्तु, वह दुनियाकी किसी चीजको, किसी स्थितिको न अपने मनमें पकड़ता है और न तो अपने मनको वहाँ छोड़ता हुआ चलता है। दुनियादार लोग क्या करते हैं? जो चीज अच्छी लगती है, वहाँ अपने मनका एक टुकड़ा फेंक देते हैं—छोड़ देते हैं। जो चीज बुरी लगती है, उसका जहर अपने मनमें इकट्ठा कर लेते हैं। **समना अमना इव**। हाँ! ऐसे। **स प्राणोऽप्राण इव**। आसनसे बैठना या **भस्त्रिका** प्राणायाम करना—साँसोकी कसरत करना या इन्द्रियोंसे द्वन्द्व-युद्ध करना-मल्लयुद्ध करना या इन्द्रियोंके साथ कुश्ती लड़ना—ये सब जीवन्मुक्तके जीवनमें नहीं होता है। आहा! उनके मनको सारी सृष्टि भास रही है। उसकी साँस चल रही है। उसके कान सुन रहे हैं। उसकी आँखें देख रही हैं; परन्तु, वह **समना अमना इव**। **स प्राणोअप्राण इव**।

अब आपको जीवन्मुक्तिके बारेमें एक बात बताते हैं। अब समझ लो कि इन लोगोंके बीचमें माने जीवन्मुक्तोंकी टोली देखते-देखते कोई पैंतालिस वर्षोंसे तो ज्यादा ही हो गया है। आपको क्या बतायें?

*सर सर हंस न होहिं, होहिं गजराज न वन वन।*

× × ×

*लालों की नहीं बोरियाँ, हंसों की नहिं पाँत।*
*सिंहों के नहीं लेहड़े, सन्त न चलें जमात।।*

हर सरोवरमें हंस नहीं होते हैं। हर वनमें हाथी नहीं होते हैं। सिंहोंके लेहड़े नहीं होते हैं। सन्त जमात बाँध करके नहीं निकलते—

रागो लिङ्ग-अबोधस्य चित्त-व्यायाम-भूमिषु।
कुतः शाद्वलतः यस्याग्निः कोटरे तरोः।।

जिसके खोडरमें आग जल रही है, वह पेड़ कैसे हरा रह सकता है? यह दृष्टान्त है। कुतः शाद्वलतः? शाद्वलतः माने हरियाली। जिस पेड़में खोडरमें आग जल रही है, उस पेड़में हरियाली कैसे रह सकती है? जिसके हृदयमें राग-द्वेषकी आग प्रज्वलित हो रही है, वह जीवन्मुक्त कैसे हो सकता है? अथवा वह जीवन्मुक्तिके मार्गपर कैसे चल सकता है?

**रागो लिङ्गम् अबोधस्य।** अज्ञानकी पहचान है–राग। इस 'राग' शब्दके निर्माणमें भी बड़ी कारीगरी है। 'रेफ' जो है न, वह अग्निबीज है। जिसको रं बोलते हैं। तत्त्वोंके बीज होते हैं। पृथिवी का बीज है–लं। जलका बीज है–वं। अग्निका बीज है–रं। वायुका बीज है–यं। आकाशका बीज है–हं। धातुओंके बीज होते हैं। बीजाक्षर। रागमें 'रेफ'का प्रयोग करके साफ बता दिया कि जहाँ तुम राग कर रहे हो, वहाँ आग है। चाहे अभी वह राखके भीतर छिपी हुई हो और चाहे धधक रही हो–भभक रही हो; लेकिन, जिस हृदयमें राग है, उसमें आग जरूर है। देखो! रागमें एक तो रेफ है और एक आग है। क्या और कुछ है? रागमें आग तो अपने आप ही लगी हुई है। बोले–नारायण! यदि रागमें आग लगी है, तो चेहरेपर मुस्कान भी तो है। अरे! झूठी है। यह मुस्कान तो 'ब्यूटी हाऊस' (Beauty-House) की सीखी हुई है। यह आँखोंमें तो बड़ा प्यार झलक रहा है। अरे! यह तो अभिनय है। प्यारका पार्ट खेला जा रहा है। भूमिका अदा हो रही है। महाराज! हमने ऐसे–ऐसे प्रेमके अभिनेता देखे हैं कि आप अभिनयको सत्य मान लो। यहाँके सेठोंका सम्बन्ध तो होगा–ही–होगा। जब सेठोंसे सम्बन्ध होता है, तब उनके पास अभिनय करने वाली जो अभिनेत्रियाँ आती हैं, उनसे भी पहचान हो जाती है। यह महाराज! सब–का–सब नाटक है। दिलमें तो आग लगी है; परन्तु, चेहरेपर मुस्कानका अभिनय है और होठोंपर प्यारके संवाद हैं। रागो लिङ्गं अबोधस्य। अज्ञानताकी पहचान क्या है? हृदयका राग–द्वेषकी आगमें फँस जाना। धधकती हुई आग होती है। भभकती हुई आग होती है। ढँकी हुई आग होती है। आगकी कोई–न–कोई दशा है। रागकी कोई–न–कोई दशा है। जहाँ राग है, वहाँ जलन है। हम जो दूसरेसे जलते हैं, उसमें दूसरेकी बुराई हमको जलाती है कि उसके विरुद्ध कहीं हमारा राग हमको जलाता है? यह विचार करना।

अच्छा! अब एक बोले–'महाराज! आप जब कभी–कभी तत्त्वका निरूपण करते हो, तब कहते हो कि राग–द्वेष तो अन्तःकरणमें रहते हैं। उनको रहने दो। तुम तो साक्षी–कूटस्थ ब्रह्म हो।' नारायण! हमारी जीभ पकड़ेगा कि नहीं पकड़ेगा? वह हमारी जीभ पकड़ेगा। हम जानते हैं।

पकड़ने वाले सामने बैठे हैं। तुरन्त जीभ पकड़ेंगे कि '**काम-क्रोध मनके धरम, निजमें मानत अन्ध।**' ये काम-क्रोध तो मनके धर्म हैं और अन्धा आदमी उनको अपने आपमें मानता है। यह सब बात हमको मालूम है। देखो! तत्त्वको समझानेके लिये हम यह कहते हैं कि अन्तःकरणसे और उसके धर्मसे तुम्हारा सम्बन्ध नहीं है। तत्त्वज्ञान करानेके लिए ऐसा कहते हैं। जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखका अनुभव करनेके लिये यह कहते हैं कि तुम्हारे जीवनमें राग-द्वेष नहीं होना चाहिये। प्रतिपाद्य विषय दो हैं। एक है—तत्त्वका निरूपण और दूसरा है—जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखका निरूपण।

अब आप देखो! एक आदमी घड़ा ले आया। एक आदमी आम ले आया। एक आदमी इमली ले आया। तीनोंका कहना है कि इमली खट्टी है; आम मीठा है; और, घड़ा बेस्वाद है। वैसे घड़ेकी मिट्टीमें भी एक स्वाद होता है; क्योंकि, उसमें रसतो अनुस्यूत है। आहा! अब जो मिट्टीका विचार कर रहा है, उसने कहा कि इमली मिट्टी है। यह ठीक है। आगमें जला दो, तो इमली मिट्टी। आमको आगमें जला दो, तो मिट्टी। घड़ेको भी खूब जोर-शोरसे जला दो, तो वह भी राख ही है। तत्त्वकी दृष्टिसे तीनों मिट्टी हैं। वह चाहे इमलीके रूपमें हो या आमके रूपमें हो या अंगूरके रूपमें हो या घड़ेके रूपमें हो, तत्त्वके रूपमें तो सब मिट्टी हैं। अपने-अपने बीजकी विशेषताके कारण करेला कड़वा है और अंगूर मीठा है। यह बीजकी विशेषता है। जब आपको मृत्तिका तत्त्वका या रस तत्त्वका विचार करना होगा, तब बीजके कारण रसमें जो भेद हो गये हैं या आकृतिके कारण पदार्थोंमें जो भेद हो गये हैं, उसको नजरअन्दाज करना होगा। यह उर्दूका शब्द है हो! 'नजरअन्दाज' करना माने आँखोंसे ओझल करना। बीजभेद या आकृति भेदको अपनी बुद्धिमें से हटाके—बट्टेखातेमें डालके—उचन्तखातेमें लिखके मृत्तिका तत्त्वका या रस तत्त्वका विचार करना होगा। वेदान्तमें ऐसे बोलेंगे कि उनका अपवाद करके विचार करना होगा। तुम इमली और आमका स्वाद मत देखो। तुम इमली-आम-अंगूर-करेलाको धातुके रूपमें देखो। उसमें मिट्टीका वजन है। पानीमें बीजकी उपाधिसे स्वाद है। तत्त्वकी दृष्टिसे वह मिट्टी-पानी-गर्मी-हवा ही तो है। अंगूर छोटा ही होता है। करेला बढ़ जाता

है। वह कितना प्राण ले सकता है? वह जितना प्राण लेता है, उतनी उसकी लम्बाई-चौड़ाई होती है। वह जितनी वायु लेता है, उतनी उसकी लम्बाई-चौड़ाई होती है। वह जितनी गर्मी लेता है, उतनी उससे गर्मी-सर्दी होती है। वह जितना पानी लेता है, उसके अनुपातसे उसमें स्वाद होता है। बीजकी विशेषता लगी रहती है। यह चित्त भी एक बीज है। जब हम तत्त्वकी दृष्टिसे विचार करते हैं, तब हम इमली-आम-अंगूर-करेलाका विचार छोड़ देते हैं। उनका अपवाद करके यह कहते हैं कि आत्मा नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-ब्रह्मस्वरूप है।

अब हमें यह देखना है कि हमारे स्वास्थ्यके अनुकूल भोजन क्या है? हमारे जीवनके लिये सर्वोत्तम रहनी कौन-सी है? तत्त्वका विचार है—ज्ञान और रहनीका विचार है—जीवन्मुक्ति। शान्तिपूर्वक जीवनकी जो व्यक्तिगत रहनी है, उसका विचार है—जीवन्मुक्ति। इसकी दो स्थिति होती हैं। जीवन्मुक्त पुरुष कभी समाधिमें होता है और कभी व्यवहारमें होता है। आप परिचित हैं। 'योगवासिष्ठ'में जीवन्मुक्तकी पहचानके लिये अनेक प्रसङ्ग हैं। जीवन्मुक्तके नामसे ही आठ श्लोक उसमें मिलते हैं। जब 'कल्याण'का 'सन्त अंक' निकला था, तब उसमें मैंने एक लेख लिखा था। उसमें मैंने यह बताया था कि जीवन्मुक्तके क्या लक्षण होते हैं? उसमें मैंने योगवासिष्ठके आठों श्लोकोंको उद्धृत करके उनकी व्याख्या कर दी थी। जब कल्याणका सन्त अंक निकला था, तबकी बात है। बहुत पुरानी बात हो गयी। तीस वर्षके भीतरकी तो है ही नहीं; क्योंकि, तीस वर्ष तो हमको संन्यास वेशमें हो गया। उसके भी पहलेकी बात है। जीवन्मुक्तकी पहचान बतायी थी। उस लेखका नाम ही था—जीवन्मुक्त। लेखकका नाम था—'एक'। न पण्डित, न विद्वान्, न साधु। केवल एक।

आपको यह बात सुनाते हैं कि जीवन्मुक्त कौन? गीतामें दूसरे अध्यायमें जो स्थितप्रज्ञ है; बारहवें अध्यायमें जो भक्त है; चौदहवें अध्यायमें जो गुणातीत है; और, बीच-बीचमें जिसका वर्णन आया है—**पण्डिता समदर्शिनः। ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा। कूटस्थो विजितेन्द्रियः।** अच्छा! दूसरे ग्रन्थोंमें—बृहदारण्यक उपनिषद्में ब्राह्मण कहकरके जिसका वर्णन है। दूसरे पुराणोंमें अतिवर्णाश्रमी कहकरके जिसका वर्णन है।

हमारे एक बड़े विद्वान् थे और बड़े विरक्त भी थे। हम उनको मित्र ही कहते थे। जब हम लोग आपसमें मिलते थे न, तब बड़ा मजा आता था। एक बारकी बात है। जब सन् 1955 में परमार्थ वालोंकी रेलयात्रा निकली थी, तब उसमें हमारे साथ तीन साधु थे। साधु तो बहुत थे; परन्तु, तीन साधु एक ढंगके थे। एकका नाम था–'मंगलहरि'। वह बड़े ही विरक्त थे। एक थे–'स्वामी प्रेमानन्दजी'। एक थे–'रामदास बाबा'। तीनोंका पेट बड़ा-बड़ा था। उनके लिए जो सोनेकी सीटें दी गयीं, वे भी पूरी नहीं पड़ती थीं। जब वे बेचारे तीनों अगल-बगलमें सोते थे, तब उनका पेट आपसमें लड़ जाता था। आजकलके लोग–विशेषरूपसे जवान लड़की-लड़के वजन पसन्द नहीं करते हैं। उसका कारण तो हम ठीक समझते हैं। हाँ! आहा! डाक्टर लोग कहते हैं कि वजन बढ़ जानेसे मनुष्य अल्पायु हो जाता है; परन्तु, हमने तो सौ-सौ वर्षके ऐसे मोटे-मोटे व्यक्ति देखे हैं कि आपको क्या बतायें? एक 'सिद्धारूढ स्वामी' थे। बड़े मोटे शरीरके थे। नंगे रहते थे। उनका पेट इतना बड़ा था कि पेट ही दिखता था। उनकी जाँघ नहीं दिखती थी। हम यह नहीं चाहते हैं कि आप इतना मोटे बनें। हम आपको यह बताते हैं कि बहुत मोटा व्यक्ति भी दीर्घायु हो सकता है।

'मंगलहरिजी'ने एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम है–'पञ्चमाश्रम'। चार आश्रम होते हैं ना? ब्रह्मचर्याश्रम। गृहस्थाश्रम। वानप्रस्थाश्रम। संन्यासाश्रम। उन्होंने पुस्तक लिखी है-पंचम आश्रम–'पञ्चमाश्रम'। 'बोधचूड़ामणि'। मंगलहरिजी बड़े ही विरक्त और बड़े ही विद्वान् पुरुष थे। ऐसे ही, रास्तेमें चलते-चलते एक जगह विश्राम करनेके लिये बैठे और वहीं उनका शरीर छूट गया। उनकी उमर भी बड़ी थी। अस्सी बरससे भी ज्यादा थी। मोटे बहुत थे। शरीरमें शक्ति तो इतनी ज्यादा थी, जिसकी कोई हद नहीं। यदि दौड़ें, तो जवान भी नहीं छू सकें। अब आपको यह बात सुनाते हैं कि पञ्चमाश्रममें अतिवर्णाश्रमीके नामसे जीवन्मुक्तकी पहचान दी है। अतिवर्णाश्रमी माने जो वर्णाश्रमका अतिक्रमण करके रहता है। जीवन्मुक्त आश्रमी नहीं होता है। इसका अर्थ है कि वह संन्यासी भी नहीं होता है। जब अतिवर्णाश्रमी बोला जायेगा, तब इसका अर्थ होगा कि वह वर्णाश्रमका अतिक्रमण करके रहता है।

अब हम जीवन्मुक्तिकी पहचानके लिये जीवन्मुक्तिके लक्षणके आठ श्लोक बताते हैं। ये वही आठ श्लोक हैं, जो मैंने आपको पहले सुनाये थे। यह आठों श्लोक जीवन्मुक्तिविवेकमें उद्धृत हैं। देखो! ईमानदारीकी बात तो यह है कि हमने पहले जीवन्मुक्ति-विवेकमें ही आठों श्लोक पढ़े और फिर योगवासिष्ठमें निकाल लिया कि ये कहाँ हैं और बादमें उनकी टीका लिखी। अब वह टीका लिखे हुए भी हमें बत्तीस-पैंतीस वर्ष तो हो ही गये। बहुत मजेदार है।

**यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।**
**असंगतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते।**
**नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।**
**यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते।**
**यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते।**
**यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते।**
**रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि।**
**योऽन्तर्व्योमवदेत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते।**

आकाशमें कभी रंगीन धूल छा जाती है। आप लोगोंने बम्बईमें शायद नहीं देखा हो। हमको अपने बचपनकी याद है। सम्भवतः सन् 1916 में एक बहुत बड़ी आँधी आयी थी। हमारे बाबाने हमारे मुँहपर एक मलमल सरीखा कपड़ा माने बहुत महीन कपड़ा बाँध दिया था। सामनेका दिखता नहीं था। अन्धेरा हो गया था। हवा बड़ी तेज चल रही थी। धूल बड़ी जोरसे उड़ रही था। अतः हमारे बाबाने हमारे मुँहपर एक महीन कपड़ा बाँध दिया था, जिससे वह धूल आँखमें न घुसे और साँसे लेते समय नाकमें भी वह धूल न घुसे। हमको अभी यह बात याद आती है। अच्छा! फिर जब थोड़ी देरके बाद हवा-धूल शान्त हुई, तब आकाश बिलकुल लाल-लाल हो गया। देखो! आकाश में एक बार धूल आयी। एक बार अँधेरा आया। एक बार लाल रंग आया। आँधी आयी। हवा बड़ी तेज चली। पानीकी वर्षा हुई। आकाश ज्यों-का-त्यों। उसने अपने अन्दर न अँधेरेको रखा और न लालीको। अन्धेरा तमोगुण है। लाली रजोगुण है। उसने अपने अन्दर न हवाको रखा और न पानी को। आकाश ज्यों-का-त्यों निर्मल। सूर्यास्त

होते-होते तो चाँदनी छिटकी। आकाशमें तारे दिखने लगे। हवा शान्त हो गयी। न अँधेरा है, न धूल है। अब देखो! यह तो आकाशकी बात है। आकाशकी एक स्थिति है। आपको यह मालूम नहीं है कि ऐसे आकाशको बनानेका सामर्थ्य भी आपके अन्दर है। आप नमूना देखते हैं। है ना? आप इस आकाशका 'मॉडेल' (Model) तो बनाते हैं; परन्तु, आप इस बातको नहीं समझते हैं कि यह आकाश हमारा बनाया हुआ है। जब आपको सपनेमें मीलों लम्बी-चौड़ी जमीन दिखती है, आसमान दिखता है और चाँद-सितारे दिखते हैं तब वह किसका बनाया हुआ होता है? वह इसी आकाशका मॉडेल बनाकर आप सपनेमें देखते हैं। जब आप जागते हैं, तब यह असली आकाश भी आप ही बना लेते हैं। सपनेका आकाश आपके मनमें है। जागतेका आकाश आपकी आँखमें नहीं है। नेत्रसे तो आकाशका प्रत्यक्ष ही नहीं होता है। यह भी आपके मनमें है। जो स्वप्नके आकाशका प्रकाशक है, वही जाग्रत्‌के आकाशका प्रकाशक है। जो आकाशका प्रकाशक है, वह आकाशसे छोटा नहीं है। आकाशकी नित्यतासे बड़ी है नित्यता उस प्रकाश की। आकाश की लम्बाई-चौड़ाईसे बड़ी है लम्बाई-चौड़ाई उस प्रकाशकी, जिसमें आकाश दिखता है। आकाशमें दूसरोंके लिये अवकाश है; लेकिन, उस प्रकाशमें दूसरोंके लिये अवकाश नहीं है। वह अद्वितीय है। आप वह प्रकाश हैं, जिसमें आकाशकी लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई-निचाई पैदा होती और बिगड़ती है। आप वह प्रकाश हैं, जिसमें आँधी-पानी-लाली-अँधेरा-हवा आते हैं और जाते हैं, परन्तु; आप उनको अवकाश नहीं देते हैं। आकाश अवकाश देता है। आप अवकाश नहीं देते हैं। वह तो प्रतीति की धारा है।

अच्छा! जीवन्मुक्तकी पहचान क्या? चित्प्रकाश वही प्रकाश है-जीवन्मुक्तका स्वरूप। कभी एक समय ऐसा आता है, जब ईश्वर सृष्टिका प्रलय करता है। एक समय ऐसा भी आता है, जब ईश्वर सृष्टि बनाता है। वह सृष्टि बनानेवाला ईश्वर, सृष्टिका पालन-पोषण करनेवाला ईश्वर और सृष्टिको विलीन करनेवाला ईश्वर आपके प्रकाशका ही एक रूप है। आपके प्रकाशकी ही एक आकृति है। आपके प्रकाशकी ही एक प्रतीति है। परमेश्वर कभी सृष्टि करता है, कभी स्थिति करता है और कभी प्रलय करता है।

जीवन्मुक्तके स्वरूपमें सृष्टि बननेपर भी, स्थिति होनेपर भी और प्रलय होनेपर भी क्या है? वही। आकाशका प्रकाशक जो प्रकाश है, वही जीवन्मुक्तका स्वरूप है। उससे अपनी एकताका बोध जिसको हो गया है, वह जीवन्मुक्त है। **यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।** जब ईश्वर प्रलयकर देता है, तब व्यवहार नहीं होता है। जब ईश्वर सृष्टि-स्थिति करता है, तब व्यवहार होता है। पृथ्वी भी ज्यों-की त्यों। समुद्र भी ज्यों-का-त्यों। सूर्य-चन्द्रमा-ग्रह-नक्षत्र भी ज्यों-का-त्यों। वायु चलती है। आकाश सबको अपने पेटमें धारण करता है और जीवन्मुक्त उसमें व्यवहार कररहा है। उसका स्वरूप क्या है? उसमें आकाश असंगत है। आकाशका उदय और विलय उसीके स्वयंप्रकाश स्वरूपमें होता है। पहले अनुभवकी दृष्टिसे जीवन्मुक्त क्या है? यह उसका स्वरूप बताया। **व्यवहारवतोऽपि च।** वह चलता है-फिरता है, खाता है-पीता है, बोलता है-हँसता है। उसका नाम जीवन्मुक्त है। अब आगे बड़ी विचित्र-विचित्र बात आवेगी हो। तुम्हारे कामकी बात आवेगी। **नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।** उसके चेहरेपर शिकन नहीं पड़ती है। **यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते।**

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## 13

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!**

**यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च**
**असंगतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते।**

जो लोग ईश्वरपर श्रद्धा रखते हैं, विश्वास रखते हैं, निष्ठा रखते हैं, वे कभी-कभी ऐसे सोचते हैं कि ईश्वर इस दुनियाको किस नजरसे देखता होगा? क्या आपके मनमें कभी ऐसा सवाल पैदा होता है कि आखिर ईश्वरकी नजरमें यह दुनिया कैसी दिखती होगी? हम तो बचपनमें निकम्मे थे न! अपने निकम्मेपनमें यही सब सोचा करते थे कि हमारी नजरसे तो दुनिया ऐसी दिखती है; लेकिन, ईश्वरकी नजरसे यह दुनिया कैसी दिखती होगी? कौतूहल ही तो है। निकम्मेपनमें ये सब विचार आते ही हैं। हमें रोटीकी कोई समस्या नहीं थी। स्त्रीकी कोई समस्या नहीं थी। हमारा जीवन समस्या प्रधान नहीं था। यह तो लोग रागके वशीभूत होकरके अपना जीवन समस्या-प्रधान बना लेते हैं कि हमको अमुक लड़की कैसे मिले? अथवा लोग द्वेषके वशीभूत होकरके अपना जीवन समस्याप्रधान बना लेते हैं कि हम अमुक दुश्मनको कैसे मारें?

आप यह बात ध्यानमें लो कि जीवनको समस्या-प्रधान बना लेनेसे उत्कृष्ट चिन्तन नहीं होता है; क्योंकि, आदमी उसी समस्याके समाधानमें ही उलझ जाता है। भाई मेरे! जैसे आजतक रोटी मिलती रही है, वैसे आगे भी रोटी मिलती रहेगी। जहाँ आग लगती है, वहाँ हवा आती है। यह आपको मालूम है ना? हम लोगोंने गाँवमें देखा है। हम तो कई बार आग बुझानेके लिये गये हैं। जब किसीके घरमें आग लगती थी, तब हवा तेज हो जाती थी। वह क्या है कि गर्मी होनेसे चारों ओरकी हवा जो है न, वह उधर दौड़ती है। प्रकृतिका यह नियम है कि जहाँ आग लगती है, वहाँ हवा आती है। इसी तरहसे, जहाँ भूख-प्यास लगती है, वहाँ अन्न-पानीका जुगाड़ भी बैठ जाता है। हमको इस बातका अनेक बारका अनुभव है।

हमारे पास पहले चिट्ठियाँ आती थीं और जवाब देनेके लिये लिफाफा या कार्ड खरीदनेको पैसा नहीं होता था। संन्यासी होनेके बाद शुरू-शरूकी बात है। एक दिन एक लिफाफा आया। उसमें बीस रुपये निकले। कानूनके बड़े भारी जानकारने गैरकानूनी तरीकेसे लिफाफेमें पैसे भेजे थे। बादमें, हमने उनको कह दिया कि आपको ऐसा नहीं करना चाहिये था। मनीऑर्डर (Money-order)से भेज देते। एक चवन्नी और लग जाती। जहाँ बीस रुपये खर्च किये, वहाँ चार आना और खर्च कर देते। क्या बात थी?' अच्छा! देखो! कहना यह है कि जब हमको चिट्ठी लिखनेकी जरूरत थी और हमारे पास पोस्टकार्ड या लिफाफा खरीदनेके लिए पैसे नहीं था, तब हमारे पास पैसा पहुँच गया। एक बार 'हरिद्वार'में कहीं जानेकी जरूरत थी, तो एक व्यक्तिने अपने ही पच्चीस रुपया लाकरके दे दिया। भूख लगनेपर बहुत बार लोगोंने रोटी खिला दी। असलमें, जहाँ जिस चीजकी जरूरत होती है, वहाँ वह चीज पहुँच जाती है। यह सृष्टिका नियम है।

हमारा जीवन समस्या-प्रधान नहीं है। अगली पीढ़ीके लिये हमको फिकर नहीं है कि उनके पास पैसा आवे। जो मर गया, उसके बारेमें ज्यादा नहीं सोचते हैं। जो बिछुड़ गया, वह बिछुड़ गया। रात न आवे-इसके लिये नहीं सोचते हैं। दिन-ही-दिन बना रहे-इसके लिए भी नहीं सोचते हैं। जब दुनियाकी समस्यासे चित्त मुक्त होता है, तब चिन्तन उन्मुक्त होता है। यहाँके लोग आते हैं न, तो बोलते हैं-'हमारे 'प्राब्लम' (Problem) है।' हाँ! 'मुम्बई'के लोग ऐसे बोलते हैं। ऐसा कोई शब्द है। प्राब्लम्। प्राबल्यम् समझो। समस्या प्राबल्यम् । जब चित्तमें दुनियादारीके लिए किसी भावकी प्रबलता नहीं होती है, तब बुद्धि खाली होती है और वह एक परिवारके घेरेमें विचार न करके पूर्णताके बारेमें विचार करने लगती है।

बुद्धिका पूर्णताके विचारके लिये उन्मुख होना चिन्तनकी उत्कृष्टता है। उसमें एक विचार यह भी है कि अनादिकालकी दृष्टिसे और नित्यप्रवाहकी दृष्टिसे यह सृष्टि कैसी है? अच्छा! मान लो कि यह सृष्टि पैदा हुई हो और इसका अन्त हो जाने वाला हो, तो अनन्तकी दृष्टिसे यह सृष्टि कैसी है? अच्छा! यदि प्रकृतिसे बनी है, तो सृष्टिसे यह सृष्टि कैसी है? अच्छा! यदि प्रकृतिसे बनी है, तो सृष्टिका क्या स्वरूप है? यदि ईश्वरने बनाया है, तो

सृष्टिका क्या स्वरूप है? यदि परमाणुसे बनी है तो सृष्टि का क्या स्वरूप है? यदि शक्तिसे बनी है, तो सृष्टिका क्या स्वरूप है? देखो! यह छोटी जिन्दगीके–छोटे परिवार के–छोटे दायरेके जो प्राब्लम् हैं, वे जब तक निवृत्त नहीं होते हैं, तब तक मनुष्यकी बुद्धि पूर्णताके विचारमें नहीं लगती है। आप थोड़ी देरके लिये सोनेकी-सी स्थिति भले बना लीजिये; परन्तु, वासनायें जो हैं, वे निवृत्त नहीं होती हैं।

और एक बात। माफ करना। 'बच्चू भाई' हैं कि नहीं? हाँ! बच्चू भाई ऐसे बोलते हैं–'क्षमा करना। आपको एक बात कहता हूँ।' है न ? आहा! अच्छा! देखो! हमको बचपनमें इस बातका बहुत शौक था कि हम अपने विचारके अनुसार जो बात ठीक समझते थे, वह कभी-कभी बड़े-बूढ़ोंसे भी कह देते थे कि आपको ऐसा करना चाहिये और आपको ऐसा नहीं करना चाहिये; लेकिन, हमने यह अनुभव किया कि हमारे उपदेशसे हमारा अत्यन्त आत्मीय भी अपने स्वभावका परित्याग नहीं करता है। नारायण! अत्यन्त आत्मीय जो अपना व्यक्ति है, जब वह भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकता है, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या करनी है? अब देखो! हमारे गाँवके जो ब्राह्मण हैं, उनमें भी लहसुन-प्याज चलता है। हमारे घरमें तो नहीं चलता था; परन्तु, औरोंके घरमें चलता था। हमने कोशिश की कि ये छोड़ दें; लेकिन, उन्होंने छोड़ा नहीं। अच्छा! और देखो! हमारे गाँवमें देवीके लिये बलि देनेकी प्रथा थी हो! हमने कोशिशकी कि गाँवके बड़े-बूढ़े मान जायें और यह बलिदानकी प्रथा बन्द हो जाये। जो समझदार पुरुष होते थे, वे हमारी बात मान तो जाते थे, लेकिन, बादमें, स्त्रीकी बातको टाल नहीं सकते थे। अब देखो न! घरमें उनकी स्त्रीको सिरमें दर्द हो गया। उसने कहा–'तुमने देवीके लिये बलिदान बन्द कर दिया है; इसलिये, मेरे सिरमें दर्द हो गया है। तुम बलिदान करो।' बस! फिर चालू हो गया। माने कोई-न-कोई बात ऐसी आ जाती थी कि हमारी बात बेमतलब हो जाती थी। हमारी कोशिश नाकामयाब हो जाती थी। हमारा प्रयास असफल हो जाता था।

हमने इस बातको बादमें भी खूब देखा और यह अनुभव किया कि हमारा अत्यन्त आत्मीय व्यक्ति भी हमारे कहनेसे एक छोटी-सी-छोटी

चीज भी नहीं छोड़ सकता है। हम नाम नहीं लेते हैं; लेकिन, आदमी समझ जायेगा भला? है ना? वह आदमी हमारे श्रोताओंमें है। उस समय हम साधन-भजन करते थे। अतएव, हमारे चित्तमें ब्रह्मचारियोंका संस्कार ज्यादा था। हमको इसका भी ज्यादा ध्यान नहीं था कि गुजरातियोंमें, महाराष्ट्रियोंमें या मारवाड़ियों में मिर्च कैसी खायी जा सकती है? खैर! हमने अपने एक अत्यन्त आत्मीय व्यक्तिसे कहा कि 'तुम लाल-मिर्च खाना छोड़ दो।' उसने कहा कि 'ठीक है। आपकी बात मान ली।' उसने महीने-दो-महीने लाल-मिर्च खाना छोड़ दिया और फिर खाने लगा। अब हमने उसको सौगन्ध दिलवायी कि 'अब लाल-मिर्च नहीं खायेंगे।' अच्छा! देखो! उसने कहा कि 'जीवनमें लाल-मिर्च कोई ऐसी चीज नहीं है कि जिसके बिना मनुष्य जिन्दा न रहे। लो! मैंने शपथ ली कि अब लाल-मिर्च नहीं खायेंगे।' शपथ खाकर दो-तीन महीने लाल-मिर्च खाना छोड़ दिया और फिर खाना शुरू किया। अच्छा! अबकी बार हमने उससे कहा कि 'जहाँ अपने आप मिर्च परसी हुई आ जाये, वहाँ खा लिया करो, लेकिन माँग मत करो; कि हमको मिर्च दो। जब तुम खाते समय माँगते हो कि हमको लाल-मिर्च दो, तब उससे हमको थोड़ा संकोच होता है।' देखो! ये सब प्रयोग हैं भला! एक छोटी-सी-छोटी चीज-लाल-मिर्च खाना भी नहीं छूट सका। और तो और, वह माँगना भी नहीं छूट सका। उस दिनसे हम उस आदमीको कुछ भी शिक्षा नहीं देते हैं। हम अपने से ही कहते हैं कि 'हमारे मनमें शिक्षा देनेकी जो वासना है, वह हमारा दुःख है। दूसरेका निरुद्ध होना या न होना तो उसके स्वभावपर ही निर्भर करता है।'

पहले हमने 'पारसभाग'में-'पारसमणि'में पढ़ा था कि यदि कुत्तेकी पूँछ बारह वर्षतक बाँसकी नलीमें सीधी करके रखो और फिर उसमेंसे निकाल दो, तो वह फिर टेढ़ी-की-टेढ़ी होती है। लोग अपनी गतिसे चलते हैं। सबकी अपनी-अपनी स्वतन्त्र गति होती है। यह जो दूसरोंको सुधारनेका प्रॉब्लम् है, यह भी मनुष्यकी नजरको एक व्यक्तिपर या एक परिवार पर या एक सम्प्रदाय पर सीमित कर देता है। अपने दृष्टिकोणको बहुत उज्ज्वल बहुत निर्मल, बहुत व्यापक बनानेकी जरूरत है।

अभी रास्तेमें आते समय 'प्रबुद्धानन्द'से एक बात करता हुआ आ रहा

था। लोग 'हिन्दू-धर्म', 'हिन्दू-संस्कृति'का नाम तो बहुत लेते हैं। लोग 'महाराणा प्रताप' और शिवाजी'की चर्चा तो बहुत करते हैं। यह सब तो ठीक है; लेकिन, हिन्दू-धर्म और संस्कृतिकी रक्षाके लिए राणाप्रताप जो कष्ट सहन कर सकते थे-अपनी पत्नी और बेटेको घासकी रोटी खिलाकर वह सहिष्णुता, वह बलिदान क्या उनके नामकी चर्चा करने वाले लोगोंमें है? हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षाके लिए शिवाजी जैसे जंगल-जंगलमें भटक सकते थे, वह त्याग, वह तपस्या, वह निष्ठा, वह सहिष्णुता, वह बलिदान क्या आजके उन लोगोंमें है, जो हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका नाम तो बहुत लेते हैं और शिवाजीकी चर्चा तो बहुत करते हैं? आदर्श तो रखोगे राणाप्रतापका और शिवाजीका; लेकिन, उनकी साधना नहीं रखोगे, तो तुम उनके आदर्शपर कैसे स्थित हो सकते हो? अभी रास्तेमें आते समय किसी अखबारमें कोई बात देखी, तो यह बात ध्यानमें आगयी।

ईश्वरको यह सृष्टि कैसी दिखती होगी? इस बातपर आपने कभी विचार किया? ईश्वरको यह सृष्टि अपनेसे बाहर दिखती है कि अपने भीतर दिखती है? अरे भाई! राम ईश्वर हैं। कृष्ण ईश्वर हैं, वैकुण्ठवासी नारायण ईश्वर हैं। जैसे हम लोग सृष्टिको अपनेसे बाहर देखते हैं, वैसे ही ये लोग सृष्टिको अपनेसे बाहर देखते होंगे? अब देखो भाई! असलमें, आप राम-कृष्ण-नारायणको ईश्वरके रूपमें देखते ही नहीं हो। ईश्वर तो वह होता है जो सृष्टि-स्थिति-प्रलय करता है। जो संसारकी सृष्टिसे पहले था, वह जब सृष्टि बनाता है, अब अपने अन्दर बनाता है कि बाहर बनाता है? देखो! जब आप सम्प्रदायकी रीतिसे यह विचार करेंगे कि तत्त्वमसि' में 'तत्' पदका अर्थ क्या है, तब आपको यह बात फुरेगी। हम आपसे विचारकी बात कर रहे हैं। अच्छा! सृष्टिका प्रलय भी ईश्वर करता है। अगर ईश्वर सृष्टिको अपनेसे बाहर बनावेगा, तो आधे 'स्पेस' (Space)में ईश्वर होगा और आधेमें सृष्टि होगी। अथवा, बड़े स्पेसमें ईश्वर होगा और छोटे स्पेसमें सृष्टि होगी। असलमें, ईश्वर सृष्टि बनावेगा, तो अपने भीतर ही बनावेगा। बाहर नहीं बनावेगा।

वल्लभाचार्यजी महाराज कहते हैं कि ईश्वरके संकल्पमें सृष्टि है। जैसे हम एकान्त कमरेमें बैठे हों और हमारे मनमें एक महात्मा दिख रहा हो। जैसे हम स्वप्न देख रहे हों और उसमें एक स्त्री दिख रही हो। हमारी दृष्टिसे हमारे

मनोराज्यमें स्थित महात्माका जो स्वरूप है, मनोराज्यकालमें हमारे मनोराज्यमें जो हिमालय है, हमारे स्वप्नमें जो सूर्य-चन्द्रमा हैं या जैसे दिखते हैं, ईश्वरको अपने ही संकल्पमें-अपने ही अन्दर दिखनेवाली सृष्टि बिलकुल वैसी ही दिख सकती है। श्री वल्लभाचार्यजी महाराज कहते हैं कि यह सृष्टि ईश्वरका संकल्प है और ईश्वरमें है। ईश्वरमें ही दिखती है और ईश्वरमें ही लीन होती है। जब ईश्वरका संकल्प होता है, तब यह सृष्टि बन जाती है और जब वह संकल्प तोड़ देता है, तब यह सृष्टि समाप्त हो जाती है। आप जरा इस बातकी कल्पना करके देखो।

स्वप्नकी सृष्टिमें और बाहरकी सृष्टिमें क्या अन्तर होता है? स्वप्नकी सृष्टि चित्तकाल होती है और बाहरकी सृष्टि द्वयकाल होती है। जब तक सामने किताब है, तब तक हम किताबको देखते हैं और जब तक हम देखते हैं, तब तक किताब मालूम पड़ती है। स्वप्न और मनोराज्यकी सृष्टि तब तक रहती है, जब तक हम देखते हैं। यदि हम जाग्रत् में किताबको नहीं देखें, तो भी वह अपनी जगहपर रहेगी; लेकिन, मनोराज्यकी सृष्टिको जब हम देखेंगे, तब रहेगी। यदि नहीं देखेंगे, तो नहीं रहेगी। यदि उसको बदल देंगे, तो बदल जायेगी। ईश्वरको यह सृष्टि कैसी दिखती है?

अब एक जरा-सा आक्षेप कर देते हैं। जो भक्त अपने प्रभुकी नजर-से-नजर मिलाकर व्यवहार नहीं करता है-जो सेवक अपने स्वामीकी नजर-से-नजर मिलाकर व्यवहार नहीं करता है, वह भक्त-वह सेवक अपने कर्त्तव्यसे विमुख हो जाता है। अगर ईश्वर इस सारी सृष्टि को अपने अन्दर अपना मनोराज्य-अपना स्वरूप देखता है और कई अनुभवी पुरुष इस सारी सृष्टिको ईश्वरमें-ईश्वरका संकल्प और ईश्वर रूप नहीं देखता है, तो वह भक्त नहीं है। जब तक अपने प्यारेकी नजर-से-नजर नहीं मिली और उसका प्यारा अपना प्यारा नहीं हुआ, तब तक भक्त और भगवान्‌की नजर अलग-अलग ही रही। यह मालूम करना पड़ता है कि हमारे प्यारे ईश्वरकी दृष्टिमें यह सृष्टि क्या है? इसीको '**जन्माद्यस्य यतः**' बोलते हैं। '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**' बोलते हैं।

अब यह देखो। आप श्रवण करते हो। जहाँ यथार्थ श्रवण होता है, वहाँ अज्ञान-भ्रम-निवारण होता है। भौतिकवादी लोग कहते हैं कि हमारी

दवा रोगको दूर करती है। वैद्य लोग कहते हैं कि रोगी की प्रकृति के साथ मिल जाये, तो दवा रोगको दूर करती है। अधिकारी विशेषके लिये औषधिका निर्णय किया जाता है। कफ प्रकृतिके लिए औषधि दूसरी होती है। वात प्रकृतिके लिये औषधि दूसरी होती है। पित्त प्रकृतिके लिए औषधि अलग होती है। हाँ! 'सोलहों धान बाईस पसेरी' नहीं होता है। ऐसा आयुर्वेदमें कहते हैं। माने यहाँ आयुर्वेदमें अधिकारीका विचार मुख्य है। अधिकारी पुरुष ईश्वरकी नजरसे अपनी नजर मिलाता है। अधिकारी माने योग्यता और सामर्थ्य-दोनोंसे युक्त। अधिकारी माने सरकारी अधिकारी नहीं है। बोले-'इस सरकारी अधिकारीको दर्शन-परिषद्का अध्यक्ष बनाओ। इस सरकारी अधिकारीको दर्शन-परिषद्का (Chief-Guest) 'मुख्य-अतिथि' बनाओ। यह सरकारी अधिकारी दर्शन-परिषद्का उद्घाटन-भाषण करेंगे।' अब उन बेचारोंको तो मालूम ही नहीं कि दर्शन क्या होता है? किसीसे सीख-सिखाकर या सुन-सुनाकर आवेंगे। आओ! एक बार ईश्वरकी नजरसे अपनी नजर मिलावें।

यह देखो! ईश्वरके संकल्पमें सृष्टि है। प्रकृतिके परिणाममें सृष्टि है। परमाणुओंके जोड़-तोड़में सृष्टि है। अनादि-अनन्त ब्रह्ममें संकल्पकी कल्पना व्यवहारको देखकर की जाती है। इसलिए, संकल्प अध्यारोपित है। ब्रह्ममें यह सृष्टि प्रतीतिसे तो मायामात्र है और स्वरूपसे बिलकुल नहीं है। अब आप अपनी नजर कहाँ ले जाते हैं? आप तो अपने बनाये हुए खिलौनेपर नजर ले जाते हैं। है कि नहीं? नोटके बण्डलपर आपकी नजर जाती है। आपके दुश्मन-दोस्त बहुत-से हैं। उनपर आपकी नजर घूमती रहती है। है ना? यह देखो! यह सृष्टि कितनी देर तक है? कहाँ है? क्या है? यह परमाणुओंका जोड़ है? अथवा चारभूतोंके आनुपातिक मिश्रण होनेसे नशाके रूपमें यह चेतना पैदा हुई है? अथवा यह सृष्टि हमेशा रहती है? यदि यह चित्तवृत्ति ही सृष्टि है, तो हम बौद्धोंकी भाषामें बोल सकते हैं कि यह क्षणिक है। जब हम देखते हैं कि हमारा आत्मा नित्य है-सत्य है, माने आत्मसत्ता कभी लुप्त नहीं होती है, तब आत्म-सत्ताकी अनादितामें-अनन्ततामें यह सृष्टि कुछ नहीं है। फिर तो, विज्ञान क्षणिक नहीं है। विज्ञान नित्य है-सत्य है।

देखो! अब जीवन्मुक्तकी दृष्टि देखो। जो ईश्वरकी बनायी हुई सृष्टि है, वह ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। यह सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र, दिन-रात, ज्यों-के-त्यों भासते हैं। स्त्री-पुरुष भी ज्यों-के-त्यों भासते हैं। अपना देह और इन्द्रियाँ भी ज्यों-की-त्यों भासती हैं। योग भासनेको मिटाता है। वेदान्त भासनेको नहीं मिटाता है। इसमें युक्ति क्या है? देखो! कभी हमने 'बदरीनाथ'की-'गंगोत्री'की यात्रा की है और पैदल यात्रा की है। उस समय यह मोटर-वोटर ज्यादा नहीं जाती थी। अब देखो! उस समय निकम्मा मन क्या करता था? आपको यह निकम्मे मनकी बात बताता हूँ। कोई समस्या नहीं कि कितने दिनोंमें लौटेंगे? कोई प्रॉब्लम् (Problem) नहीं। हम सोचते कि एक शहरमें चलनेमें और एक पहाड़में चलनेमें क्या फर्क है? जब शहरमें चलते हैं तब सोचते हैं कि यह 'बच्चू भाई'का मकान है। यह 'हरिकिशनदास'का मकान है। यह 'गिरिधर भाई'का मकान है। यह 'शर्माजी'का मकान है। मकानके साथ 'का' जोड़ देते हैं। यह किनका है? यह इनका है। जो मकान है, सो तो दिखता है; लेकिन, उसमें ममता भी दिखती है और उसमें एक व्यक्तिगत सम्बन्ध भी दिखता है। जब हम बदरीनाथकी या गंगोत्रीकी यात्रा कर रहे थे, तब हमको पेड़ तो दिखते थे; परन्तु, हमको ऐसे ही लगता था कि जैसी हरियाली 'हैंगिंग गार्डन' में है, वैसी वहाँ भी है। हाँ! अच्छा! गंगाजीकी धारा तो दिखती थी; लेकिन, ममता-अहंताका दर्शन नहीं होता था। और देखो! जैसे बर्फ यहाँ दूकानपर होता है, वैसा ही बर्फ वहाँ भी दिखता था। अब महाराज! वह बर्फ किसका है? वह हिमालय किसका है? वह वृक्षावली-वन किसका है? वह गंगाजीकी धारा किसकी है? भला बताओ? किसकी है? वह नहीं फुरता था। वस्तु तो दिखती थी; परन्तु, उससे ममत्व करनेवाला या उसका स्वामित्व करनेवाला व्यक्ति नहीं दिखता था।

अच्छा! अब देखो! मन कैसा बनता है? जब हम स्वामित्व वाले पदार्थको देखते हैं कि यह इनका है-यह इनका है, तब हमारे मनमें भी इसका संस्कार बनता है कि यह चीज हमारी है-यह चीज हमारी है-यह चीज हमारी है। हाँ! यह मकान हमारा है, यह दूकान हमारी है-इसका संस्कार बनता है। जब हम तीर्थयात्रा करते हैं, तब यह ममत्व-स्वामित्वका

संस्कार नहीं बनता है। तीर्थयात्रा पुण्य है। भला बताओ! पुण्य क्यों है? क्योंकि, उसमें हम वस्तुको तो देखते हैं; परन्तु, ममता-मोहसे रहित देखते हैं। एक दिन चट्टीपर ठहर गये, तो बड़ी तकलीफ हुई। आहा! दूसरे दिन चट्टीपर ठहरे, तो बहुत आराम मिला। लेकिन, तकलीफ वाली चट्टी छोड़कर भी आगे बढ़े और आरामवाली चट्टी छोड़कर भी आगे बढ़े। हाँ! पुण्यका अर्थ क्या हुआ? यह कि तकलीफवाली चट्टीसे द्वेष नहीं हुआ और आरामवाली चट्टीसे राग नहीं हुआ। दृश्यमान पदार्थमें किसीकी ममता नहीं है, तो अपनी ममता भी नहीं हुई। हम पदार्थोंको तो देख रहे हैं; परन्तु, उसमें न सामनेवालेकी ममता है और न हमारी ममता है। इससे क्या हुआ? जब हमारा चित्त निर्मम होकर दृश्यको देखता है, तब दृश्यमें परिवर्तन करनेकी जरूरत नहीं पड़ती है। जिस समय अपने चित्तमें-से ममताकी निवृत्ति हो जाती है, उस समय अपने चित्तकी जो स्थिति होती है, वह आप देखो।

जब हम बच्चे थे, तब मेला देखने जरूर जाते थे। हमने 'काशी'की 'विजयादशमी' देखी। 'काशीनरेश'-जो विजयादशमी करवाते थे, वह देखी। हमने 'दिल्ली'की रामलीला देखी। हमने 'प्रयाग'का 'कुम्भ मेला' देखा। जब मेला लगता था, तब देखने जाते थे। जैसे जंगलमें पेड़-ही-पेड़ दिखते हैं या पशु-ही-पशु दिखते हैं, ठीक वैसे ही मेलेमें आदमी-ही-आदमी दिखते थे। अरे महाराज! ऐसे मेलेमें अगर हमारे गाँवकी कोई बहू खुले मुँह गयी हो और वह कहीं नारंगी-मौसम्बी खरीद रही हो या कहीं मालटा-सन्तरा ले रही हो और ऐसेमें जो उसने देखा कि हमारे गाँववाले पण्डितजी आ रहे हैं, तो झट घूँघट खींचा और मुँह फेरकर खड़ी हो गयी। वह सारे मेलेसे नहीं शरमाती थी; लेकिन, हमसे शरमा जाती थी। हमने तो कई बार पूछ भी दिया कि 'क्यों भाई, तुमको इतनी भीड़से शरम नहीं आती है? क्या हम ही ऐसे बुरे हैं कि हमको देखकर मुँह ढक लिया?' है ना? हमने कई बार बिलकुल सीधे-सीधे सवाल कर दिया। जैसे कोई हमारी भाभी लगती हो अथवा कोई हमारी चाची लगती हो और वह भी हमसे छोटी उम्रकी हो। हाँ! अगर वह मेलेमें हमको देखते ही घूँघट खींच कर और एक ओर मँह करके खड़ी हो जाती थी, तो मैं पूछ देता कि 'क्या यह दुनिया बहुत अच्छी है, जो तुम्हारा मुँह देखती है? सबसे बुरे तो हम ही हैं न?'

असलमें, मोहसे देखनेमें-ममतासे देखनेमें-दोस्तीसे देखनेमें और दुश्मनीसे देखनेमें फर्क पड़ता है। यह मोह-ममता-दोस्ती-दुश्मनी बाहरवाली चीजमें नहीं होती है। यह अपने दिलमें होती है। जबतक मनुष्य अपनेको एक शरीरसे आबद्ध देखता है, तबतक अनुकूलके प्रति ममता होती है-मित्रता होती है-स्तुति होती है और प्रतिकूलके प्रति कटुता होती है-शत्रुता होती है-निन्दा होती है। देखो! ऐसे यदि हमको कोई सींग दे दे-पशुकी सींग और कहे कि 'मुँहसे चाटो', तो हम कहेंगे कि 'नहीं भाई! यह हड्डी है।' है कि नहीं? हाँ! लेकिन, महाराज! यदि वैद्य शृंग-भस्म दे दे, तो बड़े प्रेमसे खा लेंगे। है ना? हाँ! अच्छा! ऐसे यदि कोई कहे कि 'हड्डीको मन्दिरमें ले चलो,' तो आप नहीं ले जायेंगे लेकिन, शंख क्या है? हड्डी ही तो है न? यह देखो! अनुकूल बुद्धि-प्रतिकूल बुद्धिका यही अर्थ होता है। अच्छा! यदि आप मन्दिरमें घड़ीमें चामका पट्टा बाँध कर जाओ और आपको पुजारी देख ले, तो वह तुरन्त उतरवा कर बाहर रखवा देगा। खैर! अब तो चामका पट्टा कम होता है। पहले होता था। हाँ! हम पूछते थे कि 'तुम्हारे यहाँ यह जो तबला बजता है, जो यह ढोलक बजती है, जो इसमें लगा है, वह चाम है कि नहीं है?'

असलमें, सृष्टि दो तरहकी है। एक तो आप परमाणुओंसे बनी मानिये या प्रकृतिसे बनी मानिये या ईश्वरकी बनायी हुई ईश्वरके संकल्पमें देखिये। है ना? या ऐन्द्रियक प्रतीति होनेके कारण ईश्वरमें आरोपित मानिये। सृष्टि हमारी ओरसे प्रतीत होती है। हमारे औजारोंसे दिखती है। यदि हमारे औजार रंगीन हैं, तो ईश्वरमें सृष्टि रंगीन दिखती है। ऐन्द्रियक होनेके कारण ईश्वरमें आरोपित देखिये। यदि ईश्वरको सगुण मानिये, तो उसका संकल्प देखिये। परब्रह्म परमात्माका जो ठसाठस ठोस स्वरूप है, उसमें तो कोई दूसरी वस्तु होना सम्भव ही नहीं है। इसलिए, परब्रह्म परमात्मामें यह सृष्टि मायामात्र देखिये। सृष्टिमें परिवर्तन देखनेकी करनेकी जरूरत नहीं है। यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण है।

सामाजिक दृष्टिकोण दूसरा है। आर्य-समाज मानव-समाजका सुधार करना चाहता है। वह सामाजिक संस्था है। साधु-समाज साधुओंमें सुधार चाहता है। सो, जो उसके कर्त्ता-धर्त्ता होते हैं, वे चाहते हैं कि नहीं चाहते हैं,

यह तो जो समाजके अधिकारी लोग हैं, वे जानें। हाँ! वे जानें कि वे क्या करना चाहते हैं? साम्प्रदायिक संस्थायें केवल एक गुटका भला चाहती हैं। पार्टीबन्दी वाली संस्थायें केवल अपनी पार्टीका हित चाहती हैं। प्रान्तवादी राष्ट्रका अहित करते हैं। भाषावादी ज्ञानका तिरस्कार करते हैं। सम्प्रदायवादी दूसरे सम्प्रदायको हीन बनाते हैं। समाजवादी चाहे अपना सुधार करें चाहे ना करें; लेकिन, दूसरोंका सुधार चाहते हैं। यह जो जीवन्मुक्ति है, यह दूसरेका सुधार नहीं है। जीवन्मुक्ति अपने दिलका सुधार है भला! **यथास्थितमिदं यस्य**। जैसा है, वैसा है।

एक दिन एक महात्माके सामने एक नंगी औरत आकर खड़ी हो गयी। अब आप कहेंगे कि 'यह बात विलायतमें तो हो सकती है; लेकिन, भारतमें नहीं हो सकती है।' आप इस कल्पनाको छोड़ दीजिये। अभी चार दिन पहले अखबारोंमें छपा हुआ था कि इंग्लैण्डके प्रधानमंत्रीके सामने एक मोटरमें पाँच स्त्रियाँ आयीं। महाराज! बिल्कुल नंगी आकरके उनके सामने खड़ी हो गयीं कि आप अमुक उत्सवका आयोजन कीजिये। उस उत्सवमें हम इसी तरहसे नंगी होकरके आपको नृत्य दिखावेंगी। आमन्त्रित किया। 'नग्न आमंत्रण'के नामसे अखबारोंमें छपा हुआ था।

महात्माजीके सामने कोई नंगी स्त्री आकर खड़ी हो गयी। चेलोंने कहा-'राम-राम-राम-राम! यह क्या करती हो?' महात्माजी बोले-'अगर कपड़ा जरूरी होता, तो ईश्वर पहनाके ही न पैदा करता? आहा! ईश्वर पहना करके ही पैदा करता। देखो! यह तो जैसे दिगम्बर महात्मा लोग रहते हैं, वैसे है।' अब महाराज! उनके मनमें तो अपनी दृष्टि थी। परमात्माकी दृष्टि थी। उनके मनमें किसी सम्प्रदायकी-समाजकी-प्रान्तकी-गाँवकी-शहरकी दृष्टि तो थी नहीं।

शहरकी दृष्टि अब खुले सिरकी हो गयी न? गाँवकी दृष्टि अभी ढँके सिरकी है। एक महात्मा दोनोंको देखेगा। यदि गाँवके लोग सिर खुल्ला रखने लगें और शहरके लोग सिर ढँक कर रखें, तो महात्माकी दृष्टिमें इसका कोई महत्त्व नहीं है। देखो! सिर खुलनेमें जो दोष-बुद्धि है और सिर ढँकनेमें जो महत्त्वबुद्धि है, वह महात्माके चित्तका स्पर्श नहीं करेगी। उसको तो देखनेके लिये जैसे मेला दिखता है, जैसे बंगला दिखता है, जैसे कालबादेवी

रोड दिखता है, जैसे कोई पशुशालामें हजारों-हजारों गाय-बैल दिखते हैं, वैसे खुला सिर और ढँका सिर दिखता है। उसको सृष्टिका ज्ञान तो है; वह बेहोश नहीं है; परन्तु, उसके चित्तपर अपनी वासनाओंका-संस्कारोंका दबाव नहीं है।

आप एक सम्प्रदायमें दीक्षित हो जाइये और फिर देखिये उसका दबाव। यदि हम संन्यासियोंमें जायें और हमारे शरीरपर गेरुआ कपड़ा न हो, तो संन्यासी हमको दस गाली सुनावेंगे। आपको सही बात सुनाते हैं। यदि कोई वैष्णव अयोध्यामें जाये और उसके सिरपर लम्बा तिलक न हो, तो वैष्णव लोग कहेंगे कि 'सिरपर लम्बा तिलक नहीं है, तो वैष्णव काहे का? तिलक नहीं लगाता है, तो भ्रष्ट हो गया।' अपनी पंगतसे बिल्कुल बाहर उठा देंगे।

जो जीवन्मुक्त है, वह न लाल कपड़ेमें बँधा हुआ है, न तिलकमें बँधा हुआ है, न प्रान्तमें बँधा हुआ है। वह तो निर्बन्ध है। वह तो मुक्त है। उसको ज्ञान है। अच्छा! उसके अपने संस्कार भी हैं, वह अपनी रहनी से रहता है; लेकिन, न वह अपने संस्कारके अनुसार दूसरेको चलाना चाहता है और न तो कोई संस्कारोंका गुट बनाना चाहता है। उसकी आँखपर चश्मा है और उसमें जो रंग है, वह वैसे ही दिखता है; परन्तु, वह यह समझता है कि रंग चश्मेका है और सृष्टि जो है, वह तो बिना किसी रंगकी ही है। सृष्टिमें रंग नहीं है। चश्मेमें रंग है। अपने अन्तःकरणके संस्कार अपनेको दुःख देते हैं। सृष्टि दुःख नहीं देती है। यह क्या है? **असंगतं स्थितं व्योम।**

ईश्वरकी सृष्टि ज्यों-की-त्यों है। ज्ञानी पुरुषको सृष्टि भास रही है-यह भी ठीक। देखो! अभान तो दो ही तरहसे हो सकता है। या तो आप अभ्यास करके अपनी वृत्तिको निरुद्ध या शान्त कर दो या उसको कुछ कहो। है ना? आप अपनी वृत्तिको आराम दे दीजिये कि वह इधर-उधर दूसरेको न देखे। उसको विश्राममें ले जाइये। सुषुप्तिमें ले जाइये। आभ्यासिक सुषुप्तिमें ले जाइये-समाधिमें ले जाइये। जब वृत्ति सुषुप्तिमें-समाधिमें लीन हो जायेगी, तब यह सृष्टि व्यक्तिको नहीं दिखेगी; नहीं तो, जब तक व्यक्ति अन्तःकरणका चश्मा लगाकरके बैठा है, तब तक उसको यह ऐन्द्रियक

सृष्टि दिखायी पड़ेगी। हाँ! यह ठीक है कि वह जानता है कि दरअसल ब्रह्म है; दरअसल ईश्वर है; इसलिये, **असंगतं स्थितं व्योम**।

यह तो केवल शुद्ध चिदाकाशमें सारी सृष्टि दिखायी पड़ रही है। जैसे सफेद पर्देपर सिनेमाके दृश्य दिखायी पड़ते हैं, वैसे सफेद पर्दा रूप ब्रह्ममें यह सारी सृष्टि दिखायी पड़ रही है। अगर बच्चा पर्देपर आग लगनेका दृश्य देखे, तो रोने लग जायेगा। अगर बच्चा पर्देपर चॉकलेट देखे तो खानेके लिए मचल जायेगा। रोना-डरना-मचलना-चिल्लाना तो बच्चेका ही काम है। बड़े-बूढ़े तो ऐसा काम नहीं करते हैं। वे न तो सिनेमाके पर्देपर आग लगना देखकर डरते हैं और न चॉकलेट देखकर खानेके लिए मचलते हैं।

जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें यह चिदाकाश बिलकुल स्वच्छ अधिष्ठान है। चिदाकाश माने स्वच्छ अधिष्ठान। स्वयं प्रकाश माने आत्मा। आत्मा और निर्मल आकाश। ज्ञानसे भिन्न निर्मल आकाश नहीं है और निर्मल आकाशसे भिन्न ज्ञान नहीं है। जहाँ अधिष्ठान और प्रकाशक-अधिष्ठान और द्रष्टा-दोनों एक हो जाते हैं, वहाँ पर्देपर चाहे जितने भी दृश्य दिखायी पड़ें, वे न तो अधिष्ठानमें चिपकते हैं और न ही द्रष्टामें चिपकते हैं। न प्रकाशमें वे दृश्य चिपकते हैं और न अधिष्ठानमें वे दृश्य चिपकते हैं। अधिष्ठान और द्रष्टा बिलकुल एक हैं। उसीको कहते हैं-**असंगतं स्थितं व्योम**।

जो अपनी बनायी हुई मोह-ममतापूर्ण सृष्टि थी, उसका तो हो गया लोप। सूर्य-चन्द्रमा-आकाशका दृश्य दिखायी पड़ रहा है। स्त्री-पुरुष दिखायी पड़ रहे हैं। वह देखता हुआ व्यवहार करता है; परन्तु, सर्वाधिष्ठान ब्रह्म और सर्व प्रकाशक आत्मा-साक्षी-दोनोंकी एकताकी दृष्टिसे उसमें सामनेवाली वस्तुसे मोह नहीं है। उसका अपने आपमें लेप नहीं है। आसक्ति नहीं है। न हम उससे चिपकते हैं और न वह हमसे चिपकती है। लेप कहीं नहीं है और अहंकार-दैन्य भी नहीं है। किसी भी धारणामें आबद्ध नहीं है।

हम लोग अपनी धारणाको इतनी सच्ची समझते हैं कि क्या कहें? हम जानते हैं कि हमारे द्वारा मानी हुई कितनी बातें एक-एक करके छूटती

गयीं। आपको कैसे बतावें? हम बचपनमें क्या-क्या मानते थे और वह मान्यतायें कैसे-कैसे मिटती गयीं? जब हम अपनी मान्यताओंके इतिहासपर ध्यान देते हैं। तब बात सामने आती है। आप कभी ध्यान देना। जिस समय आपने जो मान्यता मानी या बनायी, उस समय आप उसमें इतने तन्मय हो गये कि यही ठीक है और सब गलत है। जब आपने किसीपर गुस्सा किया, तब सोचा कि इसको दण्ड देना ही उचित है। जब आपने किसीसे प्यार किया, तब सोचा कि यही सर्वस्व है। इसके लिए हम मर जायेंगे। आपके जीवनमें ऐसी-ऐसी मनोवृत्तियाँ आयी हैं या नहीं? जिससे दुश्मनी हुई, वही बादमें दोस्त हो गया। जो दुनियामें दोस्त बना, वही बादमें दुश्मन हो गया। आपको अपनी मान्यता बदलनी पड़ी कि यह हमारा दोस्त है और यह हमारा दुश्मन है। जब आपने क्रोध किया, तब कहा कि यही उचित है। जब आपने राग किया, तब कहा कि यही उचित है। आपकी मान्यताओंका ऐसा इतिहास है कि नहीं? यह मैं आपके दिलकी बात बोल रहा हूँ कि नहीं? इस समय आपकी जो मान्यता है, इस समय आपका जो राग है, इस समय आपका जो द्वेष है, उसके बारेमें क्या आप कह सकते हैं कि बिलकुल परिपक्व ज्ञानके आधारपर या पूर्ण ज्ञानके आधारपर आपका वह राग है या आपका वह द्वेष है? क्या आप कह सकते हैं कि आपकी वह मान्यता कभी नहीं बदलेगी? आज भी आप गलत हो सकते हैं, जैसे दस बरस पहले गलत थे। जैसे पहले हमने अपनी मान्यताके कारण राग करके पश्चात्ताप किया, जैसे पहले हमने अपनी मान्यताके कारण द्वेष करके पश्चात्ताप किया; वैसे आजका राग-द्वेष भी हमको आगे पश्चात्ताप नहीं देगा, इसका क्या प्रमाण है? सावधानी तो यही है न? जब आप अपनी वृत्तिकी प्रवृत्तियोंपर ध्यान देंगे, जब आप अपनी मान्यताओंका इतिहास देखेंगे, तब आपको इस समय जिस दलमें शामिल हैं, उसको शायद बदलना पड़े। यह ममताका दल, दल नहीं दलदल है। है ना? जब तक आप परिपक्व ज्ञानदृष्टिमें–जिससे बड़ा कोई ज्ञान नहीं है, जिससे विशाल और कोई दृष्टि नहीं है, जिसके परे और कोई अनुभव नहीं है, नहीं पहुँच जाते, तबतक आप अपनी ही मान्यताको कैसे ठीक बता सकते हैं? उसको दूसरेके सिरपर कैसे लाद सकते हैं?

जीवन्मुक्तिका अर्थ होता है–दृष्टिकोणोंसे मुक्ति। जीवन्मुक्त दृष्टि-कोणोंसे मुक्त होता है। दृष्टिकोणका अर्थ क्या होता है? यदि किसीकी फोटो लेनी हो, तो कोण बनाते हैं। यदि ऊपरके कोणसे फोटो ली जाये, तो लम्बा आदमी नाटा दिखेगा। यदि नीचेके कोणसे फोटो लिया जाये, तो नाटा आदमी भी लम्बा दिखेगा। है न? आप तो जानते हैं। आजकल फोटोग्राफर लोग तो वह कमाल करके दिखाते हैं कि आपको क्या बतावें?

हमको याद है। हम एक बार 'ओशियाना'में गये थे। यहाँ यह 'रुक्मिणी माई मथुरादास' बैठी है न! इसने हमको एक फोटो दिखायी। उस फोटोमें पाँच स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। सब-की-सब एक सरीखी थीं। रुक्मिणीने पूछा–'इसमें मैं कौन हूँ? आप बताइये।' मैंने एकपर उंगली रख दी और कहा कि 'यह तुम हो।' दरअसल, वह फोटो इस ढंगसे ली गयी थी कि उसमें रुक्मिणीके पाँच फोटो थे। मेज पर बैठी पाँच रुक्मिणी एक साथ खा रही थीं। इसने पूछा–'इसमें मैं कौन हूँ? आप बताइये।' अब हमको तो सब एक सरीखी दिखती थीं। हमको यह मालूम नहीं था कि फोटोग्राफरका यह चमत्कार है कि वह एक को पाँच करके दिखा रहा है। यह हमारा अज्ञान था। एक ही पाँच रूपमें दीख रही थीं; लेकिन, हम पहचानते नहीं थे। यह हमारा अज्ञान था। जब हम शुरू-शुरूमें 'प्रेमकुटीर'में आते थे–रहते थे, तबकी यह बात है हो। अच्छा! अभी वह फोटो है भला!

यह फोटो लेनेका जो कोण है, वह लम्बेको छोटा बना देता है। छोटेको लम्बा बना देता है। पतलेको मोटा बना देता है। मोटेको पतला बना देता है। सुन्दरको कुरूप बना करके दिखा देता है। बिलकुल कुरूपको अत्यन्त सुन्दर बना करके दिखा देता है। हाँ! जो लोग लड़कियोंका फोटो देख करके ब्याह करते हैं, उनको फोटोग्राफर लोग धोखा देनेमें बहुत मदद करते हैं।

आप भी फोटो ले रहे हैं भला! दुनियाकी फोटो ले रहे हैं। किस कोणसे दुनियाकी फोटो ले रहे हैं? लम्बेको छोटा बना रहे हैं कि छोटेको लम्बा बना रहे हैं? कुरूप को सुरूप बना रहे हैं कि सुरूपको कुरूप बना रहे हैं? देखो! यह आपके कैमरेका गुण है। यह वस्तुका गुण नहीं है। वस्तु तो केवल वस्तु है। **असंगतं स्थितं व्योम।**

आपके चिदाकाश प्रकाशमें जो विश्वसृष्टि दिखायी दे रही है, उसमें जितनी अच्छाई-बुराई है, वह आपकी नजरमें-से निकलती है। जितनी अच्छाई-बुराई है, वह सृष्टिमें-से नहीं निकलती है; अपितु, वह आपकी नजरमें-से निकलती है। इसीको आध्यात्मिक दृष्टिकोण बोलते हैं। जीवन्मुक्त अपनी स्वच्छ दृष्टिसे सृष्टिको देखता है। उसकी निर्मल दृष्टि दिखायी देने वाले पदार्थोंमें गुण-दोष नहीं देखती है।

दिल्लीके 'इरविन अस्पताल'में हमारे ही खूनकी जाँच हो रही थी। एक दिन, जाँच हुई, तो सफेद-सफ़ेद कीड़े दीखायी दिये। डाक्टरने दवा दी दवा देनेके बाद भूरे-भूरे कीड़े दिखायी देने लगे। अच्छा! ऐसा मालूम पड़े कि एक कतरा खूनमें एक समुद्र उमड़ रहा है। है तो एक बूँद खून और लगता है समुद्र। एक बूँदमें समुद्र दर्शन-यह एक मशीनका चमत्कार ही तो है। ब्रह्ममें ब्रह्माण्ड-दर्शन दृष्टिका ही तो चमत्कार है। जीवन्मुक्तकी ब्रह्मदृष्टिमें गुणदोषात्मक-द्वन्द्वात्मक सृष्टि स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीतिमात्र होती है।

वाद-विवादमें नहीं फँसना चाहिए। जो वाद-विवादमें फँसता है, वह मतको पकड़ता है। जो मतिमें आ जाये, सो मत। मत उसको कहते हैं, जो बुद्धिके घेरेमें आ जाये। मतिका जो कर्म है, उसको मत बोलते हैं। भगवान् मतमें नहीं होते हैं। भगवान् मतसे परे होते हैं। मतिसे परे होते हैं। देखो! जो मतिके अन्दर होवे, उसके लिये तो मत बनाना ठीक है और जो मतिके बाहर होवे, उसके लिये मत बनाना ठीक नहीं है। केनोपनिषद्में श्रुति है-

**यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।** 2.3

जिसने यह समझा कि परमात्मा मतिका कर्म नहीं है, मतिसे परे है, उसने परमात्माको समझा।

गोटके सिन्धी लोग होते हैं न! एक सिन्धी होते हैं-हैदराबादी। हाँ! भाई-बन्धु-आमील। एक सिन्धी होते हैं-शिकारपुरी। एक होते हैं-गोटके सिन्धी माने गाँवके सिन्धी। अच्छा! एक बड़े प्रेमी गाँवके सिन्धी थे। उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा कि 'आप लोग हमारे घर भोजन करनेके लिए आओ।' जब हम लोग वहाँ भोजन करने गये, तब उन्होंने हम लोगोंको गद्दीपर बैठाया। अब खानेकी जगहपर माने सामने पट्टेकी जगहपर 'चकुली' माने 'तकिया'

रख दिया और भोजनकी थाली ला-लाकर चकुलीपर रखने लगे। वे लोग तकियाको चकुली बोलते हैं। अच्छा! महाराज! और सुनो! जब हम लोग खाने लगे, तब एककी थालीमें चावल परसा और उसको कलछीसे चला दिया। फिर, जब दूसरेकी थालीमें चावल परसा, तब उसको कलछीसे चला दिया। भला बताओ! सब झूठा हो गया न? हाँ-हाँ! सब-का-सब झूठा हो गया। अब उनको यह बात मालूम नहीं थी। उन लोगोंके यहाँ यह संस्कार नहीं था कि इसको झूठा माना जाता है या तकियेपर थाली रखकर नहीं खाया जाता है। पहले हम लोगोंको इस ढंगका भोजन करनेका संस्कार नहीं था। अरस-परसका बहुत विचार था। आसनपर बैठकर और पट्टेपर थाली रखकर भोजन करनेका विधान-व्यवस्था होती थी। खैर! 'श्रीउड़िया-बाबाजी महाराज' साथ बैठे थे। मैं था। 'दण्डी स्वामी स्वरूपानन्दजी महाराज', जो आजकल-पिछले दिनों 'रामराज्य परिषद्'के अध्यक्ष थे, हमारे साथ थे। उस समय वह बालक थे। 'स्वामी शान्तानन्दजी', जो आजकल ज्योतिषमठके शंकराचार्य हैं, वह भी हमारे साथ थे। उस समय वह हमारे ब्रह्मचारी थे। हम सब लोग उस पंगतमें साथ-साथ बैठे थे। अब महाराज! स्वरूपानन्दजी नाराज। शान्तानन्दजी नाराज। यह क्या किया? सब झूठा कर दिया। राम-राम-राम-राम। चकुली पर-तकियापर लाकर थाली रख दी और रुईकी गद्दी पर लाकर बैठा दिया। सब-के-सब नाराज। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज बोले-'भैया! आज तो हम सिन्धी हो गये। अब आओ। देखो तो सही। तुम लोगोंने पहले कभी सिन्धीपनेका मजा नहीं लिया होगा। आज इसका मजा लो। है ना?' श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने वैसे ही बैठकरके भोजन किया और हँसते हुए उसको आनन्द बना दिया। ऐसा कुछ भी न बोला और न ही जाहिर किया कि 'हम दण्डी स्वामी हैं या हम पवित्र ब्राह्मण हैं या हमारे यहाँ खानेका ऐसा संस्कार है।' हाँ! उनके व्यक्तिगत-पारिवारिक या साम्प्रदायिक जीवनके जो संस्कार थे। वे उनकी ज्ञान दृष्टिपर बिलकुल भी हावी नहीं हुए। उन्होंने खूब हँसते हुए और मस्तीमें बैठकर भोजन किया। इसीको बोलते हैं-

**यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य नोदेति नास्तमायाति।**

सुख मिलनेपर खिलता नहीं है। दुःख मिलनेपर मुरझाता नहीं है।

जैसा सामने आ गया, उसका मजा लेता है। कड़वे करेलेका भी एक स्वाद होता है। मृत्युका भी एक स्वाद होता है।

आपने शायद सुना होगा। एक बालक वैज्ञानिक परीक्षण कर रहा था कि जो सबसे भयावह जहर है, उसमें क्या स्वाद है? वह जो सबसे बड़ा जहर है, उसका क्या नाम है? 'पोटेशियम साइनाइड' (Potassium Sinide) बोलते हैं क्या? खैर जहरका नाम तो आप लोग जानते होंगे; लेकिन, उसमें स्वाद क्या है? यह किसीको मालूम नहीं था। यह वैज्ञानिकोंको भी मालूम नहीं था। एक विज्ञानका अनुसन्धान करनेवाला बालक यह जानना चाहता था कि उस जहरमें स्वाद कैसे होता है? उसने कागज-कलम अपने हाथमें लिया। उसने अपनी जीभपर वह जहर रखा। जैसा-जैसा स्वाद मालूम पड़ता गया, वैसा-वैसा वह लिखता गया और लिखते-लिखते मर गया। देखो! मृत्युका स्वाद लेनेके लिये और लोगोंको उसकी जानकारी देनेके लिये उसने मरणका वरण किया। आप देखिये जरा अपनी जानकारीके प्रेमको। जरा पुनर्विचार कीजिये कि जानकारीकी प्राप्तिमें आपकी कितनी रुचि-अभिरुचि है? आत्मा कैसा है? परमात्मा कैसा है? सत्य क्या है? इस जानकारीके प्रति आपकी दिलचस्पी कितनी है? आप इस बातपर जरा विचार तो कीजिये। अच्छा! नारायण! अब कल फिर सुनावेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 14

## नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!

आप लोगोंमें-से शायद थोड़े लोगोंको यह बात मालूम होगी कि संस्कृत भाषामें 'भक्ति' शब्दका अर्थ होता है-विश्लेषण। दर्शनशास्त्रमें इसी अर्थमें इसका प्रयोग होता है वेदान्तमें-मीमांसामें उसको बोलते हैं-भाक्तवेत्ता। भाक्तं। अलग-अलग करके देखना। धर्ममें भक्ति क्या है? धर्म और अधर्मका विवेक करके-विश्लेषण करके कि यह धर्म है और यह अधर्म है, धर्मको पकड़ना और अधर्मको छोड़ना। यह भक्ति है हो! उपासनामें भक्ति क्या है? अनिष्टको छोड़कर अपने इष्टको पकड़ना। अब देखो! जीवन्मुक्तिकी भक्ति क्या है? क्या यह दुनियाका मालूम न पड़ना ही जीवन्मुक्ति है? यह एक सवाल है। इसका जवाब क्या है? यदि जीवन्मुक्तिका विभाग यही हो कि जब दुनिया मालूम पड़ती है, तब दुनिया है और जब दुनिया नहीं मालूम पड़ती है, तब दुनियासे छूट गये, तो यह बात ठीक नहीं है। देखो! अगर इस दुनियाका मालूम न पड़ना ही भक्ति है-जीवन्मुक्ति है, तो डाक्टर लोग 'इंजेक्शन' (Injection) लगाकर आपको जीवन्मुक्त बना देंगे। कभी-कभी आप शराब पीकरके भी जीवन्मुक्त हो जायेंगे। हाँ! कभी मूर्च्छित होनेपर भी जीवन्मुक्त हो जायेंगे। रोज-रोज सुषुप्ति दशामें जीवन्मुक्त हो जायेंगे। महाप्रलयमें आप जीवन्मुक्त हो जायेंगे। समाधि लगनेपर आप जीवन्मुक्त हो जायेंगे।

असलमें, एक मजहबके लोगोंने यह 'स्टण्ट' (Stunt) किया कि जिसको दुनिया मालूम पड़ती है, वह कैसा महात्मा? महात्मा तो वह है, जिसको दुनिया मालूम ही नहीं पड़ती है। स्टण्ट इसलिए किया कि जो हमारे पन्थके लोग हैं, वह किसी को जीवन्मुक्त न मानें। जो हमारे बाल-बच्चे हैं, वह किसीको जीवन्मुक्त न मानें। जो लोग यह कल्पना कर बैठते हैं कि महात्माको तो यह दुनिया मालूम ही नहीं पड़ती है, उनको इस जीवनमें महात्मा मिल ही नहीं सकता है। ये लोग कैसे उसका दर्शन करेंगे? कैसे उससे बातचीत करेंगे? कैसे उसका उपदेश ग्रहण करेंगे? उपदेश-परम्पराका ही बिलकुल ध्वंस हो जायेगा। यदि यह बात मान लें कि महात्माको दुनिया

मालूम ही नहीं पड़ती, तो उपदेश-परम्पराका ही बिलकुल नाशहो जायेगा। मालूम न पड़ना तो सुषुप्तिमें है। सुषुप्तिमें दुनिया मालूम नहीं पड़ती है। परन्तु, सुषुप्तिमें दुनियाका बीज होता है। सुषुप्ति टूटी और वहीं दोस्त और दुश्मन खड़े हुए। सुषुप्ति टूटी और वहीं सुख-दुःख खड़ा हुआ। वहीं हर्ष-शोक आया। मूर्च्छासे उठे, तो वही दुनिया। समाधिसे उठे, तो वही दुनिया। महाप्रलयके बाद सृष्टि हुई, तो फिर वही दुनिया। नशा उतर गया, तो फिर वही दुनिया। मूर्च्छा टूट गयी, तो फिर वही दुनिया।

गुरुजीने 'हिप्नोटाईज' (Hypnotise) करके-आपके सिरपर हाथ रखके, नजरसे देख करके, मनसे संकल्प करके आपकी मनोवृत्तिको शान्त कर दिया। इसको हम ना नहीं बोलते हैं। ऐसा किया जा सकता है। हम मान लेते हैं। मानके जवाब देना अच्छा रहता है हो! इनकार करनेपर कभी वैसे आदमीसे आपका पाला पड़ जायेगा, तो आप आश्चर्यचकित हो जायेंगे। तो चाहे कोई नस दबाकर आपको बेहोश कर दे, चाहे सिरपर हाथ रखकर आपको बेहोश कर दे, चाहे आँखसे देखकर बेहोश कर दे, बेहोशी तो रोग है। बेहोशी जीवन्मुक्ति नहीं है। यह तो नासमझ लोग बेहोशीको सबसे ऊँची अवस्था मानते हैं। जो समझदारीका प्रेमी है, वह भला बेहोशीको जीवन्मुक्ति मानेगा? इस बीसवीं शताब्दीमें यह मान बैठना कि जिससे अपनी समझका लोप हो जाये, जिससे अपनी बुद्धि मूर्च्छित हो जाये, वह सबसे ऊँची अवस्था है, तो यह विकास नहीं बल्कि विकारकी पराकाष्ठाका लक्षण है। जीवन्मुक्ति माने बेहोशी नहीं। जीवन्मुक्ति माने होश-हवास। है न? हाँ!

लोभी लोग वस्तु-परतन्त्र होते हैं। बोले-'भाई! यहाँ ऐसे काम नहीं होगा। कुछ दिखाओ।' मोही लोग परिवार-परतन्त्र होते हैं। कामी लोग स्त्री-परतन्त्र होते हैं। आशिक लोग माशूक-परतन्त्र होते हैं। उच्छृंखल लोग मन-परतन्त्र होते हैं। **विज्ञानं यज्ञं तनुते।** जब विज्ञानकी प्रधानता होती है माने बुद्धि-विज्ञानमय कोषमें बैठे हुए चैतन्यकी प्रधानता होती है, तब मनुष्य अपनी इन्द्रियोंकी तृप्ति और अपने मनकी प्रधानता न रखकरके यज्ञका विस्तार करता है। सूर्य यज्ञकर रहा है-प्रकाश देकरके। चन्द्रमा यज्ञ कर रहा है-शीतलता देकरके। आकाश यज्ञकर रहा है-हमको धारण करके। वायु यज्ञकर रहा है-हमको हवा-साँस देकरके। जल यज्ञ कर रहा है-हमको

तृप्ति देकरके। पृथ्वी यज्ञ कर रही है–हमको अपनी गोदमें उठाकरके। जैसे सूर्य–चन्द्रमा–आकाश–वायु–अग्नि–जल–पृथ्वी–यह सब यज्ञकर रहे हैं, ठीक वैसे ही, हमारी बुद्धि भी यज्ञका विस्तार करती है माने उसके द्वारा दूसरोंका हित ही होता है। अहित नहीं होता। यह 'तैत्तिरीय श्रुति' है–'**विज्ञानं यज्ञं तनुते**'। यज्ञका विस्तार कौन करता है? विज्ञानात्मा। जीव ईश्वर-परतन्त्र होता है। जीव और ईश्वरका भेद भ्रान्ति–परतन्त्र होता है। अभेद परमस्वातन्त्र्य है। जीवन्मुक्तिकी जो स्थिति है, वह अभेदमें है। यह हमने कही–जीवन्मुक्तिकी भक्ति। भक्ति माने बद्ध पुरुषकी अपेक्षा अलगाव। सांख्यवादी विवेक–परतन्त्र होता है। योगी समाधि–परतन्त्र होता है। उपासक इष्ट–परतन्त्र होता है। शिष्य गुरु–परतन्त्र होता है। अब उसके साथ–साथ एक और बताते हैं।

शास्त्रमें गुरु–निष्ठा तो वर्णित है; परन्तु, शिष्य–निष्ठाका वर्णन शास्त्रमें नहीं है। इसका क्या मतलब है? आपको बतावें! बिना इसके जीवन्मुक्ति नहीं हो सकती है। अगर एक साधु दूसरे साधुसे उसके चेलोंकी 'लिस्ट' (List) माँगे, तो वह नहीं देगा। देखो! इसकी जानकारी हमारे जितनी किसको होगी? हम तो भारत साधु समाजके अध्यक्ष हैं। यदि हम किसी साधुसे कह दें कि तुम हमें अपने चेलोंकी लिस्ट बता दो, जिससे हम उनके पास साधु–समाजके चन्दाके लिए चिट्ठी भेजेंगे, तो कोई साधु नहीं बताता है हो! जब गुरुकी यह मनोवृत्ति होगी कि चेला हमारा चेला बना रहे, यह फूट न जाये, दूसरेका चेला न बन जाये, तब गुरु ही शिष्य–निष्ठ हो गया। शिष्य गुरु–निष्ठ नहीं हुआ। शांकर–सम्प्रदायका चेला रामानुज–सम्प्रदायमें न जाये। रामानुज सम्प्रदायका चेला शांकर–सम्प्रदायमें न जाये। खैर! यह तो सम्प्रदाय–निष्ठा हुई। यह नहीं। हमारा चेला–हमारा चेला। एक ही सम्प्रदाय में। गुरुभाई–गुरुभाई। तो, ऐसे गुरु शिष्य–निष्ठ होते हैं। देखो! गुरु–शिष्यका जो सम्बन्ध है, वह गुरुकी ममतापर निर्भर नहीं करता है। वह शिष्यकी श्रद्धापर निर्भर करता है। जो गुरु ममतावान् होगा, वह जीवन्मुक्त ही नहीं होगा। जो शिष्य अश्रद्धालु होगा, वह शिष्य ही नहीं होगा। गुरु शिष्य–निष्ठ हो, ऐसा वर्णन शास्त्र में कभी नहीं होगा। इसीलिये जीवन्मुक्तके लिए शिष्य–संग्रहका निषेध है। जीवन्मुक्त पुरुष शिष्य–संग्रह नहीं करता है।

अब देखो! आपको सुनाते हैं। जीवन्मुक्तिका मजा क्या है?

**नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।**
**यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते।**

जीवन्मुक्त किसको कहते हैं? अब यह 'जीवन्मुक्ति' शब्द आप लोगोंका परिचित हो गया है। आहा! उसमें बीजाभाव मुख्य है। अप्रतीति मुख्य नहीं है। सुषुप्तिमें बीज है। समाधिमें बीज है। मूर्च्छामें बीज है। प्रलयमें बीज है। शक्तिपातमें बीज है। 'हिप्नोटिज्म' (Hypnotism) में बीज है। मिसमेरिज्म (Mismerism) में बीज है। नशामें बीज है। जीवन्मुक्तिमें बीज नहीं है। चना तो है; परन्तु, भुन गया है। भुने हुए चनेका स्वाद दूसरा होता है हो! चना तो है। परन्तु, वह निर्बीज हो गया। कैसे निर्बीज हो गया? भुने जानेसे उसकी अंकुरोत्पादनशक्ति नष्ट हो गयी। जीवन्मुक्तका शरीर है। उसका अन्तःकरण है। उसका देखना है। उसका बोलना है। उसका हँसना है। उसका चलना है। उसके जीवनमें सुखके निमित्त आते हैं। उसके जीवनमें दुःखके निमित्त आते हैं। **सुखे दुःखे मुखप्रभा नोदेति नास्तमायाति।**

बोले–महाराज! आप जीवन्मुक्त हैं। आपके शरीरमें रोग कैसे हुआ? हैं? बोले–भाई! इतनी बड़ी लाख रूपये की गाड़ी और इसका धुर्रा घिस कैसे गया? बोले–भाई! जितना चक्कर लगानेके लिए वह मशीन बनी थी, उसकी उमर पूरी हो गयी। वह घिस गयी। जब कोई मशीन बनाते हैं न, तब साईंस से–विज्ञानसे इस बातका पता लगा लिया जाता है कि यह मशीन कितना चक्कर लगानेके बाद बेकार हो जाती है? इसमें कितना सामर्थ्य है? इसका डिजाईन क्या है? यह कितनी गर्मी और कितनी सर्दीमें काम कर सकती है? कितनी गर्मी लगनेपर यह गल जायेगी? कितनी सर्दी पड़नेपर यह जाम हो जायेगी? हाँ! जब यह मशीन बनती है न, तब यह पता लगा लिया जाता है कि यह कितने चक्कर लगावेगी? इसकी शकल–सूरत क्या होगी? जीवन्मुक्तका यह शरीर जो है, वह एक मशीन है। यह धड़कन कितनी बार चलेगी? हाँ! यदि सम्भालकर चलाओगे, तो ज्यादा भी चल सकती है। यदि बिना सम्भाले चलाओगे, तो थोड़ेमें भी खतम हो सकती है। उम्र बढ़ सकती है; लेकिन, ध्यान रहे कि गाड़ीको सम्भालकर चलाओगे, तो ज्यादा दिन चलेगी।

हम मुजफ्फरनगरसे हरद्वार मोटरमें जाते हैं। जिनकी मोटर है, उनका ड्राइवर बहुत बूढ़ा है। बड़े मजेसे गाड़ी चलाता है। वह बोलता है–'महाराज! यदि डेढ़ घण्टेमें नहीं पहुँचेंगे, तो दो घण्टेमें पहुँचेंगे। क्या जल्दी है?' बड़ी शान्तिसे ले जाता है। नारायण! जब जवान ड्राइवर चलाता है, तब तो भगवान् ही बचाये। एक बारकी बात है। हम लोग मोटरमें इलाहाबाद गये। ड्राइवर अपने मालिकपर बहुत नाराज था। कानपुरसे इलाहाबादके बीचमें तो तीन सूअर मरे। तीन कुत्ते या सूअर। हमको ठीक-ठीक याद नहीं है। बल्कि दोनों समझो। दो कुत्ते और एक सूअर। दोनों ही मरे। ये लोग करें–हाय! हाय! हाय! 'प्रबुद्धानन्द' करें–हाय! हाय! हाय! 'दादाजी' करें–हाय! हाय! हाय! हमने कहा–'अरे! आगे देखो। पीछे मत देखो।' है ना? ड्राइवर तो बेतहाशा मोटर चला रहा था। जवानीमें मोटर चलानेका शौक दूसरा होता है और बुढ़ापेमें बहुत सम्भालके चलाते हैं। अनुभवी हो जाते हैं न! यह जीवन्मुक्त संसारका अनुभवी है हो। इसने बहुत रातें देखी हैं। बहुत दिन देखे हैं। बहुत गर्मी देखी है। बहुत सर्दी देखी है। बहुत लड़ाई देखी है। है ना? सुखे-दुःखे। इसको मालूम है कि कालकी धारामें घड़ीकी सूई जैसे ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर घूमती रहती है, वैसे कालकी धारामें ये सुख-दुःख भी घूमते रहते हैं। कभी सुखके निमित्त आते हैं और कभी दुःखके निमित्त आते हैं। शरीरमें रोग आते भी हैं और चले भी जाते हैं। जीवन्मुक्त इसको भली-भाँति जानता-पहचानता है।

यह जीवन्मुक्त है? जरा शकल तो देखो। नाक कैसी चिपटी है? हैं? आँख ढेंढर है। इसको यदि जीवन्मुक्त होना होता, तो अन्धा क्यों पैदा होता? ऐसे कभी नहीं सोचना भला! शरीरकी जो डिजाईन है–बनावट है, वह पैदा होनेसे पहले बनती है। उसमें गर्मी-सर्दी सहनेकी कितनी ताकत रहेगी? माने कितनेमें वह सुखी और कितनेमें वह दुःखी हो जायेगा? यह भोग पहलेसे बनता है? उसकी धड़कन लगभग कितनी बार चलेगी? यह आयु पहले से तय होती है। हमारे आयुर्वेदके अनुसार आयुको लम्बा किया जा सकता है। यदि ज्यादा गुस्सा नहीं करोगे, ज्यादा भोग नहीं करोगे, ज्यादा असंयम नहीं करोगे, तो आयुको लम्बा-से-लम्बा किया जा सकता है। पारेके शोधन और सेवनसे कैसे आयु बढ़ती है, इसका वर्णन आयुर्वेदमें मिलता है। जैसे खाद देनेसे पेड़की उम्र बढ़ती है, वैसे शरीरकी उम्र भी बढ़ती है।

अब देखो! **सुखे दुःखे मुखप्रभा।** जीवन्मुक्तके जीवनमें सुखके निमित्त आते हैं और दुःखके निमित्त भी आते हैं। जैसा बाह्याकाश है, वैसा ही हृदयाकाश है भला! उपनिषद्में स्पष्ट एक मन्त्र है हो। **यावानयम् आकाशः तावान् अन्तराकाशः।** जितना बड़ा यह बाहरी आकाश है, उतना ही बड़ा और वैसा ही मनुष्यका हृदयाकाश है। उसमें कभी तमोगुणका अन्धेरा छा जाता है। कभी रागकी-रजोगुणकी रंगीनी आ जाती है। कभी सत्त्वगुणकी शान्ति आ जाती है। हृदयाकाशमें कभी कुछ और कभी कुछ आ जाता है। जैसे शरीरमें जुकाम होता है। कभी कफ बढ़ जाता है। कभी वात बढ़ जाता है। कभी पित्त बढ़ जाता है। जुकाम तीनों तरहका होता है हो। पित्तज भी होता है, वातज भी होता है और कफज भी होता है। ऐसे ही जीवनमें सुखके निमित्त और दुःखके निमित्त आते हैं। कभी कोई बिछुड़ जाता है, तो लगता है कि हाय! हाय! इसके बिना हम मर जायेंगे। कभी कोई जुड़ जाता है, तो लगता है कि बस! मौज तो अब आयी है। यह मालूम पड़ता है न? कल आपको बताया था कि आप अपनी मनोवृत्तिका इतिहास देखिये। आप शरीरका इतिहास खूब याद रखते हैं। आप अपने मनके इतिहासपर ध्यान नहीं देते हैं। यह गिरगिट सबेरेसे लेकर शाम तक कितने रंग बदलता है। जरा ध्यानसे देखिये तो सही। है ना?

हमारे एक चेले थे। वह दोपहरको और शामको भोजनके समय बोलते थे कि 'बिलकुल भूख नहीं है। कुछ खाया ही नहीं जाता है।' हमारे सामने आते ही वह रोने लगते थे-झरझर आँसू गिरते थे। अगर उनको कोई हँसानेवाला या चुटकुला सुनानेवाला मिल जाता, तो रातको बारह-एक बजे तक जागते और हँसते रहते थे। सबेरे सूर्योदयसे पहले ही अगर कोई समोसा-कचौड़ी-जलेबी ले आवे और उनके साथ बैठकर खाने लगे, तो खूब भरपेट खा लेते थे। दोपहरको कहते थे कि 'भूख नहीं है।' महाराज! यह दुनिया रंग बदलती है। यह दुनिया ही रंग नहीं बदलती, बल्कि अपना मन भी रंग बदलता है। आज जो प्यारे लगते हैं, वह भी रंग बदलते हैं भला! आज जो दुश्मन लगते हैं, वह भी रंग बदलते हैं। अपनी इन्द्रियाँ भी नये-नये विषय ढूँढ़ती हैं। रंग बदलती हैं। अपनी समझदारी भी रंग बदलती है भला! हमने यह देखा है कि जब जिससे हमारा तादात्म्य हो गया-जिससे हम एक

हो गये–जिसपर हम चढ़ बैठे, तब उससे हम आत्मवत् प्रेम–प्यार करने लगे। तादात्म्य होनेका अर्थ है–दूसरी चीजपर चढ़ बैठना, उसके साथ तन्मय हो जाना। जब हमको क्रोधसे तादात्म्य हुआ, तब हमको जितनी प्रिय अपनी आत्मा लगती है न, उतना ही प्रिय क्रोध भी लगा। जब हमको कामसे तादात्म्य हुआ, तब हमको जितनी प्रिय अपनी आत्मा लगती है न, उतना ही प्रिय काम भी लगा। जब काम चला गया–क्रोध चला गया, तब आत्मा तो ज्यों–की–त्यों रही। यह क्या हुआ? यह हमारे ऊपर क्या आफत बरसा हो गयी? यह क्या हम गुण्डेसे एक हो गये? क्या हम इस बदमाशके साथ मिल गये? है ना? जिन्दगीमें गुण्डे भी आते हैं और बदमाश भी आते हैं। जब हम उनके साथ मिल जाते हैं, तब वह हमारे स्वरूपके अनुरूप नहीं होता है।

हमको अपने बचपनकी एक बड़ी मामूली–सी घटना याद है। हम खलिहानमें सोया करते थे। खेतोंमें–से अनाज काटकर जहाँ रखा जाता है न, वहाँ सोया करते थे। वहाँसे रातको कोई खेतसे कटा हुआ अनाज उठा न ले जाये, इसके लिये सावधान रहनेके लिये हम खलिहानमें सोते थे। गाँवका छोटी किस्मका कोई एक आदमी था। वह अपनी बकरियोंको रातको छोड़ देता था और वे खेतोंमें–खलिहानोंमें घूमकर, अपना पेट भरकर, रात–रातमें उसके घरमें लौट आती थीं। हमारे पास काम करनेवाला एक आदमी था। रातको जब बकरीका बच्चा आया, तब उस आदमीने उसको पकड़ लिया और हमारे पास आकर कहा–'मालिक! यह आदमी–छोटी किस्मका–बहुत परेशान करता है। यह बकरीका बच्चा बहुत नुकसान करता है। आज हम इस बच्चेको ले जाते हैं। हम लोगोंके घरमें तो खाया जाता है। हम काटकर खा लेंगे।' उन लोगोंके घरमें खानेका रिवाज है। हमने कह दिया–'ले जाओ।' हमारे खलिहानके पास ही छोटी जातिका एक आदमी बैठा था। वह यह बात समझ रहा था कि यहाँ क्या हो रहा है? बकरीका बच्चा क्यों पकड़ लिया गया? इस आदमीने उनके पास जाकर क्या पूछा? उन्होंने इसको क्या सलाह दी? आदि। उस आदमीको बकरीका बच्चा ले जाते देखते ही वह छोटी जातिका आदमी झट हमारे पास आ गया और बोला–'भैयाजी! यह काम आपके स्वरूपके अनुरूप नहीं है।' छोटी

जातिका आदमी हमसे उमरमें बड़ा था। बुजुर्ग था। उसने आकर हमको ऐसे कहा कि 'आपके स्वरूपके अनुरूप यह काम नहीं है।' हमने तुरन्त कहा- 'जरा पुकारो उस आदमी को।' उसने जोरसे चिल्लाकर उसको पुकारा। हम तो इतनी जोरसे बोल नहीं सकते थे। उसकी पुकार सुन कर वह लौटकर आ गया। हमने कहा-'अच्छा भाई! इसको छोड़ दो।' उसने बकरीका बच्चा छोड़ दिया। नारायण! जब आप गुण्डेके साथ-बदमाशके साथ एक होते हैं, तब यह आपके स्वरूपके अनुरूप नहीं है। है ना? हमको वही बात याद आती है-'भैयाजी! यह आपके स्वरूपके अनुरूप नहीं है।' जीवन्मुक्तके स्वरूपके अनुरूप क्या है और क्या नहीं है? देखो! उसका ऐसा अनुभव है कि अब तक सुख देनेवाली कितनी चीजें आयीं और चली गयीं। जब आयीं और हमने उनसे मेल किया, तब बड़ी सुखप्रद मालूम पड़ीं। जब चली गयीं, तब बड़ी दुःखप्रद मालूम पड़ीं।

अब हम आपको एक बात सुनाते हैं। ब्रह्माजी जब यह सष्टि बनाते हैं, तब तौल-तौलकर बनाते हैं। यदि एक किलोका पापड़ बनाना हो, तो उसमें कितना तोला नमक पड़ना चाहिए? यह पापड़ बनानेवालोंको मालूम होता है। अलग-अलग तौल-मेल है ना? दालमें कितना नमक डालना चाहिए? चावलमें कितना नमक डालना चाहिए? यह बात लोगोंको मालूम पड़ती है। विधाताने जो यह सृष्टि बनायी है, वह बिलकुल तौल-तौलकर बनायी है। आपको बिलकुल ईमानदारीकी बात बता रहा हूँ। है ना? हाँ! पचास वर्षोंमें समझने जो काम किया है, सो आपको बता रहा हूँ। दुनियाकी सब चीजोंमें सुख और दुःख बिलकुल तौलकर बराबर-बराबर डाले हुए हैं। यदि आप इस सत्य सिद्धान्तको नहीं समझते हैं, तो अब इसपर विचार कीजिये। हम यह दबाव नहीं डालते कि कबीर साहबने ऐसा कहा है और दादू दयालने ऐसा कहा है। हम यह जोर नहीं डालते कि शंकरने ऐसा कहा है और रामानुजने ऐसा कहा है। आपके दिमाग पर कोई दबाव नहीं डालते हैं। आप विचार करके देखना। हमको खीर खानेसे स्वाद भी आया है और हमारे शरीरकी ताकत भी बढ़ी है। हमको खीर खानेसे अपच भी हुआ है। हमको खीर देखकर कै भी आयी है और खीरसे रोग भी हुआ है। दुनियामें जो लोग प्यार देते हैं, वे लोग कितना गुलाम बनाना चाहते हैं-यह हमको

मालूम है। जो लोग सेवा करते हैं, वे लोग कितनी सेवा लेते हैं–यह हमको मालूम है। जो लोग हमारा दबाव सहते हैं, वे लोग बादमें कितना दबाव डालते हैं–यह हमको मालूम है। चन्दा लेनेवालोंको यह मालूम होगा। है ना? जब एक सेठ दूसरे सेठसे चन्दा लेता है, तब बड़ा अच्छा लगता है कि हमने चन्दा लिया। लेकिन, जब फिर वह सेठ, जिससे तुमने चन्दा लिया है, तुम्हारे पास चन्दा लेने आता है, तब कैसा लगता है? जिससे तुम चन्दा लोगे, उसको देना पड़ेगा। तो भाई मेरे! विधाताने यह सारी सृष्टिमें सुख और दुःख बिलकुल तौल-तौलकर डाला है।

हमारे परिवारके एक बुजुर्ग सदस्य थे। वह पहले बड़े पहलवान थे। खूब कसरत करते थे। बुढ़ापेमें भी धूल-वूल तो लगाते ही थे। सत्तर-अस्सी बरसकी उम्र हो गयी थी। हम लोग बच्चे थे। अब उनका शरीर दर्दसे दुखता था। व्यायामके बिना और अखाड़ेमें लड़े बिना उनकी एक-एक हड्डी-हड्डी दुःखती थी हो। वह पट लेट जाते थे और हम लोगोंसे कहते थे कि हमारे शरीरपर चढ़कर अपनी एड़ीसे कुचलो। है ना? हम कभी-कभी गिर पड़ते थे। वह कहते थे कि हाथसे डण्डा पकड़ो और डण्डा लेकर पाँवकी एड़ीसे हमारी पीठपर, पाँवपर हमको कुचलो। देखो! जिस व्यायामने उनको अखाड़ेमें इतनी शक्ति दी थी, उसी व्यायामके कारण उनको कितना असह्य दर्द हुआ।

'श्रीउड़ियाबाबाजीमहाराज'के पास एक पहलवान आये थे। उन्होंने बताया कि उन्होंने 'गामा'से कुश्ती लड़ी थी और गामाने अपनेको कुश्ती लड़नेसे बचा लिया था। इतने बड़े पहलवान थे। 'गामा'का नाम तो आप लोगोंने शायद सुना हो। बड़ा भारी पहलवान हो गया था–संयुक्त भारतमें–सारे विश्वमें। वह विश्वविजयी पहलवान गामा हमसे कतरा गया। उसने हमसे कुश्ती नहीं लड़ी। उन पहलवान सज्जनने श्रीउड़िया बाबाजीसे यह बात कही। महाराज! उनको रोज खानेको दो सेर बादाम चाहिए था और पीनेको नौ सेर दूध चाहिए था। वह चार-पाँच सेर पूरी खा जाते थे। अब बुड्ढे हो गये थे। बुढ़ापेमें उनको खानेके लिये नहीं मिलता था। पहलवानी छूट गयी। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके पास आये। बोले–'महाराज! आश्रय दो।' परन्तु, आश्रमवालोंने कहा–'महाराज! हमलोग इनको रोज-रोज दो सेर

बादाम, नौ सेर दूध और चार-पाँच सेर पूरी नहीं खिला सकते हैं।' उन पहलवानको दस दिनमें विदा कर दिया गया हो! जिस पहलवानीने, जिस दूधने-बादामने-पूरीने उनको पहले बड़ा सुख दिया था-बड़ा अभिमान दिया था, उसीने उनको बादमें बड़ी तकलीफ दी!

यह देखो! जो स्त्री बड़ी प्यारी लगती थी, वही जब दूसरे किसीको बातचीत करने लग गयी-हँसने-बोलने लग गयी, तब उसके ऊपर शंका हो गयी, शंका हो गयी, तो नींद नहीं आवे। कहनेका अभिप्राय यह है कि जीवनका यह रहस्य है कि जिससे तुमने सुख लिया है, वह तुमको दुःख देगा। जिसने तुमको दुःख दिया है, वह तुमको सुख भी देगा। यह सुख-दुःखका आना-जाना कोई बहुत कीमती चीज नहीं है। जब सुख आता है, तब हम उसका मूल्यांकन जरूरतसे कुछ ज्यादा ही कर लेते हैं। जब दुःख आता है, तब भी हम उसका मूल्यांकन जरूरतसे कुछ ज्यादा कर लेते हैं। हम सुख-दुःखकी जो कीमत आँकते हैं न, वह जरूरतसे अधिक कीमत आँकते हैं।

एक बार एक जौहरीसे एक हीरेके बारेमें चर्चा हुई। उसने बताया कि बेचनेपर यह हीरा डेढ़ लाखमें बिकेगा और खरीदनेपर यह ढ़ाई लाखमें मिलेगा। यह क्यों? हीरा तो एक ही है, तब मूल्यांकन दो तरहका क्यों है? असलमें, हीरेमें वह कीमत नहीं है। जिसको हीरेकी जरूरत है, उसके लिये वह ढ़ाई लाखका है। जिसको उसकी जरूरत नहीं है, उसके लिए वह लाख सवालाखका है। कभी-कभी तो हमारे पास ऐसे लोग भी आते हैं, जो हमसे कहते हैं, 'महाराज! हमने एक आदमीके घरमें अपने लाख रुपयेका जेवर बीस हजार रुपयेमें गिरवी रख दिया है। आप उस आदमीसे कह दें कि वह हमको जेवर लौटा दे। हमको उसको बेचनेकी जरूरत है। यदि आपके कहनेसे वह हमको हमारा जेवर लौटा दे, तो हम जेवर बेचकर बीस हजार नहीं बल्कि पच्चीस हजार दे देंगे।' ऐसे कहते हैं। भला बताओ! यह दुनियाका मूल्यांकन क्या है? यह जो आप संसार की कीमत आँकते हैं, वह क्या है? 'गाँधीजी'के पहले क्या खादीकी कीमत इतनी थी? उसका मूल्यांकन कहीं इतना था? गाँधीजीने खादीकी इज्जत बढ़ा दी। क्या पहले अंग्रेजोंके प्रति इतनी ग्लानि थी? 'लोकमान्य तिलक'ने जनताको नारा

दिया–'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' और अंग्रेजोंके प्रति ग्लानि–विरोध बढ़ा दिया। असलमें, जनमानस जो है, वह बदलता रहता है और उस बदलते हुए मनमें संसारका मूल्यांकन भी बदलता रहा है।

आपको एक बात सुनाता हूँ। सपनेका दृष्टान्त पुराना है सिनेमाका दृष्टान्त उससे नया है। सपनेका दोस्त और सपनेका दुश्मन स्वप्नपुरुषका ही होता है। सपनेमें हम नहीं होते। हम तो पलंगपर लेटे हुए होते हैं। सपनेमें हम जो सपनेके होते हैं, उसीका दोस्त और दुश्मन होता है। द्रष्टाका दोस्त–दुश्मन नहीं होता है। द्रष्टा की दृष्टिमें तो सारा स्वप्न है। स्वप्नके जिस शरीरमें हम 'मैं' कर लेते हैं, उसीके दोस्त–दुश्मन होते हैं। स्वप्नमें दीखनेवाले तात्कालिक शरीरमें जब हम 'मैं' कर लेते हैं, तब उस 'टेम्पोरेरी' (Temporary) शरीरके दोस्त–दुश्मन होते हैं। द्रष्टाकी दृष्टिमें तो समूचा स्वप्न है। अच्छा! सिनेमाके पर्देपर जो महात्मा होता है और सिनेमाके पर्देपर जो दुष्ट होता है, उससे पर्देका क्या लेना–देना है? महात्माको देखकर कभी–कभी लोग नमस्कार करते हैं। यदि पर्देपर गंगा मैया आ जायें, तो देखनेवाले सनातनधर्मी हिन्दू लोग गंगा मैया को हाथ जोड़ लेते हैं। यदि सिनेमाके पर्देपर रावण आ जाये, तो उसके प्रति लोग घृणा करने लगते हैं। पर्देको न रामके प्रति श्रद्धा होती है और न रावणके प्रति घृणा होती है। है कि नहीं? और रोशनीको? जहाँ राम है, वहाँ रोशनी राम दिखाती है और जहाँ रावण है, वहाँ रोशनी रावण दिखाती है। रोशनी और पर्दा–दोनोंको राम और रावणसे कुछ लेना–देना नहीं है। पर्देपर रोशनीसे मिलकर जब राम आता है, तब पर्दा राम दिखाता है। पर्दे पर रोशनीसे मिलकर जब रावण आता है, तब पर्दा रावण दिखाता है। ऐसे ही, यह अधिष्ठान ब्रह्म पर्दा है। स्वयं प्रकाशमान होनेसे रोशनी भी यही है। अद्वैत दृष्टिमें रोशनी और पर्दा–दोनों एक हैं।

जब बड़े–बड़े शास्त्रार्थी पण्डित इकट्ठे होते हैं न, तब ऐसी–ऐसी बात चलती है कि उसका प्रसंगसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। वे बहक जाते हैं। वह प्रसंग और बात दूसरी ओर बह जाते हैं। एक जगह कई पण्डित इकट्ठे हुए थे। यह जो बैठे हैं न स्वामीजी, यह बहुत बड़े पण्डित हैं। बहुत बड़े विद्वान् हैं और महात्मा हैं। यह स्वामीजी तो महात्मा भी हैं और विद्वान भी

हैं। डबल हैं न! हम तो केवल पण्डितोंकी चर्चा करते हैं। तो पण्डितोंके बीच यह सवाल पैदा हुआ कि किम् नाम एक्यम्? बोले–'अस्य कोऽर्थ:?' इसका क्या अर्थ है? पण्डित बोला–'अर्थे विवादो भवति। अर्थाभावे विवादो न भवति।' जहाँ अर्थ होता है, वहाँ तो विवाद–ही–विवाद होता है। यदि अर्थाभाव हो, तो कोई विवाद नहीं है। जहाँ पैसा है, वहाँ झगड़ा है। जहाँ पैसा नहीं है, वहाँ झगड़ा नहीं है। अगर हमारी इस बातका कोई मतलब होता, तो इसमें वाद–विवाद खड़ा होता। इस बातका कोई मतलब ही नहीं है। इसलिये कोई वाद–विवाद खड़ा ही नहीं होगा। 'अर्थाभावे कोविवाद:?' अर्थाभावमें विवाद क्या है?

यह जो सिनेमाके पर्देपर शिष्ट और दुष्टकी तस्वीर है, वहाँ अर्थ नहीं है। वहाँ शकल–सूरत है। वहाँ रंग–रूप है। वहाँ चेष्ट दिखती है। वहाँ आपको अपनी परिभाषाके अनुसार दुष्ट–शिष्ट दिखता है। लेकिन, आप नाटकसे निकलनेके बाद खलनायककी भी प्रशंसा करते हैं कि बहुत बढ़िया अभिनय किया। ब्रह्म रूप अधिष्ठानमें और स्वयं प्रकाशमान दृष्टिसे यह जगत्–रूप दृश्य दिख रहा है। इसमें दुष्ट–शिष्ट और दोनोंको दुष्ट–शिष्ट मानने वाला मैं–अहम्–ये सब पर्देपर हैं और स्वयं प्रकाशमान चिद् वस्तुके विवर्त हैं। उनमें जो आपका मूल्यांकन है–दुष्टका मूल्यांकन; शिष्टका मूल्यांकन; अहम्का–मैं का मूल्यांकन; 'यह'की कीमत; 'वह'की कीमत; 'मैं'की कीमत; वहाँ सबकी कीमत बराबर है। यह है–जीवन्मुक्तिकी दृष्टि। इसलिए, *सुखे मुखप्रभा नोदेति। दु:खे मुखप्रभा अस्तं न याति।* सुखके निमित्त उपस्थित होनेपर उसके मुँहकी रौनक बढ़ती नहीं और दु:खके निमित्त उपस्थित होने५ ˜ उसका मुख मुरझाता नहीं है। मुखप्रभा एक–सी ही रहती है। यहाँ मुखप्रभाका अर्थ क्या है?

महाराज! एक बार हमने एक महात्मासे कह दिया कि 'जो लोग ब्रह्मचारी होते हैं, उनके चेहरेपर रौनक बहुत अच्छी होती है।' वह डाँट पड़ी हमारे ऊपर कि आपको क्या बतायें? महात्मा बोले–'मुँहकी रौनक देखता–फ़िरता है। हैं? क्या वेश्याओंके मुँहपर रौनक नहीं होती है? ये बड़े–बड़े सेठ लोग, जो अच्छा खाते–पीते–पहनते हैं, उनके मुँहपर क्या चमक नहीं होती है?' ऐसे ही हो महाराज! बहुत जोरदार डाँट पड़ी हमारे ऊपर। आहा! यह

जीवन्मुक्तकी रौनक क्या है? यह मुखप्रभा क्या है? असलमें, उसके स्वरूपकी एकरसता ही उसकी मुखप्रभा है।

आपको मोटरसे कहीं जाना पड़े और आप बोलें–'भाई! हम इस सड़कसे नहीं जायेंगे।' 'क्यों'? 'बहुत गन्दी है। क्या दूसरी कोई सड़क है?' 'नहीं है।' तब आप क्या करते हैं/ उसी सड़कसे अपनी मोटर उड़ा ले जाते हैं। अच्छा! रास्तेमें आपको लगता है कि अरे! यहाँ तो बहुत सुन्दर दृश्य हैं। कोई कहता है–'जरा रुक जाओ न!' आप रुकते नहीं है और उस रास्तेसे मोटर उड़ा ले जाते हैं। है न? यह जीवनकी जो पद्धति है, यह जीवनकी जो पगडण्डी है, उसमें कहीं गन्दगी भी दिखती है और कहीं स्वच्छता भी दिखती है। कहीं कभी किसीमें गन्दगी दिखती है और कहीं कभी किसीमें निर्मलता दिखती है। इसमें आत्माकी–स्वरूपकी जो एकरसता है, वही मुख प्रभा है। उसमें न उदय है, न अस्त है। तब क्या है? यह ऐसा सूर्य है, जिसका उदय नहीं और जिसका अस्त नहीं। जहाँ आकाश ही सूर्य है।

***तत् चक्षुर्देवहितं पुरस्तात् शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतात् । तद् विष्णोः परमं पदम् । तद् पश्यन्ति सूरयः। दिवि च चक्षुराततम् ।***

जहाँ प्रकाश ही आकाश हो और आकाश ही प्रकाश हो, जहाँ ज्ञान ही अनन्त हो और अनन्त ही ज्ञान हो, जहाँ अपरिच्छिन्न ही ज्ञान हो और ज्ञान ही अपरिच्छिन्न हो, वहाँ आसमानमें उड़ते हुए इन धूलिकणोंका, वहाँ वायुके चलते हुए इन झोंकोंका, वहाँ आगमें उड़ती हुई इन चिंगारियोंका, वहाँ समुद्रपर छिटकते हुए इन सीकरोंका, वहाँ यह घटाकाश और मठाकाशका क्या मूल्यांकन है? वहाँ यह सपनेके दृश्योंका, वहाँ यह बुद्धिमें आते-जाते विचारोंका, आती जाती समाधियोंका और आती-जाती राग-द्वेषकी लहरियोंका क्या मूल्यांकन है? **यथाप्राप्तेस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते**। पर्देपर चाहे जैसा दृश्य दिखा लो। पर्देपर चाहे जैसा दृश्य देख लो। जो दृश्य तुम दिखाओ, जो दृश्य तुम देखो, वही दृश्य उसपर दिख जायेगा। जैसा प्राप्त हुआ, वैसा ही बढ़िया है। भिक्षामें मक्केकी रोटी मिली, तो वही मौज है। **यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य**।

हम लोग 'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज'के साथ पैदल चलते थे। कोई

बीस-बीस मील चले जाते थे। एक बारकी बात है। मैंने कहा-'मैं तो थक गया। महाराज!' एक पेड़ था। तुरन्त वहीं बैठ गये। बैठनेके बाद मैंने कहा-'भूख लगी है।' पासमें छप्परका कोई घर था। वहाँसे झट मक्केकी चार रोटी आ गयीं। अब मुझे तो मक्केकी रोटी खानेका अभ्यास ही नहीं था। हम लोगोंके घरमें रिवाज ही नहीं है। जैसे गुजरातमें-महाराष्ट्रमें ज्वार-बाजरा खाते हैं न, वैसे उधर हम लोगोंके घरमें रिवाज नहीं है। उधर ज्यादा होता भी नहीं है। हमारे उधर गेहूँ-चावल ज्यादा होता है। अच्छा! देखो! बाबा मुझसे क्या कहते हैं? बोले-'बेटा! गेहूँ और चावल खाने वाले जो बड़े-बड़े आदमी होते हैं, वे भी अपने घरमें कभी-कभी शौकसे मक्केकी रोटी बनवा कर खाते हैं। देखो! जो चीज उनके शौकसे बनवानेपर उनको मिलती है, वह तुम्हारे सामने स्वभावसे आकर रखी है। है ना? आहा! देखो तो सही! वह चीज तुम्हारे सामने सहज ही आकर रखी है।' मैंने वह मक्केकी रोटी नमकके साथ खायी। आपको क्या बतावें कि उस भूखमें क्या स्वाद लगा हो? आपकी भेलपुरीमें उतना स्वाद कहा मिलेगा? यह चौपाटीकी चाट उसके सामने कुछ नहीं है। इसीका नाम मौज है। यह है-**यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य।**

एक बार हम लोग श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके साथ पैदल चल रहे थे। रास्तेमें बड़े जोरसे तूफान आया। आँधी आ गयी और धूल उड़ने लगी। अब रास्तेमें तो चला न जाये। गिर जानेका डर था। आँख धूलसे ढकती जाये। बाबा हम सबसे बोले-'बैठ जाओ। अपने चद्दरसे आँख ढँक लो। बैठ कर ध्यान करो। भजन करो। शरीरपर बालू पड़ती है, तो पड़ने दो।' कोई आधे घण्टे भर वह आँधी चलती रहीं, धूल उड़ती रही और फिर थोड़ी देरमें शान्त हो गयी। जब धूल उड़नी शान्त हो गयी, तब बाबा बोले-'अब चल पड़ो। अब रास्ता तय कर लो।' यह महाराज-***जैसे बहे बयार, पीठ पुनि तैसी कीजे। यथा प्राप्ते स्थितिर्यस्य।*** जैसा आवे, वैसा ही स्वीकार करो। मौज है। रात आवे। दिन आवे। गन्दा आवे। स्वच्छ आवे। सब मौज-ही-मौज है।

आपको एक प्रसंग सुनाते हैं। हमारे गाँवमें एक ब्याह था। ब्याहमें लोग अच्छे-अच्छे कपड़े बनाकर पहनते हैं न? खैर! स्थिति यह थी कि गाँवमें बच्चे ब्याहमें जाने वाले हैं-बारातमें जाने वाले हैं और ब्याहमें जानेके लिये जैसे कपड़े चाहिये, वैसे अच्छे कपड़े बनवानेकी तो बच्चोंकी

स्थिति नहीं है। हम लोगोंने एक सलाह की। हम बोले–'आओ! बच्चोंको भी खादीका कपड़ा बना दो।' वह जो मशीनका सूत और हाथका बुना हुआ होता है न? 'हैण्डलूम' (Handloom) बोलते हैं? हाँ! हाँ! सब बच्चोंके लिये वैसे ही कपड़े बनवा दिये। जितने बच्चे थे, सबके लिये एकमें ही बनवा दिये। अब क्या था? गाँवके लोग बोले–'अरे भाई! इस गाँवके तो बच्चे भी खादी पहनते हैं। इतने राष्ट्रप्रेमी हैं। बुड्ढे लोग तो खादी पहनते ही हैं, बच्चे भी खादी पहनते हैं।' इज्जत बढ़ गयी हो। पैसा बच गया, सो अलग। खैर! पैसा तो था ही नहीं, खर्च कहाँसे होता? यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य। जीवनमें जैसा आवे, वैसा मौज मनाओ।

मैंने 'डेल कार्नेगी' (Dale Karnegi) की किताब पढ़ी थी–'चिन्ता छोड़ो, सुख से जियो।' लोक-व्यवहारकी शिक्षा है। उसमें यह लिखा है कि अच्छे-से-अच्छेकी उम्मीद करो और बुरे-से-बुरेके लिए तैयार रहो। निराश मत बनो। बस! **यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य**। कलकी योजना बनानेमें आज भूखे मत रहो। कलकी याद करके आजका दिन रोकर मत काटो। आजका दिन आजकी तरहसे बिताओ। कलका दिन कलकी तरह बिताना। परसोंका दिन परसोंकी तरह बिताना। यदि कलके लिए आजका दिन बिगाड़ दिया; परसोंके लिये कलका दिन बिगाड़ दिया और चौथे दिनके लिये परसोंका दिन बिगाड़ दिया, तो सारे-के-सारे दिन बिगड़ते जायेंगे। **यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य**। इसको गीतामें कैसे बोला है? **यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः**। (4.22)

अच्छा! अब आगे बड़ी बढ़िया बात आयी है। जीवन्मुक्त माने जीवन्मुक्तकी अन्तःस्थिति और जीवन्मुक्तकी बाह्य स्थिति। जीवन्मुक्तके मानसकी स्थिति और जीवन्मुक्तके व्यवहारकी स्थिति, अन्तःस्थितिमें ज्ञानकी निर्मलता और व्यवहारिक स्थितिमें असंगता। इन दोनोंका वर्णन अगले श्लोकमें आता है, वह आपको कल सुनावेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 15

## नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

जब यह शरीर पैदा होता है, तब यह अपने साथ अनुकूलता-प्रतिकूलता, प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, रोग-आरोग्य, जीवन-मरण-यह सब लेकर ही पैदा होता है। ऐसा कोई शरीर पैदा नहीं होता है, जिसको कोई अनुकूल-प्रतिकूल न पड़े; कोई आदमी प्रिय-अप्रिय न हो जाये; किसी बातसे सुख-दुःख न हो; कोई सर्दी-गर्मी न पड़े। जीवन-मरण, संयोग-वियोग न आवे, ऐसा कोई शरीर पैदा नहीं होता है। अगर शरीर पैदा होगा, तो मरेगा जरूर। है ना? जब हम रास्तेमें किसी ओर चलते हैं, तब सामनेकी हवा रोकती है और पीछेकी हवा ढकेलती है। मोटर चलाते समय भी जब जोरकी हवा चलती है-आँधी चलती है, तब उसको रोकना पड़ता है। हाँ! कई बार ऐसा हुआ कि हम मोटरसे लम्बी यात्रा कर रहे थे और रास्तेमें बड़े जोरसे आँधी आ गयी, तो ड्राइवरने कहा-'महाराज! इस समय मोटर नहीं चलायी जा सकती है। उलट जाने का डर है।' हम खड़े हो गये। जीवनके साथ दोनों प्रकारके भाव लगे हुए हैं-दोस्त और दुश्मन, राग और द्वेष, सुख और दुःख, संयोग और वियोग, जीवन और मरण, इत्यादि। जो लोग इन्हींको मिटानेकी कोशिश करते हैं, वे जीवनको गलत ढंगसे सोचते हैं। जो लोग यह कोशिश करते हैं कि इस अभिव्यक्त जीवनमें-इस जाहिरात जीवनमें-इस व्यक्तित्वमें कोई ऐसी विशेषता पैदा कर ले कि इसको सर्दी-गर्मी न मालूम पड़े, यह मरे नहीं-पैदा तो हुआ है, पर मरे नहीं; इसका किसीके साथ संयोग-वियोग न हो; इसका कोई प्रिय-अप्रिय न हो; कोई सुख-दुःख न हो, वे लोग जीवन को गलत ढंगसे सोचते हैं। इस विचार-प्रणालीमें बड़ा भारी दोष है। वह दोष क्या है?

गीतामें आप पढ़ते हैं न कि **तस्मात् अपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।** जो बात अपरिहार्य है-अनिवार्य है माने जो बात हुए बिना रह ही नहीं सकती, उसके लिये अपने दिलमें शोक बैठाना बुद्धिमान् पुरुषके लिये योग्य नहीं है। **न त्वं शोचितुमर्हसि। अन्ये शोचन्ति शोचन्तुताम्। शोचितुमर्हसि शोचसि।** दूसरे लोग शोक करते हैं, तो शोक करने दो। वह

रोते हैं, तो रोने दो। तुम तो बुद्धिमान हो- समझदार हो। तुम क्यों रोते हो? एक बच्चेने देखा कि किसी को बड़े जोरसे बुखार आया है और वह कराह रहा है। उसने कभी वैसा देखा नहीं था। वह भी रोने लगा और बोला-'अब क्या होगा? अब क्या होगा? अब क्या होगा?' उसके बाबा उसका हाथ पकड़े हुए थे। बोले-'बेटा! जिन्दगीमें ऐसे कई बार बुखार आता है। ऐसे कई बार जुकाम होता है।' हमारे बचपनमें तो हर दूसरे-तीसरे बरस प्लेग पड़ा करता था। प्लेग एक रोग होता है। शरीरमें एक गाँठ उभर आती है। अपना घर छोड़ देना पड़ता था। गाँवमें घर छोड़कर, बाहर जाकर, छप्पर लगाकर रहते थे। उस रोगमें पहले गाँवके चूहे मरने लगते थे। जब अपने आप चूहे मरने लगते, तब लोगोंकी समझ में आ जाता कि प्लेग आ गया है। लोग अपना घर छोड़कर बाहर छप्परमें जाकर रहते थे। व्यापारी लोग भी बाजार छोड़कर गाँवमें आ जाते थे। जो अपरिहार्य है, जो अनिवार्य है, उसके लिये अपने दिलमें शोक बैठाना बुद्धिमान् पुरुषके लिए योग्य नहीं है। जीवनमें रात और दिनका आना, सुख और दुःखका आना, दोस्त और दुश्मनका मिलना, प्रिय और अप्रिय होना अपरिहार्य है। यह सब लेकर ही यह शरीर पैदा होता है।

क्या आप जानते हैं कि सर्पको संगीतका शौक किसने दिया है? बीन बजाता है सपेरा और झूमता है सर्प। हमने कई बार देखा है भला! यह कोई झूठी बात नहीं है। सपेरा बीन बजाता है और साँप बिलमें-से निकल आता है। साँपके कानमें बीनका जो शौक है, वह उसे बिलमें-से बाहर निकालता है और नचाता है। कान तो बिचारेका अलगसे नहीं होता है। आँखमें ही होता है। आपके ध्यानमें यह बात अपने बारेमें शायद नहीं होगी। आपकी जीभमें ही दो ताकत है-बोलनेकी भी और स्वाद लेनेकी, चखनेकी भी। जैसे आपकी जीभमें दो ताकत है, वैसे साँपकी आँखमें दो ताकत है-देखनेकी भी और सुननेकी भी। संस्कृतमें साँपको 'चक्षुःश्रवा' बोलते हैं। वह आँखसे सुनता है। यह सुननेका शौक साँपको किसने दिया है? यह सुननेका शौक साँपके शरीरके साथ पैदा होता है।

हमारे बनारसके पास एक गाँव है-'बाबतपुर'। वहाँ एक बहुत बड़ा छह-सात फुटका साँप रहता था। जब गायें उधर चरने जाती थीं, तब गायके पाँवमें ऐसे लिपट जाता था-गायके दोनों पाँवोंको ऐसे बाँध लेता था कि

गाय हिल न सके और गायके थनमें मुँह लगाकर दूध पी लेता था। साँपको दूध पिलानेका शौक गायोंको भी इतना जगता था कि अगर चरवाहे उधर न ले जायें, तो भागकर उधर साँपको दूध पिलाने चली जाती थीं। जब सपेरा आकर बीन बजाता, तब साँप धीरे-धीरे बिलमें-से निकलता। एक दिनकी बात है। सपेरेने आकर बीन बजायी। साँप धीरे-धीरे बिलमें से निकला। निकलकर, सपेरेकी पीठपर होकर, उसके गलेमें दो-तीन लपेटा लगाकर, सिरपर जाकर बैठ गया और मुँहके सामने आकर बीन सुनने लगा। सपेरा बीन बजावे और साँप उसके साथ में नाचे। अब यह हो गया कि जब सपेरा बीन बजाना बन्द करेगा, तब मारा जायेगा। गाँवके थानेदार बन्दूक लेकर आये। उन्होंने साँपके सिरपर निशाना लगाया। गोली लगते ही साँप तो मर गया; लेकिन सपेरा भी मर गया। सपेरा तो मस्त होकर बीन बजा रहा था। उसको मालूम नहीं था कि गोली किसको मारी गयी है? साँपको मारी गयी है कि हमको मारी गयी है? गोलीकी आवाज सुनकर उसकी धड़कन बन्द हो गयी। वह भी मर गया। यह सच्ची घटना है भला! हमारे गाँवके पासकी ही है। गाँवके लोग तो उससाँपसे डरके बिलकुल थर्राते थे।

आपको यह बात सुनाते हैं कि साँपको बीन सुननेका शौक कहाँसे आया? मछलीको पानीमें रहनेका शौक कहाँसे आया? पतिंगेको दियेपर-रोशनीपर गिरनेका शौक कहाँसे आया? हाथीको छूनेका शौक कहाँसे आया? यह शौक उनके शरीरके साथ पैदा होते हैं। आप देखना कि प्रत्येक मनुष्य कुछ शौक लेकरके पैदा होता है। उसी शौकसे उसको 'शॉक' (Shock) भी लगता है। 'हरकिशनदासजी' कभी-कभी कहते हैं न? शौक और शॉक। शौकसे शॉक लगता है। पुराणोंमें इसका वर्णन ऐसे है-

*कुरंग मातंग पतंग भृंग मीना हताः पंचभिरेव पंच।*
*एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच।।*

यह 'गरुड़पुराण'का श्लोक है। हरिणको सिर्फ सुननेका शौक है। हाथीको छूनेका शौक है। पतंगेको देखनेका शौक है। भँवरेको स्वाद लेनेका शौक है। यह बिचारे एक-एक विषयका शौक होनेसे कैद होते हैं-पकड़े जाते हैं-दुःख भोगते हैं। मनुष्य तो एक ही शरीरमें पाँच-पाँच विषयोंका शौक रखता है। भला बताओ! स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव

पंच। जो अपनी पाँचों इन्द्रियोंके पाँचों विषयोंमें शौक रखनेवाला मनुष्य है, वह क्यों नहीं बँधेगा? वह क्यों नहीं मारा जायेगा?

जिससे सुख मिलता है, उससे दुःख मिलता है। अगर आपके घरमें कोई बहुत बढ़िया भोजन करानेवाला होगा, तो आपके कानको चार बार उसकी डाँट भी जरूर पीनी पड़ती होगी। वह जीभसे सूप पिलाता होगा और कानसे डाँट पिलाता होगा। आपके घरमें दोनों बात होगी। आप देख लेना। अच्छा! अगर आप इसके लिये तैयार नहीं हो, तो आपके जीवनमें समत्व नहीं आयेगा। समत्व ही तो तत्त्व है। है ना? जैसे सूप पीते समय आप खूब खिलते हैं न, वैसे ही डाँट पीते समय भी खिलनेकी आदत डालिये। इसका नाम जीवन्मुक्त हो जायेगा भला! डाँट पीते समय भी धीरेसे मुस्करा दीजिये। गाँवमें कहावत है कि 'दुधारु गायकी लात भी भली।' जो गाय दूध देती है, उसकी लात भी सहनी पड़ती है भला! वह कभी-कभी लातसे मारने लगती है। उसको गाँवमें 'खंखट' गाय बोलते हैं। संसारकी सभी वस्तुओंकी यह हालत है।

जो चीज दुःख देती है, वह हमारे अन्तरको वैराग्य देती है। जो चीज सुख देती है, वह हमारे दिलको हमारी छातीमें-से निकालकर सुख देती है। जो चीज सुख देती है, वह मीठा-मीठा नशा पिला करके हमारी छातीका 'ऑपरेशन' (Operation) करके हमारे कलेजेको बाहर निकाल लेती है। दुनियामें जो चीज सुख देती है, वह बादमें दुःख बन जाती है। दुनियामें जो चीज दुःख देती है, वह हमें आँख बन्द करनेके लिए विवश करती है। वह हमें कान बन्द करनेके लिए विवश करती है। वह हमें जीभ बन्द करनेके लिए विवश करती है। वह कहती है कि 'देखो! दुनियामें दुःख है। इधरसे अपना मन फिरा लो।'

एक बात है। यदि स्त्रीको अपने पुरुषको वैराग्यवान् बनाना हो, तो रोज उसको चार बात सुनानी चाहिए। यदि पुरुषको स्त्रीसे स्वाद लेना हो-रस लेना हो, तो उसको वह स्त्री रोज जो डाँट-फटकार सुनाती है, कड़वा बोलती है, आँख-भौंह टेढ़ी करती है, इत्यादि सबको सहना पड़ेगा। इस संसारमें दुःख दिये बिना कोई सुख नहीं दे सकता है और सुख दिये बिना कोई दुःख नहीं दे सकता है। दुःख देनेवाला वैराग्य देता है। सुख देनेवाला

राग देता है। राग-द्वेष-दोनों में बन्धन है। आप देखो! जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख क्या है?

हमने आपको कल सुनाया था कि महाप्रलयमें जीवन्मुक्ति नहीं होती है। जहाँ जीवन ही नहीं है, वहाँ जीवन्मुक्ति कैसी? समाधिमें जीवन्मुक्ति नहीं होती है। सुषुप्तिमें जीवन्मुक्ति नहीं होती है। मूर्च्छामें जीवन्मुक्ति नहीं होती है। गोली खानेसे बेहोश होनेसे जीवन्मुक्ति नहीं होती है। 'मिस्मराईज' (Mismerise) 'हिप्नोटाईज' (Hypnotise) होनेसे जीवन्मुक्ति नहीं होती है। यह आत्मसंविद् यथास्थान रहकर वस्तुओंको प्रकाशित करती है। जब यह शत्रुहिंसाके लिए उन्मुख होती है, तब इसमें बलका उदय होता है। जब यह मित्र-तृप्तिके लिये-मित्र-प्रीतिके लिये उन्मुख होती हैं, तब इसमें बलका उदय होता है। वह बल, जो अपने शत्रुको मार डाले और अपने मित्रको हृदयसे लगा ले, बल है। संविद्की कार्योन्मुखता ही बल है। संविद्की विषयोन्मुखता ही बल है। आप यह देखो! उन्मुखता बल है-शक्ति है।

एक बारकी बात है। हम अपने घरमें बीमार पड़े। वैद्योंकी रिवाज थी कि वह हमको खाने ही न दें। लंघन करा दें।

ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तम् ज्वरमध्ये तु पाचनम्।
ज्वरान्ते रेचनं दद्यात् त्रिविधं ज्वरभेषजम्।।

आर्युर्वेदके अनुसार ज्वरकी दवा तीन तरहकी होती है। ज्वरके प्रारम्भमें उपवास करे। ज्वर रहनेपर पाचनकी व्यवस्था कर दे। जब ज्वरका अन्त हो जाये, तब दस्त साफ आ जाना चाहिए। त्रिविधं ज्वरभेषजं। अब महाराज! वह वैद्यजी लंघन कराने लगे। हमसे तो उपवास सहन ही न होवे। एक दिन हमको बहुत जोश आया। हमने मन-ही-मनमें सोचा कि 'यदि हम घरमें रहेंगे, तो घरके लोग हमको घेरे ही रहेंगे। वैद्यजी कहते रहेंगे, कि खाना मत दो। इस प्रकार, यह लोग तो हमको लिटाये-लिटाये ही मार डालेंगे।' अब महाराज! यह सोचकर हम चुपकेसे उठे और नौ मील चलकर स्टेशनपर गये। तेरह आना पैसा तो हमारे पास जरूर था। बुखार तो था ही। स्टेशनपर जाते-जाते अण्टी ढीली पड़ गयी और अण्टीमें-से तेरह आना पैसा कहीं गिर पड़ा। है न? हाँ! गाँवका स्टेशन समझो। वहाँ भला क्या होना हुआ? खैर! वहाँ जो पानवालेकी दूकान थी, हम जाकर उसके तख्तेपर बैठ

गये। इतनेमें हमारे एक मित्र आगये। वह टिकट लेने जाने लगे, तो बोले कि 'हम आपके टिकट भी लेते आते हैं।' हमने कहा-'जल्दी आओ!' छह आनेकी टिकट आती थी। उन्होंने हमारी टिकट ले ली और हम छह आनेकी टिकटसे बनारस पहुँच गये। बनारस पहुँचकर गंगा-स्नान किया। बुखारका कोई नाम ही नहीं हो। बुखार तो फिर आया ही नहीं।

अच्छा! आपको एक बात सुनाते हैं। हम काशीमें पढ़ते थे। ब्याह होनेके बाद भी पढ़ते थे। काशीमें पढ़ते समय कभी-कभी हमको बुखार आ जाता था। बुखार आनेपर मनमें ऐसा होता कि 'अभी यहाँ बुखारमें पानी कौन पिलावेगा? खाना कौन देगा? चलो! घर चलें।' वहाँसे स्टेशनपर आते और गाड़ीमें बैठते। जब रेलगाड़ीमें बीस मील चल लेते, तब तक बुखार उतर जाता और बिलकुल स्वस्थ हो जाते। असलमें, शहरका वातावरण बदल जानेसे-जलवायु बदल जानेसे रास्तेमें ही बुखार अच्छा हो जाता था। अब हम तो जवान थे। जवान आदमी पढ़ना छोड़कर घरमें लौट आया-यह देखकर घरके लोगोंको शक होता कि यह अपनी पत्नीके लिये पढ़ना छोड़कर काशीसे लौटकर घरमें आया है।

चित्तमें जो चलनेका उत्साह होता है, उसको उन्मुखता बोलते हैं। जब संविद्में कार्योन्मुखता होती है, तब उसमें बलका उदय होता है। कोई काम करनेके लिये दुबला-पतला आदमी जल्दी तैयार होता है। पहलवान आदमी जल्दी तैयार नहीं होता है। दुश्मनको डण्डा मारनेके लिये कमजोर आदमी जल्द उन्मुख होता है और वह ज्यादा डण्डा मार सकता है। बलवान् आदमी मारनेके लिये जल्दी उन्मुख नहीं होता है। वह बिचारा तुरन्त पिट जाता है। आत्मसंवित्का किसी कामके लिये बिलकुल तत्पर हो जाना बलका आवाहन है। यह क्रोधमें भी होता है। महाराज! जिनके पाँवकी आवाज कभी नहीं सुनायी पड़ती, वे जब गुस्सेमें चलते हैं, तब धरतीको धमाधम पीटते हुए चलते हैं। वे जब कभी बिस्तर बिछाते हैं, तब खाटपर ऐसे जोर से बिस्तर पटकते हैं, जैसे खाट ही तोड़ डालेंगे। यह गुस्सेका लक्षण है। आपने देखा है कि नहीं? हम तो देखते हैं। जिससे कुछ रुपया-पैसा लेना होता है, उसके पास जाकर 'जी हुजूर! जी हुजूर!' करते हैं। वह चाहे कितना भी डाँटे-डपटे, तो भी उसके मन-से-मन मिलाते रहते हैं। आहा! जब काम आता है, तब पाँव

छूते हैं भला! हम तो देहाती आदमी हैं न। हम इस बातको जानते हैं। हमारे सामने कितनी पंचायतें आईं। मनुष्य कामवश पाँव छूने लगता है। क्रोधवश खटाखट चलता है। तृष्णावश जीहुजूरी करता है। हाँ! ये पैसा देनेवाले लोग तृष्णालुसे-लोभीसे अनुचित-से-अनुचित काम करा लेते हैं। बुद्धने अपने उपदेशोंमें दस प्रकार की चर्याओंका वर्णन किया है। कामचर्या-क्रोधचर्या-तृष्णाचर्या-शान्तिचर्या इत्यादि। शान्त पुरुषकी चर्या कैसे होती है? वह कैसे चलता है? कैसे पाँव रखता है? कैसे देखता है? इत्यादि शान्तिचर्याका वर्णन बुद्धने अपने उपदेशोंमें किया है।

आप अपने संविद्के औन्मुख्यको देखो। संविद्की उन्मुखताको समझो। शान्तसंविद्। कार्योन्मुख संविद्। आप लोग 'संविद्' शब्दका अर्थ ध्यानमें लो। संविद् माने ज्ञान-आत्मा। शान्त ज्ञान। कार्योन्मुख ज्ञान। पहले जीवन्मुक्ति दशाका वर्णन करते हुए शान्त ज्ञानका वर्णन करते हैं। बेहोशी नहीं है। वह क्या है?

**जो जागरति सुषुप्तिस्थो, यस्य जागरणं न विद्यते।**
**बोधो निर्वासनो यस्य, स जीवन्मुक्त उच्यते।।**

हाँ! आँख अपने घरमें रहे। कान अपने घरमें रहे। जीभ अपने घरमें रहे। आप कहोगे कि 'ये सब तो अपने घरमें ही रहते हैं।' ऐसा नहीं है हो। जब जीभ रसगुल्ला खाना चाहती है, तब दूकानपर पहुँच जाती है हो। जीभ अपने घरमें नहीं रहती है। जीभका घर तो मुँह है। जब रसगुल्ला खानेकी इच्छा होती है, तब यह रसना की वृत्ति वहाँ पहुँच जाती है, जहाँ रसगुल्ला मिलता है। यहीं बैठे-बैठे रसगुल्लेका फोटो ले लेती है। दिखने लगता है रसगुल्ला। आहा! रसगुल्ला! आपको मालूम है न? जब आँख रूप-दर्शनके लिये व्याकुल होती है, तब वह वहाँ पहुँच जाती है, जहाँ दर्शन मिलता है। आँख यहीं रहती है-पुतली यहीं रहती है; लेकिन, नेत्रेन्द्रियकी वृत्ति जिसको देखना चाहती है, उससे तदाकार हो जाती है।

अच्छा! देखो! जीवन्मुक्तकी यह बात है कि उसकी वृत्ति कैमरा नहीं है। उसकी वृत्ति शीशा है। कैमरेमें और शीशेमें फर्क होता है न? शीशेके सामने जो आया, वह दीखता हुआ चला गया। शीशेमें-से टाँगा निकल गया और वह देखता है कि टाँगा जा रहा है। शीशेमें-से मोटर निकल गयी और

वह देखता है कि मोटर जा रही है। शीशेमें-से मर्द निकल गया और वह देखता है कि मर्द जा रहा है। शीशेमें-से औरत निकल गयी और वह देखता है कि औरत जा रही है। जीवन्मुक्तको मालूम पड़ता है कि यह रसगुल्ला है। यह करेलेका आचार है। आहा! जीवन्मुक्तको मालूम सब पड़ता है; लेकिन, उसके अन्तःकरणमें जो संविद् है, उसमें लेप नहीं होता है। लेप नहीं होता है माने फोटो खिंच करके इकट्ठा नहीं होता है। हाँ! एक तो फिल्म-पर-फिल्म घूमती रहती है और उसमें तसवीर उतारते चलते हैं। एक शीशेके सामने तसवीर दीखती हुई चली जाती है-निकल जाती है। जीवन्मुक्तका जो ज्ञान है, वह शीशेके समान है। उसको सामने आयी हुई चीज मालूम पड़ती है लेकिन, न तो वह उस चीजका पीछा करता है और न ही वह चीज उसके साथ चिपकती है। यदि वह सोया हुआ होता, तो टाँगा गया कि मोटर गयी, यह उसको मालूम नहीं पड़ता। औरत गयी कि मर्द गया-यह उसको मालूम नहीं पड़ता। उसको मालूम सब पड़ता है; लेकिन, फोटो किसीकी नहीं खिंचती। इसलिए, गयी फोटोके लिए, गयी चीजके लिये हाय-हाय नहीं मचती है। आहा! हाय-हाय टाँगा निकल गया-मोटर निकल गयी। हाय-हाय औरत निकल गयी-मर्द निकल गया। यह चीख-पुकार नहीं मचती है।

एक बारकी बात है। हम 'सिंहानिया वाड़ी'में ठहरे हुए थे। संन्यासी होनेसे पहलेकी बात है। 'गीताप्रेस'से तो सम्बन्ध था ही। व्याख्यान हम तब देते थे और सत्संग करनेके लिए लोग तब भी आते थे। कोई श्रद्धा-भक्ति भी करते थे। एक सज्जनने हमको बताया-'महाराज! हम आँखके रोगी हैं।' हमने पूछा-'भाई! तुम्हारी आँखमें क्या रोग है? क्या मोतियाबिन्द है?' उसने कहा-'नहीं महाराज! मोतियाबिन्द तो नहीं है। रूप देखनेकी लालसा अत्यन्त तीव्र होती है।' हमने कहा-'देख लिया करो। देखते हो, तो रोग क्या है? हमारे सामने दुनिया है, तो देखते ही हैं। दुनिया सामने है, तो आँख बन्द नहीं की जाती है। दुनियाको मार-पीटकर हटाया भी नहीं जाता है। जो सामने आवे, उसको देख लो।' वह बोला-'महाराज! आज एक स्त्री जा रही थी। मैंने सोचा कि यह बहुत सुन्दर है। अब मैं उसके पीछे-पीछे चला। बम्बईकी बात बतायी हो। उसका सिर ढका हुआ था। मुँह ढका हुआ था। देखनेमें बहुत अच्छी लगती थी। चाल-चलन बहुत अच्छा था। कपड़ा-

जूता बहुत अच्छा था। मैं कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे गया, तो वह स्त्री समझ गयी कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। उसने मुझे कुछ कहा नहीं। भलेमानुस स्त्री थी। जब अपने घरमें पहुँच गयी, तब दरवाजेपर खड़े होकर उसने मेरी ओर देखा और अपना घूँघट हटा दिया। अब महाराज! उसका मुँह देखकर मेरे चित्तमें वह ग्लानि हुई कि आपसे क्या कहूँ? मैंने उसके पीछे-पीछे मीलों तक चलनेका जो परिश्रम किया, वह सब व्यर्थ गया। मैं बहुत परेशान हुआ।' यह देखो! यह कौन-सा बन्धन था? कोई रस्सी तो लगी नहीं थी। कोई लोहेकी जंजीर तो लगी नहीं थी। पुलिसने कोई हथकड़ी-बेड़ी डाली नहीं थी। वह स्त्री बिचारी उसकी आँखको पकड़कर खींच नहीं रही थी। भला बताओ! जो यह खिंचाव था-आकर्षण था, वह कहाँ था? हमारी संविद् आँखमें प्रवेश कर गयी। हम आँखसे एक हो गये। आँख-आँखमें रहे और हम हममें रहें। हाँ! कान-कानमें रहे और हम-हममें रहें। जीवन्मुक्त चूँकि विषयोंका फोटो नहीं उतार रहा है, इसलिए तो सुषुप्तिवत् है। जीवन्मुक्त चूँकि बेहोश नहीं है, इसलिए तो जाग रहा है और राग-द्वेषकी उत्पत्ति नहीं होती है। **यस्य जागरणं न विद्यते।**

संसार माने क्या होता है? ईंट-पत्थरका नाम संसार नहीं है। सोना-चाँदीका नाम संसार नहीं है। औरतका नाम संसार नहीं है। मर्दका नाम संसार नहीं है। संसार माने जिसके साथ हम सरकते चलते हैं। आत्म संविद्का कर्ममें और भोगमें तादात्म्य होनेसे हम संसारी हो जाते हैं हो। संसारी होना माने यह काम हमको करना चाहिए। यह भोग हमको मिलना चाहिए। यह वस्तु हमारे पास रहनी चाहिए। जब हम अपने आपको इस कर्त्ताके साथ, इस भोक्ताके साथ, इस द्रव्यके साथ, इस वस्तुके साथ बिल्कुल मिला देते हैं, तब हम अपने आपको कीचड़से लथपथ कर लेते हैं। इसका मतलब यह है कि वस्तुका दर्शन होना चाहिये। वासना नहीं होनी चाहिए। इसमें एक मजेदार बात यह है कि दो विभाग होते हैं। एक होता है-निर्माण विभाग और एक होता है-प्रमाण विभाग। यदि केवल वासनाक्षय और मनोनाश-इन दोनोंका ही नाम जीवन्मुक्ति होता, तो उसका नाम निर्माण विभाग हो जाता है। व्यक्तित्व विशेषका निर्माण-एक विशिष्ट व्यक्तित्वका निर्माण जीवन्मुक्ति होता, परन्तु, ऐसा नहीं है। वासना नहीं रहनी

चाहिए। दर्शन रहना चाहिए। इसमें तत्त्वज्ञान लगा हुआ है। तत्त्वज्ञानका अर्थ होता है–परमार्थकी जानकारी–असलियतकी जानकारी। इसका अर्थ यह होता है कि जीवन्मुक्तिमें निर्माण और प्रमाण–ये दो विभाग होते हैं।

आप लोगोमें–से कई लोग पहाड़ी जिलोंमें गये होंगे। गढ़वालमें-काश्मीरमें गये होंगे। आपने देखा होगा कि वहाँ स्त्रियोंके चामका रंग स्वभावसे ही ऐसा होता है, जैसा यहाँ बहुत रँगाई करनेके बाद, स्नो–पाउडर लगानेके बाद भी नहीं होता है। काश्मीरकी स्त्रियोंकी आँखोंमें ऐसी गुलाबी-लाली होती है, जो यहाँ शराबके नशेमें नहीं आती है। शराबके नशेसे आँखोंमें जो लाली आती है, वह दूसरी चीज है। कश्मीरी स्त्रियोंकी शराबी–गुलाबी आँखोंमें जो लाली है, वह दूसरी चीज है। वह अनुरागका रंग है। वह सहज सौन्दर्य है। यह 'अधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी'। यह जो आत्मसंविद् है, यह सहज सुन्दर है। कश्मीरी स्त्री विशेष करके मैला कपड़ा पहने हुए होती है। उसके शरीरपर मिट्टी भी लगी हुई होती है; क्योंकि, ठंडा देश होनेके कारण वह ज्यादा साबुन लगाकर नहाती नहीं है। लेकिन, उस मैले कपड़ेके भीतर भी और उस मैल लगे हुए शरीरमें भी जो उसके अंगका लावण्य है–सौन्दर्य है, वह चमकता है। वह सहज सौन्दर्य है। आत्मा सहज सुन्दर है। आत्माको आनन्द उधार लेनेकी जरूरत नहीं पड़ती है। पोथीमें–से जो ज्ञान आता है, वह उधार होता है। भोगमें–से जो सुख आता है, वह उधार होता है। दवाके बलपर जो जीना होता है, वह उधार सत्ता होती है। 'ऑक्सीजन' (Oxygen) के बलपर जिन्दा रहना उधार लिया हुआ जीवन है। किताबमें–से लिया हुआ ज्ञान कर्ज लिया हुआ ज्ञान है। पुस्तकीय ज्ञान उधार लिया हुआ ज्ञान है। विषय–भोगसे लिया हुआ आनन्द उधार लिया हुआ आनन्द है।

जीवन्मुक्तिमें तत्त्वज्ञान है–इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह है कि अपने आत्मामें जो सहज जीवन है–सहज ज्ञान है–सहज आनन्द है–सहज निर्लेपता है, उस आत्मसंविद्का निवारण हो जाना। हम जानबूझकर 'निग्रावरण' शब्दका ही प्रयोग करते हैं। आत्मसंविद्का जानबूझकर निरावरण हो जाना-इसका नाम जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख होता है। इसीसे केवल निर्माण विभागमें इसका अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। बनाई हुई चीजका निर्माण विभागमें अन्तर्भाव होता है। स्वतःसिद्ध वस्तुको निरावरण कर देनेका अर्थ

बनाना नहीं होता है। अब जैसे देखो! एक बहुत बढ़िया भवन बना है। उसका उद्घाटन करनेके लिये राष्ट्रपति आने वाले हैं। जब वह आवेंगे, तब क्या करेंगे? जहाँ पत्थर लगा है, वहाँसे पर्दा हटा देंगे अथवा दरवाजा खोल देंगे अथवा चाँदी या सोनेकी कैंचीसे सूत काट देंगे। है ना? हाँ! मकान बनानेका काम तो राष्ट्रपति नहीं करेंगे। वह तो पहलेसे बना-बनाया हुआ है। भवनका उद्घाटन करना माने मौजूद चीजका पर्दा हटा देना। यह जीवन्मुक्ति वैकुण्ठमें जाकर नहीं है। यह समाधिमें जाकर नहीं है। यह इसी जीवनकालमें है। आपके सहज आनन्दपर, सहज प्रकाशपर, सहज सत्तापर, जो पर्दा पड़ गया है, उसका उद्घाटन समारोह आप कीजिये। यह उद्घाटन समारोह आत्मसंविद्का जागरण होगा। आप दूसरोंके बारेमें बहुत जानते हैं; परन्तु, अपने बारेमें आपकी गैरजानकारी है। जब यह गैरजानकारी हट जायेगी।, तब आत्मसंविद्का जानबूझ कर निवारण होगा। यह 'गैरजानकारी' शब्द हमने पहले-पहल 'प्रेमपुरीजी महाराज'के मुँहसे सुना था। गैरजानकारी माने नासमझी, माने अविद्या-अज्ञान-भ्रान्ति-आवरण। एक ऐसी युक्ति होनी चाहिये कि बोध तो रहे; किन्तु, यह अविद्याका पर्दा अपने स्वरूप परसे फट जाये। हाँ! कोई ऐसी अकल होनी चाहिए, जो बोधके विरुद्ध न हो और पर्देको फाड़ दे। हाँ! एक ऐसी तरकीब होनी चाहिए, जो बेहोश न करे और वासनाको मिटा दे। हाँ! एक ऐसा ज्ञान होना चाहिए कि होश-हवास तो बना रहे और वासना न रहे।

वासनाका एक दोष है। वह यह है कि वासना दूसरे स्थानपर खींचकर ले जाती है-दूसरेके पास घसीट-घसीटकर लेजाती है अथवा वासना दूसरेको खींचकर बुलाती है-दूसरेको घसीट-घसीट कर अपने पास लाकर जोड़ती है। वासना जोड़-तोड़का काम ज्यादा करती है अथवा इन्तजारमें डाल देती है। इन्तजारमें डाल देनेसे हम अभावग्रस्त हो जाते हैं। इन्तजार करते समय हम नाकुछ हो जाते हैं। जिसकी हम इन्तजार कर रहे हैं, वही सब कुछ है; हम कुछ नहीं हैं अथवा वासना हमको पीछे धकेल देती है; जो चीज चली गयी, जो चीज मिट गयी, जो चीज नष्ट हो गयी, वह बहुत बढ़िया है। हाय-हाय! वह वस्तु बहुत बढ़िया है-यह वासनाका लेप लगा हुआ है। यदि हम भूतकी वस्तुके लिये शोक करते हैं, तो वह वस्तु अपना लेप छोड़ गयी है। यदि हम आने वाली वस्तुके लिये इन्तजार करते हैं, तो हम वर्तमानको छोड़करके

आगे चले जाते हैं। दोनों हालतमें हमारा वर्तमान जीवन नष्ट होता है। भूतकी चिन्तामें और भविष्यकी योजनामें हम वर्तमानका, जो सहज सुख है, भूल जाते हैं। दूसरी वस्तुको लाना-सटाना या हटाना आत्मसंविद्का तिरस्कार करना है। दूसरी वस्तु–बीती हुई वस्तुके ख्यालमें वर्तमानको नष्ट करना अथवा आगे आने वाली वस्तुका इन्तजार करना और अपनेको नाचीज समझना आत्मसंविद्का तिरस्कार करना है। तुमको देखकर कितने लोग मुग्ध हो जाते हैं। तुमको देखकर कितने लोग प्यार करते हैं। तुमसे अपना जीवन प्राप्त करनेके लिये–अपना चारा–अपना खाना–खानेके लिये कितनी मक्खियाँ तुम्हारे शरीरपर आकर बैठती हैं। तुम्हारे शरीरमें कितना स्वाद–कितना रस भरा हुआ है। तुम अपनी ओर नहीं देखते हो। आत्मसत्ताके बिना किसी दूसरेकी सत्ता नहीं है। आत्मज्ञानके बिना किसी दूसरेका ज्ञान नहीं है। आत्मानन्दके बिना दूसरा कोई आनन्द नहीं है। लेकिन, यह वासना हमारे जीवनको पराधीन बना देती है। यह वासना हमारे बोधको कागज और स्याहीके बीचमें ले जाकर डाल देती है। यह वासना हमारे आनन्दको ले जाकरके पराये घरमें गिरवी रख देती है। हाँ! जो नशेबाज लोग हैं, वह वासना और बोध–दोनों को मिटा देते हैं। जब वह थोड़ी देर तक बेहोश हो जायेंगे, तब वासना तो नहीं रहेगी; परन्तु, बोधपर भी पर्दा पड़ जायेगा। जीवन्मुक्ति वह तरकीब है, वह युक्ति है, जो वासनाको मिटाती है और बोधको प्रकाशित होने देती है। जीवन्मुक्तिकी यही विलक्षणता है। सबसे बड़ी दुश्मन अपनी वासना है। यह देशान्तरमें ले जाने वाली, कालान्तरमें ले जाने वाली, वस्त्वन्तरमें ले जाने वाली, अपनेको नाचीज बनाने वाली जो वासना है, उस वासनाको मिटा देने और बोधको बने रहने देनेकी युक्तिका नाम जीवन्मुक्ति है।

आपको एक बात सुनाते हैं। न होना और होना–इसका फर्क आप देख लो। न होना माने अभाव। दुनियामें किसी चीजका न होना माने उस चीजका अभाव होना। जैसे घड़ेका न होना–घटाभाव। कपड़ेका न होना–पटाभाव। मठका न होना–मठाभाव। इत्यादि। आप देखो। जहाँ–जहाँ न होना बोलोगे, वहाँ–वहाँ न होनेके साथ–साथ यह बताना पड़ेगा कि कौन नहीं है? किसका न होना बताना पड़ेगा। यस्याभावः स प्रतियोगी। जिसका अभाव होता है, वह अभावका प्रतियोगी होता है। जैसे–घड़ा नहीं है। इस घड़ा नहीं है का प्रतियोगी

कौन है? घड़ा। एक बात आपको सुनाते हैं–तत्त्वज्ञानकी। तत्त्वमें प्रपंचका अभाव तो है; परन्तु, उस प्रपंचाभावोपलक्षित तत्त्वका प्रतियोगी प्रपंच नहीं है। दुनियाकी हर चीजके अभावके साथ उसका दुश्मन लगा रहता है, जिसको मिटाकर वह अभाव बना है। घड़ेको हटाकर घड़ेका अभाव आया। इसका मतलब समझो। एक घड़ा नामकी चीज है। यदि वह हट गयी, तो घड़ेका अभाव हो गया। यदि घड़ा आ गया, तो घड़ेका अभाव नहीं रहा। दुनियाको हटाकर आत्मतत्त्व नहीं होता है। यह वेदान्तकी खास बात है। साँपको मारकर रस्सी नहीं होती है। साँपको हटाकर रस्सी नहीं होती है। प्रपंचको हटाकर ब्रह्म नहीं होता है। शून्यतामें या समाधिमें प्रपंचका जो अभाव है, उसका प्रतियोगी है–प्रपंच। शून्यमें किसका अभाव है? प्रपंचका। समाधिमें किसका अभाव है? प्रपंचका। ब्रह्ममें जिसका अभाव है, वह ब्रह्मका दुश्मन–ब्रह्मकी होड़ करनेवाली–ब्रह्मकी बराबरी करनेवाली कोई चीज नहीं है। इसको बोलते हैं–भावप्रतियोगिक अभाव। यह ब्रह्ममें नहीं है। जैसे प्रपंचप्रतियोगिक प्रपंचाभाव है, वैसे ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म ऐसी वस्तु है, जिसमें प्रपंचका है–पना और नहीं–पना अनिर्वचनीय है।

*है कहो, तो है नहीं और नहीं कहो, तो है।*
*है नाहीं के बीचमें, जो कुछ है, सो है।।*

*जहाँ बोल, तहाँ अक्षर आवा। जहाँ अबोल, तहाँ मन न रहावा।।*
*बोल–अबोल बीच है जोई। जस वह है, तस लखै न कोई।।*

जीवनमें भी वह है और मरणमें भी वह है। संयोगमें भी वह है और वियोगमें भी वह है। दुःखमें भी वह है और सुखमें भी वह है। प्रियमें भी वह है और अप्रियमें भी वह है। जब बुद्धि होशमें रहती है, तब भी है और जब बुद्धि बेहोश होती है, तब भी है। समाधिमें है और विक्षेपमें भी है। ज्ञानस्वरूप आत्माका सहज सौन्दर्य यह है कि इसमें वासना नहीं है। उधार लेकर वासना अपने घरमें लगायी गयी है। गाँवमें टोटका करते हैं। आप लोगोंने देखा होगा कि टोना–टोटका कैसे होता है? यदि आप गाँवमें जायें, तो आप देखेंगे कि कहीं–कहींपर दरवाजेपर एक उपला बाँध कर लटकाया होगा अथवा कोई काली चीज बाँधकर लटकायी होगी अथवा कोई काला निशान बनाया हुआ होगा अथवा एक जूता बाँधकर लटकाया हुआ होगा।

हाँ! यदि अपने घरमें जूता न हो, तो दूसरेके घरका पुराना जूता लाकर टाँग देते हैं। आप देखें। यह सब टोना-टोटका किसलिये होता है? यह उधारका जो जीवन है, यह आपका असली जीवन नहीं है। यह उधारका जो ज्ञान है, यह आपका असली ज्ञान नहीं है। यह उधारका जो आनन्द है, यह आपका असली आनन्द नहीं है। आपकी सुगन्धको क्या बतावें? आप इतने सुगन्धित हैं कि आपको अपनी दुर्गन्ध ही मालूम नहीं पड़ती है। आपकी जो ज्ञानस्वरूपता है, आनन्दस्वरूपता है, वह आपको क्या बतावें?

हमारे पास 'विज्ञान और प्रगति' पत्रिका आती है। 'अनुसन्धान संस्थान'की ओरसे निकलती है। हमने कल उसको पढ़ा। उसमें लिखा था कि सिगरेट पीनेवालेके मुँहमें जो सिगरेटका धुँआ जाता है, उसमें दस-ग्यारह प्रतिशत कैन्सर होनेकी सम्भावना रहती है; लेकिन, जो धुँआ मुँह में नहीं जाता है और सिगरेटसे निकलकर बाहर ही फैलता है, उसमें बीस-इक्कीस प्रतिशत कैन्सर पैदा करनेकी शक्ति होती है। अब ल्यो! उधार लिया हुआ धुँआ भीतर कैन्सर पैदा कर दे हो। है न? आपके जीवनमें जो दुःख है, वह बहुत ज्यादा तो अध्याहार्य है-अध्यारोप्य है-अध्यास्य है। आपके जीवनमें जो दुःख है, वह बहुत ज्यादा तो उधारका माल है, जिसके दिखावटी मालिक आप बने हुए हैं। हैं? भीतरसे तो कर्जदार हैं और ऊपरसे अपनेको करोड़पति दिखाते हैं। है न? असलमें, आप यह कर्ज उतारकर फेंक दीजिये। फिर देखिये! आपके भीतर कैसी-कैसी दिव्यता है? आपमें वह सुगन्ध है, जिसकी बराबरी दुनियाके किसी गुलाबकी सुगन्ध अथवा चम्पाकी सुगन्ध नहीं कर सकती है। आपमें वह रस है, जिसके स्वादकी बराबरी आम-अंगूर-द्राक्षा-शहद कोई नहीं कर सकता है। आपके भीतर वह कोमलता है, जो दुनियाकी दूसरी किसी चीजमें नहीं है। आपके अन्दर वह सुन्दरता है-सुकुमारता है, जिसकी बराबरी दुनियामें कोई नहीं कर सकता है। आपके गानेमें कितनी मिठास है, इसको आप नहीं जानते हैं।

आपने सुना होगा। भीमसेनको गानेका बड़ा शौक था; परन्तु, उनकी आवाज ठेठ रेगिस्तानसे आयी थी। हाँ! जैसे बालू फाँकते हों, ऐसी उनकी आवाज थी। जब रातको भीमसेन गाने लगें, तब युधिष्ठिर-अर्जुन-नकुल-सहदेवको नींद न आवे। उन लोगोंकी शिकायत देखकर भीमसेन जंगलमें

चले गये कि अब जंगलमें जाकर गावेंगे। भीमसेनको अपने गानेमें खूब मजा आता था हो। जब जंगलमें गाने लगें, तब क्या देखते हैं कि सामनेसे एक धोबी चला आ रहा है। जब वह धोबी वहाँ आकर खड़ा हो गया, तब भीमसेनने गाना बन्द करके पूछा–'क्यों भाई? क्या बात है?' धोबीने कहा–'महाराज! क्या कहूँ ? मेरा गधा खो गया है। मैंने सोचा कि वही इधर रेंक रहा है। इसलिये, मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इधर आ गया।' अब तो भीमसेनकी आँखोसे पानी गिरने लगा–रोने लगे। हाय-हाय जंगलमें भी छुटकारा नहीं है। यह गाँवका धोबी हमको गधा बना रहा है। रोते हुए भीमसेन कृष्णके पास आये। कृष्ण तो जानते थे हो! जब वह रोने लगे, तब श्रीकृष्ण उनके सामने आकर प्रकट हो गये और बोले–'क्यों भीम भैया? रो क्यों रहे हो?' श्रीकृष्ण भीमसेनको बड़ा मानते थे और उनके पाँव छूते थे। भीमसेन बोले–'क्या करें भाई? हमको गानेमें बड़ा मजा आता है। घरमें लोग गाने नहीं देते हैं। जंगलमें आये, तो यह हाल है।' श्रीकृष्ण बोले–'भीम दादा! हमको आपका गाना बहुत पसन्द आता है। देखो! हम यहीं छिपकर सुन रहे थे। आपको अपना गाना पसन्द आता है और हमको आपका गाना पसन्द आता है। हाँ! दूसरेको पसन्द आवे कि नहीं, आप खूब मौजसे गाया करो।' 'जब मियाँ-बीबी राजी, तब क्या करेगा गाँवका काजी?' है न? आप दूसरेकी बात क्यों सुनते हो? आपके संगीतमें तो बड़ा भारी मजा है। आपको भी वह मजा आता है और आपके भीतर बैठकर मैं भी उस संगीतका–गानका मजा लेता हूँ।' असलमें, ईश्वर जितना भी मजा लेता है, वह हमारे स्वरूपमें बैठकरके ही लेता है। हमारे स्वरूपसे अलग रहकरके नहीं लेता है।

आत्मानन्दपर पड़ा हुआ पर्दा फाड़ देना है। शीशेकी तरह सब दिखता रहे और सब होता रहे। चित्तमें लेश-वासना न रहे। '**विश्वं दर्पण-दृश्यमान-नगरीतुल्यं**'। यह देखो! जीवन्मुक्तके चित्तकी स्थिति ऐसी होती है। अब कल आपको सुनावेंगे कि जीवन्मुक्तका राग-द्वेष कैसा होता है? अरे! जीवन्मुक्तमें राग-द्वेष कहाँ ? अच्छा! देखो! कल सुनावेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 16

## नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

लक्षण बताते हैं। यह बात कही गयी कि कुछ मालूम न पड़नेका नाम जीवन्मुक्ति नहीं है। कुछ न मालूम पड़नेके बाद भी बेवकूफी ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। बेवकूफी मिटती नहीं है। सुषुप्तिमें, समाधिमें, मूर्च्छामें, नशेमें कुछ नहीं मालूम पड़ता; लेकिन, उससे बेवकूफी तो नहीं मिटती है। अभान बेवकूफीको मिटानेमें समर्थ नहीं है। असलमें, यथार्थका भान ही बेवकूफीको मिटाता है।

अभान अज्ञानकी जातिका है भला! न जानना, न समझना, न मालूम पड़ना—ये सब एक किस्म है हो! मालूम पड़ना, ज्ञानस्वरूप होना—ये सब एक किस्म है। जाति-जातिका भेद है। मालूम पड़ना, प्रतीत होना, पृथक्-पृथक् वस्तुओंका भान होना—ये ज्ञानका विवर्त है। न मालूम पड़ना—अज्ञानमें लीनता है। वस्तुओंका न मालूम पड़ना—अज्ञानमें लय है। वस्तुओंका मालूम पड़ना—ज्ञानका परिस्पन्द है। ज्ञानकी किस्मका है।

कुछ लोगोंने बेहोशीको, मालूम न पड़नेको, भान न होनेको सर्वोच्च दशा मान रखा है। असलमें, जीवनमें जैसे सुषुप्ति आवश्यक है, वैसे यह दशा आवश्यक तो है; लेकिन, जैसे लगातार सुषुप्ति ही रहे, जाग्रत् न हो—ऐसा कहना नासमझीकी बात होगी, वैसे हमेशा कुछ मालूम ही न पड़े—ऐसा कहना भी बेवकूफीकी बात होगी। आप श्रम भी करते हैं और विश्राम भी करते हैं। आपके जीवनमें श्रम भी आवश्यक है और विश्राम भी आवश्यक है। यदि आप कहें कि हम चौबीसों घण्टे विश्राम ही करेंगे, तो आपका रहना-न रहना बराबर हो गया। आप हो गये—पर्यंकशायी। माने पलंगशायी। तब तो आप पलंगपर सोते रहिये। हिन्दीमें जिसको 'पलंग' बोलते हैं, संस्कृतमें उसको 'पर्यंक' बोलते हैं। र और ल—दोनोंका मेल है—अभेद है। इसलिए, पर्यंकका पलयंक हो जाता है। हाँ! पलयंकका फिर पलंग हो जाता है। पलंग माने जिसमें चार कोने हैं और जो अपनी गोदमें आदमीको ले लेता है।

श्रम और विश्राम–दोनोंका नाम जीवन है। जागरण और सुषुप्ति–दोनों एक ही जीवनकी अवस्थाएँ हैं। ठीक इसी प्रकार, दुनियाका मालूम पड़ना और दुनियाका मालूम न पड़ना–जीवनकी दो अवस्थाएँ हैं। जीवन एक सत्य है और दुनियाका मालूम पड़ना और मालूम न पड़ना–दोनों उसकी अवस्थाएँ हैं। यदि जागते ही–जागते रहें और नींद न आवे, तो बिना सोये पागल हो जायेंगे। यदि सोते–ही–सोते रहें और जागें नहीं, तो मरना–जीना दोनों एक हो जायेगा। ज्ञान वह है, जो जागने और सोनेमें एक है। आत्मा वह है, जो जागने और सोनेमें एक है। आत्मस्थितिका अर्थ है–उसमें कभी जागना होना और कभी सोना होना। कभी श्रम होना और कभी विश्राम होना। यदि आप एक अवस्थाको पकड़ लेंगे कि हमें कभी नींद न आवे, तो पागल हो जायेंगे। यदि आप यह सोच लें कि हमें नींद–ही–नींद आती रहे, तो निकम्मे हो जायेंगे। एक तरहकी बेहोशीमें रहेंगे। इति चेद् रोग एव सः। 'विद्यारण्य स्वामी'ने 'पंचदशी'में बताया है कि यदि बेहोशी ही तत्त्वज्ञान हो, तो वह तत्त्वज्ञान नहीं है। वह तो रोग है। '**तत्त्वज्ञानं क्षयं व्याधिं मन्यन्ते ये महाधियः। तेषां प्रज्ञातिविशदा किम् तेषां दुष्यकं वद।।** जो लोग तत्त्वज्ञानको एक बेहोशीका रोग मानते हैं, वे बड़े अकलमन्द हैं महाराज! वे बुद्धिके महासागर हैं। ऐसे बोलते हैं। यह व्यंग है। तेषां प्रज्ञातिविशदा। आपकी अकल बहुत साफ हो गयी है। आपकी समझ बहुत अच्छी है। हैं? आप भला क्या नहीं कह सकते हैं? आहा! आप तो आगको पानी बता सकते हैं और पानीको आग बता सकते हैं क्योंकि, आपकी बुद्धि बहुत स्वच्छ हो गयी है। आप बेहोशीको परमार्थ मानते हैं। ऐसे उन्होंने कटाक्ष किया है हो!

बोले–महाराज! जीवन्मुक्त तो वह होता है, जिसको स्नान तो कोई दूसरा करा दे। कोई दूसरा उसके ऊपर पानी डाल दे। शरीर मल दे। जीवन्मुक्त तो वह होता है, जिसके मुँहमें भोजन कोई दूसरा डाल दे। पानी कोई दूसरा पिला दे। जब देखना हो, तब कोई दूसरा उसकी आँखकी पलकको अपनी उँगलीसे उठावे और कहे–'महाराज! हमारी ओर देखिये।' भाई मेरे! यदि कोई मुँहमें ग्रास डाल देगा, तो भी जो मुँहसे भीतर जानेका व्यापार है, वह निगलनेका व्यापार तो जीवन्मुक्तको ही करना पड़ेगा। जैसे

गलेसे निगलनेकी क्रियाको जीवन्मुक्त कर लेता है, वैसे वह हाथसे उठाकर मुँहमें डालनेकी क्रिया भी कर ले, तो जीवन्मुक्तिमें कोई बाधा नहीं पड़ती है। हाँ! कोई नहलाये, तो नहायें। कोई खिलाये, तो खायें और चाहे जो मुँहमें डाल दें। है ना? पता ही न चले कि यह कड़वा है कि मीठा।

बोले–इस तरह माननेवाले जो लोग हैं–बेहोशीको जीवन्मुक्ति माननेवाले जो लोग हैं, वे किसी आचार्य-सम्प्रदाय परम्पराके नहीं हैं। पहले तो यह मान लो। उनके जो पहले आचार्य थे–गुरु थे–बुद्ध थे या जिन थे या शंकर थे या कपिल थे या पंतजलि थे, उन्होंने जीवन्मुक्त होकर अपने सिद्धान्तका निरूपण किया। अथवा वे स्वयं जीवन्मुक्त नहीं थे और उन्होंने अपने सिद्धान्तका प्रचार-प्रसार किया? बद्ध हो करके मुक्तिका प्रचार करना तो बनता नहीं है। यदि मुक्त थे और अपने सिद्धान्तका उपदेश अपने शिष्योंको करते थे, तो सब होश-हवासमें थे। जो लोग ऐसा मानते हैं कि जीवन्मुक्तको कुछ मालूम ही नहीं पड़ता है, उन्होंने गुरु-परम्परामें किसी भी सम्प्रदायके अन्तर्गत रहकर तत्त्व-ज्ञानको नहीं सीखा है। ज्ञानके किसी एक सम्प्रदायमें उनका अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। न बौद्धमें, न जैनमें। न शंकरमें, न रामानुजमें। न ईसामें, न मुहम्मदमें। इन सब लोगोंको तो दुनिया मालूम पड़ती थी और तुमने तो अपने मनमें एक ऐसी कल्पना कर रखी है कि जो सिद्ध पुरुष होता है, उसको दुनिया मालूम ही नहीं पड़ती है। वह अपने हाथसे नहाता ही नहीं है। अपने मुँहसे खाता ही नहीं है। अपनी आँखसे देखता ही नहीं है। अपने दिलसे सोचता ही नहीं है। यह कुकल्पना आपके दुश्मनने आपके दिलमें बैठा दी है।

यदि कोई बम्बई वालोंके दिलमें बैठा दे कि जो बम्बईमें आता है, वह महात्मा नहीं है, तो वह आपकी भलाई करता है अथवा आपको सत्संगसे वंचित करता है? वह आपको क्या समझता है? यही न कि जो बम्बईमें आया, वह महात्मा नहीं है। उसका सत्संग करनेकी जरूरत नहीं है। आप यहाँके 'ब्लैक मार्केटियर' (Black Marketeer)का सत्संग कीजिये। घूसरसवोरका सत्संग कीजिये। जो काम-क्रोधकी बात करे, उसका सत्संग कीजिये। है ना? जो बम्बईवालोंके दिमागमें यह बात भर देता है कि महात्मामें बम्बईके घेरेमें प्रवेश करनेका सामर्थ्य ही नहीं है–महात्मा भला

बम्बईके घेरेमें क्यों प्रवेश करेगा? असलमें, आपका ध्यान-भजन छुड़ाना चाहता है। वह आपके सदाचारका मार्ग छुड़ाना चाहता है। वह आपका सत्संग छुड़ाना चाहता है। सत्संगसे आपकी बुद्धिमें जो परिवर्तन होता है, उस परिवर्तनसे आपको वंचित रखना चाहता है। ठीक इसी तरह, जो लोग कहते हैं कि इस जगत्के व्यवहारमें कोई महात्मा नहीं हो सकता माने व्यवहारमें लगा हुआ महात्मा नहीं हो सकता-महात्मा तो केवल समाधिमें ही रहता है, वे लोग, असलमें, आपके हृदयमें यह अश्रद्धा उत्पन्न करना चाहते हैं-यह अविश्वास उत्पन्न करना चाहते हैं कि जो व्यवहारमें है, वह महात्मा ही नहीं है; इसलिए, उसपर श्रद्धा-विश्वास करनेकी जरूरत नहीं है। एक बात यह हुई।

बोले-भाई! महात्माजी व्यवहारमें रहते हैं। उनको संसार मालूम भी पड़ता है। जब सबको संसार मालूम पड़ता है और महात्माजीको भी मालूम पड़ता है, तब फिर, दोनोंमें फरक क्या है? भला बताओ! बोले-भाई! फरक यह है कि मालूम तो दोनोंको पड़ता है; लेकिन, एकको मालूम पड़ता है, तो वह दोस्ती-दुश्मनीके जंजालमें फँस जाता है और एकको मालूम पड़ता है, तो वह दोस्ती-दुश्मनीके जंजालमें फँसता नहीं है। कई लोग तो ऐसे होते हैं, जो न मालूम पड़नेवाली चीजके जालमें फँस जाते हैं। है न? हम ऐसे विशेषण लगाकर बोलते हैं कि यदि कोई बुरा मानेगा, तो हम उसकी सफाई दे देंगे। जैसे भूत-प्रेतके झगड़ेमें फँस जाना। अपनेको तो कुछ मालूम नहीं पड़ता है। हमने तो कभी नही देखा है; परन्तु, हमारे ताऊने जरूर देखा है। यह महाराज! हम सच्चे ज्योतिषीके बारेमें नहीं कहते हैं। वह लोग पहले ही माफ कर दें। है ना? इनकी सौ भविष्यवाणी निकलती हैं। उसमेंसे चार-पाँच-दस तक सच्ची निकलती हैं। जब वह दूसरे साल छापते हैं, तब उनकी वह जो दस बातें सच्ची निकलती हैं, वही छापते हैं। सौ नहीं छापते हैं हो। है न? बोलते हैं-'परसाल हमने यह बात कही थी-यह बात कही थी-यह बात कही थी। देखो! कैसी सच्ची निकली? है न?' लोग अनदेखी-अनजानी-अनसमझी बातके चक्करमें फँस जाते हैं। महाराज! दुनियामें लोग कहते हैं कि हमको यह सपना आया था कि हमारे सामने गिन्नियाँ बरस रही हैं। अब वह सच होना चाहिए। हे भगवान्! स्वप्नमें हमने देखा कि

हम राज-महलमें हैं, तो जाग्रत्में भी राजमहलमें रहना चाहिये। महाराज! स्वप्नमें देखी हुई वस्तुकी भी वासना हो जाती है; क्योंकि, असलमें, स्वप्न और जाग्रत्के शरीरमें ज्यादा फरक नहीं है।

एक दिन हमको सपनेमें गुस्सा आया। आपको क्या बतावें? है ना? जब गुस्सा आया, तो नींद टूट गयी। अब नींद टूट गयी, तो हमारी धड़कन तो बिलकुल धड़ाधड़-धड़ाधड़ चल रही थी। हाँ! ऐसी चल रही थी। धड़कन चल रही थी जाग्रत्में और गुस्सा आया था सपनेमें। हाँ! एक दिन जाग्रत् दशामें एक चीज देखी और रातको उसका सपना आ गया। अब सपनेसे जो राग-द्वेष है, वह क्या है? एक बार कोई चीज मालूम पड़ी। वह दिलमें बस गयी। उसका फोटो खिंच गया। अब वह फोटो बना रहे या वह फोटो निकल जाये। देखो! हमको कई बार ऐसा करना पड़ता है। एक आदमीने देखा कि हमको आज सपनेमें यह बुरी बात दिखायी पड़ी है! यह तो बहुत बुरी बात है। बड़ा अपशकुन है। हम उसको कहते हैं-'अच्छा जाओ। शंकरजीके मन्दिरमें एक सौ आठ बेलपत्र शंकरजीको चढ़ा दो। दही और उड़द मिला करके शंकरजीके सामने रख दो। 'नमः शिवाय' मन्त्रका जप कर लो। 'जाई जपहु शंकर सतनामा।' अब वह कहता है-'महाराज! सपनेमें हमने इतनी बुरी बात देखी है। हमारा बुरा जरूर होनेवाला है।' हमने कहा-'लो! हम उसको मिटाते हैं।' उसने अध्यारोप किया। हमको अपवाद करना पड़ता है। इसीका नाम अध्यारोप-अपवाद है।

जीवन्मुक्त अध्यारोपके क्षणमें अध्यारोपको जानता-समझता है और अपवादके क्षणमें अपवादको भी जानता है। अध्यारोप और अपवादकी क्या कीमत होती है-यह वह समझता है। बन्ध अध्यारोप है और मोक्ष उसका अपवाद है। अपने आपमें न बन्धन है और न मोक्ष है। स्वतः न बन्धन है और स्वतः न मोक्ष है। परतः न बन्धन है और परतः न मोक्ष है। यह मोक्ष तो क्या है कि नहलेपर दहला है। यदि तुमने अपनेको बँधा हुआ मान रखा है, तो तुम्हारे को छुड़ानेके लिये यह बन्धन और मोक्षकी कल्पना है। यह थोड़ी-सी बात कही। दर्शनशास्त्रकी ही तो बात है, परन्तु, हम उस बोलीमें नहीं बोलते हैं। अभी जो आपसे की है, यह भी दर्शनशास्त्रकी बात की है।

देखो! आपको यह दर्शनशास्त्रके मतभेद सुनाता हूँ। है, तब मालूम पड़ता है। यह एक मत है। बौद्धमतमें इसको बाह्यार्थवाद बोलते हैं। चूँकि मालूम पड़ता है, इसलिये है। यह एक मत है। इसको सौत्रान्तिक बोलते हैं। बोले–न तो मालूम पड़नेसे कोई चीज बनती है और न तो है, इसलिये मालूम पड़ती है। विज्ञान स्वयं ही अनेक आकारमें भासित होता है। वह कहते हैं कि यह नीला है, यह पीला है, इत्यादि अलग-अलग जो विज्ञान होता है, उसका कोई निमित्त बाहर होना चाहिये। है, इसलिये मालूम पड़ता है। वह कहते हैं कि नहीं मालूम पड़ता है, इससे सिद्ध होता है कि बाहर है। माने बाहरकी वस्तु प्रत्यक्षसे सिद्ध है कि अनुमानसे सिद्ध है–ये बौद्धोंके दो मत हैं भला! बोले–कि नहीं। न प्रत्यक्षसे सिद्ध है कि बाह्यार्थ है और न अनुमानसे। तब क्या है? यह तो विज्ञान ही है। खण्ड-खण्ड विज्ञान। विज्ञानमें खण्ड-खण्ड कहाँसे आता है? असलमें, विज्ञानमें खण्ड-खण्ड नहीं है। विज्ञान अखण्ड ब्रह्म है। कालका अवयव भी विज्ञानसे सिद्ध होता है। इसलिये, विज्ञान नित्य है। लम्बाई-चौड़ाई भी विज्ञानसे सिद्ध होती है। इसलिए, विज्ञान सर्वव्यापी है। विषय विज्ञानसे भिन्न होता ही नहीं है। न प्रत्यक्षसे–न अनुमानसे सिद्ध होता है। इसलिये, विषय भी विज्ञान स्वरूप है। विज्ञान अखण्ड ब्रह्म है। यह वेदान्तियोंका कहना है। आत्माकी अखण्ड ब्रह्मता आत्ममोहसे कल्पित है–ऐसा शून्यवादियोंका मत है। आत्माकी अखण्डता साक्षात् अपरोक्ष है–अनुभवसिद्ध है–यह वेदान्तियोंका मत है।

देखो! मैं आपको अपनी जानमें बहुत आसान-अनायास समझमें आनेवाली भाषामें बोल रहा हूँ। संस्कृत भाषामें आसानको अनायास बोलते हैं। आपको अनायास समझमें आजाये, ऐसी भाषामें बोल रहा हूँ। देखो! असत्से असत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। असत्से सत्की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है। सत्से असत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। सत्से सत्की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है; क्योंकि, वह दो नम्बरका सत्य हो जायेगा। पहले नहीं था, बादमें पैदा हुआ। जो बादमें पैदा हुआ, वह सत्य कहाँ? ये चारों बातें ध्यान देने योग्य हैं। हाँ!

आपको क्या सुनावें? हे भगवान्! यह जन्म और मरण। अरे! जन्म-मरणकी बात नहीं करते हैं। आप लोग तो देखते ही हैं। स्वर्ग-नरक तो

आपने बहुत देखे होंगे। वह तो आप जानें। है न? जन्म-जन्म भी आपने बहुत देखे होंगे। भूत-प्रेत भी बहुत देखे होंगे। ग्रह-नक्षत्र भी बहुत देखे होंगे। हाँ! हम आपको वेदान्तकी एक झाँकी बताना चाहते हैं। एक झाँकी भला! यह शरीर कैसे पैदा हुआ? बोले-पाप और पुण्यके कारण। पाप-पुण्य कैसे पैदा हुए? बोले-शरीरके कारण। यदि शरीर न हो, तो पाप-पुण्य पैदा हो सकते हैं? यदि पाप-पुण्य न हों, तो यह सुखी-दुःखी शरीर पैदा हो सकता है? अब बताओ! पहले कौन था? पहले पाप-पुण्य थे, तब शरीर पैदा हुआ? अथवा पहले शरीर था, तब पाप-पुण्य पैदा हुआ? यह मैं आपको बिलकुल वेदान्तकी बात सुना रहा हूँ भला! यदि पाप-पुण्य और शरीर माने धर्माधर्म और शरीर-दोनों पैदा होते हैं, तो दोनों मिथ्या हैं। यदि पाप-पुण्य और शरीर-दोनों अनादि हैं, तो आपसमें दो सींगकी तरह हैं। हाँ! 'असम्बन्धो विषाणवत्'। न पाप-पुण्यसे शरीर हो सकता है और न शरीरसे पाप-पुण्य हो सकता है। दोनोंमें कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनोंमें कोई रिश्ता ही नहीं है, क्योंकि, दोनों अनादि हैं-समानान्तर रेखाके समान। पाप-पुण्य भी अनादि हैं और शरीर भी अनादि है। पाप-पुण्य सादि है, तो शरीर भी सादि है। पहले कौन था? यह कार्य-कारण अगर बताना हो, तो पहले कौन था? यह बताना होगा। पहले कर्म था कि पहले शरीर था? यदि पहले कर्म था और बिना शरीरके हो गया था, तो बिना शरीरके कर्म होना सम्भव नहीं है। यदि पहले शरीर था और बिना कर्मके हो गया था, तो जैसे पहले बिना कर्मके शरीर हो गया, वैसे अब भी हो गया। इसलिये, कर्म और शरीरका-धर्माधर्म और शरीरका सम्बन्ध सिद्ध करना मुश्किल है हो-अनिर्वचनीय है। असलमें, सत्य धर्माधर्मसे परे है। सत्य शरीरसे विलक्षण है। सत्य जन्म-मरणसे विलक्षण है। सत्य सुख-दुःखसे विलक्षण है। उसीकी छातीपर यह जन्म-मरण, नाच रहे हैं। उसीके पर्देपर यह शरीर, पाप-पुण्य, नरक-स्वर्ग, जन्म-मरण, बन्ध-मोक्ष-सब-के-सब नाच रहे हैं। जैसे नटनी नाचती हुई कभी पर्देके भीतर छिप जाती है और कभी सामने आ जाती है, वैसे ये शरीर, पाप-पुण्य, नरक-स्वर्ग, जन्म-मरण, बन्ध-मोक्ष तुम्हारी छाती पर नाच रहे हैं। हाँ! तुम्हारी छातीपर! आप लोगोंने एक फोटो देखी होगी। शंकरजी मुर्देकी तरह सो रहे हैं और उनकी छातीपर महाकाली नाच रही हैं। नंगी

काली हड्डीका कटिवस्त्र पहने, मुण्डकी माला पहने, हाथमें तलवार लिये और जीभ निकाले महाकाली शिवजीके मुर्देपर नाच रही है। यह दक्षिणाकालीका स्वरूप है। परमहंस रामकृष्ण देव दक्षिणाकालीकी उपासना करते हैं–'**शव शिव हृदि स्नेहवदनां महाकालेन उच्चैरमदनरस लावण्यनिर्भरतां।**' महाकाली शिवजीके मुर्देपर–उनकी छातीपर नाच रही हैं। अपना स्वरूप वही शिव है। महाकाली और महाकालका विलास केवल प्रतीतिमात्र है। केवल मालूम पड़ना है। यह वेदान्तका दृष्टिकोण है। मालूम पड़ना कोई अपराध नहीं है। उसमें फँस जाना–उसको सच्चा समझकर फँस जाना और उसको आत्माके अलावा कोई सच समझ बैठना अपराध है। हमने आपको जितनी बात बतायी, वह बिलकुल वेदान्तकी–उपनिषदोंकी व्याख्यामें बतायी।

आप विश्वात्माको समझ सकते हैं। आप तैजसात्माको समझ सकते हैं। आप प्राज्ञात्माको समझ सकते हैं। तुरीयपर आपकी कभी दृष्टि ही नहीं जाती है। वह क्या है? **नान्तः प्रज्ञं। न बहिः प्रज्ञं। न उभयतः प्रज्ञं। नाप्रज्ञं। न प्रज्ञानघनं।** वह अन्तःप्रज्ञ नहीं है। वह बहिः प्रज्ञ नहीं है। वह उभयतः प्रज्ञ नहीं है। वह अप्रज्ञ नहीं है। वह प्रज्ञानघन नहीं है। हाँ! क्या है? नारायण! आज थोड़ी सी चर्चा वेदान्तकी की। आत्मदेवके सामने माया नटनी नाच रही है। मायाका नृत्य माने अपना ही स्वरूप पराया होकर दिख रहा है। मायाका विलास क्या है? अपने ही ज्ञानकी चिन्गारियाँ–अपने ही ज्ञानकी छटा प्रपंचके रूपमें विगरित हो रही है। यह चिद् विलास है। जब आप इसको जड़ मान बैठते हैं–जब आप इसको अन्य मान बैठते हैं, जब आप इसको पकड़ बैठते हैं, तब आपपर मार पड़ती है। रंगमंचपर कोई नटी नाच रही हो और आप यह जिद्द करें कि तुमको हमारे सामने नाचना ही पड़ेगा अथवा आप दौड़कर उसको पकड़ लें, तो दोनों हालतमें वहाँके चपरासी आपको मार–मारकर वहाँसे भगा देंगे। हाँ! वही चपरासीकी मार पड़ेगी।

**राग-द्वेष-भयादीनां अनुरूपं चरन्नपि।**
**यो अन्तर्व्योम व्यदत्यच्छ स जीवन्मुक्त उच्यते।**

जीवन्मुक्तके लिए यह बताया कि उसको सब मालूम पड़ता है;

लेकिन, उसमें वासना नहीं है। उसमें कोई चीज अपनी गन्ध छोड़कर नहीं जाती है। उसमें कोई चीज कुछ लीपापोती करके नहीं जाती है। आती है-जाती है। जाती है-आती है। कभी क्रोधकी मुद्रामें, तो कभी प्रसादकी मुद्रामें। कभी दाँतसे नीचेवाला होंठ दबाकर और आँख टेढ़ी करके देखता है। कभी होंठोंपर मुस्कान खिलाकर और आँखोंमें प्यार भरकर देखता है। पहले हिटलरका फोटो आता था, जिसमें वह लाल-लाल आँखोंसे गुस्सेमें भरकर घूसा ताने था। एक यह दृश्य है। हिटलर जिस स्त्रीसे प्रेम करता था, उसके सामने उसके होंठों पर कैसी मुस्कान खेलती थी और आँखोंमें कैसा प्यार आता था? उसकी भी फोटो आती है। भला! यह भी एक दृश्य है। आहा! जिसको आप तत्त्वज्ञानी बोलते हैं, उसका शरीर-अन्तःकरण और उसके सहित सारा-का-सारा दृश्य-प्रपंच वस्तु नहीं है। नारायण! तत्त्वज्ञानीका शरीर-अन्तःकरण। अरे! अपना ही शरीर और अपना ही अन्तःकरण और उसके सहित जितना दृश्य-प्रपंच है, वह सारा-का-सारा मुद्रा है, पार्ट है। मुद्रा देखो। पार्ट देखो। क्रोध नहीं है, क्रोधका पार्ट है। काम नहीं है, कामका पार्ट है। लोभ नहीं है, लोभका पार्ट है। पार्ट माने हिस्सा नहीं। पार्ट माने अभिनय। ज्ञानका अभिनय है-यह प्रपंच। आप चिद्धारा बोलो। आप चिद्विलास बोलो। आप प्रतीति बोलो। प्रतीतिकी धारा बोलो। मालूम पड़ना बोलो। यह प्रपंच ज्ञानस्वरूप आत्माकी थिरकन है। आत्मा रूप नटका अभिनय है-यह प्रपंच। हाँ! अभिनयके सिवाय और कुछ भी तो नहीं है।

संस्कृतमें बहुत तरहके नाटक होते हैं। दस तरहके रूपक होते हैं। उसमें-से एक होता है-भाण। उसका नाम होता है-'भाण'। ण है वह। ट वर्गीय ण। ट ठ ड ढ ण। हाँ! भाण। भणति। दक्षिणी लोग भणति नहीं बोलते हैं। वह बोलते हैं-फणाति। वह भाण नहीं बोलते हैं। फाण बोलते हैं। उच्चारणका भेद है। संस्कृतमें सैकड़ों नाटक ऐसे हैं, जो भाणकी कोटिमें आते हैं। उसमें यह होता है कि एक ही आदमी जब औरतकी ओरसे बोलता है, तब वैसी ही आवाज बना लेता है और वैसी ही भाषा बोलता है। वही आदमी जब फिर मर्दकी ओरसे बोलता है, तब वैसी ही आवाज बना लेता है और वैसी ही भाषा बोलता है। वही आदमी माँ बनकर बोलता है और

वहाँ बेटा बनकर बोलता है। वही आदमी पत्नी बनकर भाषा बोलता है और वही पति बनकर बोलता है। उसके 'डायलॉग' (Dialogue) अलग-अलग होते हैं और बोलनेकी 'टोन' (Tone) अलग-अलग होती है; परन्तु, वह बोलने वाला एक ही आदमी होता है। कभी गुस्सेमें बोलता है। कभी प्यारसे बोलता है। उसको संस्कृत भाषामें 'भाण' बोलते हैं। भाणका सारा व्यवहार केवल शब्द-मात्र या केवल स्फुरण-मात्र, चेष्टा-मात्र होता है। वस्तुतः न वह औरत हो जाता है और न वह मर्द हो जाता है। न वह पति हो जाता है, न पत्नी हो जाता है। न वह माँ हो जाता है और न बेटा हो जाता है। वस्तुतः वह कुछ नहीं होता है; परन्तु, श्रोता लोग एक ही व्यक्तिसे सबका आनन्द ले लेते हैं। मैं समझता हूँ कि संस्कृत भाषामें तो सैकड़ों ऐसे नाटक हैं। इस तरहके नाटककी संज्ञा भाण होती है। उसमें एक ही पात्र होता है और दसियों का अभिनय करता है। ये पुराने नाटक अभी हिन्दीमें नहीं आये हैं। हिन्दीके लोग पढ़ें, तो उनको मजा ही आ जाये। ऐसे बढ़िया-बढ़िया नाटक हैं।

ऐसा यह नाटक सृष्टिका हो रहा है। अब देखो! बोध है कि मैं माँ की ओरसे बोल रहा हूँ; परन्तु, माँ हो जानेकी ऐसी वासना नहीं बैठ जाती कि वह मंचके बाद भी माँ ही रहे। वह पत्नी होकर बोलता है। वह पति होकर बोलता है। वह बेटा होकर बोलता है। वह दुश्मन होकर बोलता है। वह दोस्त होकर बोलता है। वह मालिक होकर बोलता है। वह नौकर होकर बोलता है। नारायण! वह वही-वही हो नहीं जाता है। तुलसीदासजीने सगुणका वर्णन करते समय यह दृष्टान्त दिया है-

*यथा अनेक रूप धरि, नृत्य करही नट कोई।*
*सोई सोई भाव देखावही, आपुनु होई न सोई।।*

आपुनु होई न सोई से यह अद्वैत वेदान्तमें आगया है। आपुनु होई न सोई माने वह सब उसके विवर्त हैं। यह चौपाई गोस्वामीजीने बिल्कुल भागवतसे ली है भला! **'यथामत्स्यादि-रूपाणि धत्ते ययात यथा नटः।'** जैसे नट अनेक रूप धारण करता है और फिर उनको छोड़ देता है। ऐसे हमें यह जो संसारका मालूम पड़ना है, वह अनेक रूप मालूम पड़ता है; परन्तु, ज्ञान ज्यों-का-त्यों रहता है। यह बोधका निर्वासन होना है।

हवामें कितनी गन्ध-सुगन्ध-दुर्गन्ध आती है और चली जाती है। पानीमें कितना जहर आता है और कितनी मिठास आती है और चली जाती है। आगमें कितनी लपटें उठती हैं और मिट जाती हैं। हवाके कितने झोंके आते हैं और शान्त हो जाते हैं। आकाश कितनी दूर तक दिखता है और बादल आनेपर कैसा ढँक जाता है। *यथा गगन घनपटल निहारी। झंपेउ भानु कहेहीं अविचारी।* सूर्य ढँक गया-यह अविचारी लोग देखते हैं। **घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कम् यथा निष्प्रभं मन्यते चादि मूढः।** बादलसे आँख ढँकती है। बादलसे सूर्य नहीं ढँकता है। मूढ़ पुरुष समझता है कि सूर्य ढक गया। भ्रान्ति आपकी वृत्तिपर छा जाती है; आपपर नहीं छाती है। वृत्तिगत जो भ्रान्ति है और उस भ्रान्तिके कारण रूपमें जो कल्पित अज्ञान है, उससे आत्मा ढँक गयी है। ऐसी बात अविचारसे कही जाती है। आत्मदेवका न पूर्व जन्म है, न उत्तर जन्म है, न वर्तमान जन्म है। यह न पहले मरा है, न मर रहा है, न मरेगा भला! यह पहले कभी न जड़ हुआ है, न जड़ है और न जड़ होगा। यह पहले कभी न दुःखी हुआ है, न दुःखी है और न दुःखी होगा। यह पहले कभी न देहधारी परिच्छिन्न था, न है और न होगा। यह नरक-स्वर्गमें न कभी गया और न जायेगा भला! यह तो जब देहके साथ मैं कर लेते हैं, तब तादात्म्याध्यासके कारण जन्म-मरण, सुख-दुःख, नरक-स्वर्गादिकी कल्पना होती है। यह अज्ञानके कारण है। जब देहमें-से मैं निकल जाता है, तब देह नाटकका एक पात्र हो जाता है-एक स्वप्नपुरुष हो जाता है।

**रागद्वेषभयादीनां अनुरूपं चरन्नपि।**
**योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते।।**

बंगालमें एक ज्ञानी पैदा हुआ। ज्ञान होनेके पहले उस बंगालीका जैसा भोजन था, वैसा ही भोजन ज्ञान होनेके बाद रहेगा। मद्रासमें एक ज्ञानी पैदा हुआ। यह नहीं समझना कि ज्ञान होनेके बाद उसका भोजन बदल जायेगा। पंजाबी लोग कहेंगे कि वह तन्दूरकी रोटी खाये, तब तो हम उसको ज्ञानी मानेंगे। यदि वह इडली-डोसा खाये, तो हम ज्ञानी नहीं मानेंगे। मद्रासी लोग कहेंगे कि वह इडली-डोसा खाये, तब तो वह ज्ञानी है। यदि वह उड़दकी दाल, तन्दूरकी रोटी और सरसोंका साग खाता है, तो यह क्या ज्ञानी है?

अभी उसमें पंजाबीपना है। देखो! यह जो पंजाबीपनेका असर और मद्रासीपनेका असर है न, वह तो सहज स्वाभाविक है। यदि ज्ञानीका शरीर पंजाबका है, तो वह पंजाबी सरीखा है। यदि ज्ञानीका शरीर मद्रासका है, तो वह मद्रासी सरीखा है। पंजाबी शरीर वाले ज्ञानीकी सहज रुचि मक्केकी रोटी और सरसोंके सागमें हो जायेगी। यदि कोई कहता है कि इस ज्ञानीका तो मक्केकी रोटी-उड़दकी दाल और सरसोंके सागमें राग है, तो भाई मेरे! इनमें उसका राग नहीं है। हाँ! जन्मसे उसको आदत पड़ गयी है; इसलिए, वह उड़दकी दाल वगैरह खाता है। आदतन खाता है, न कि रागवश होकर खाता है। बोले-मूँगकी दाल तो रोगी लोग खाते हैं। हाँ! ऐसे भी है हो! हम लोगोंकी ओर बनारसकी तरफ अरहरकी दाल रोज खाई जाती है। आप लोग क्या बोलते हैं। आषाढ़ी? तुवरकी दाल-अरहरकी दाल उधर बनारसकी ओर रोज खाई जाती है। वहाँ मूँगकी दाल उस दिन खाई जाती है, जब बुखारमें-से उठनेके बाद रोगी को पहले पहल भोजन दिया जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि अगर बनारसका ज्ञानी अरहरकी दाल खाता है, तो उसको आप राग मत समझिये। रागानुरूप आचरण होनेपर भी वह राग नहीं है। वह आदत है। अब महाराज! अगर कोई वैदिक नास्तिकताका निराकरण करता है-अवैदिक मतका खण्डन करता है; पाखण्डी चार्वाक इत्यादि जो दूसरे अवैदिक मत हैं, उनके खिलाफ बोलता है, तो मालूम पड़ता है कि अरे! यह तो कोई मतवादी-पन्थाई-दूसरोंसे द्वेष करनेवाला है; परन्तु, उसके भीतर द्वेष नहीं है। वह तो आदत है। ज्ञान होनेके पहलेसे ही उसको अवैदिक मतके खण्डनकी आदत पड़ गयी है-नास्तिकता निराकरण करनेकी आदत पड़ गयी है। द्वेषानुरूप आचरण होनेपर भी उसमें द्वेष नहीं है। अच्छा! समझो! एक ज्ञानी है। ज्ञान होनेके पहले वह केवल हिन्दी बोलता था। ज्ञान होनेके बाद क्या वह लैटिन बोलने लगेगा? जर्मन बोलने लगेगा? आपकी ऐसी कल्पना गलत है। यदि ज्ञान होनेके पहले वह पंजाबी बोलता था-तमिल बोलता था, तो ज्ञान होनेके बाद भी पंजाबी बोलेगा-तमिल बोलेगा। हाँ! यदि पहले जर्मन बोलता था, तो अब भी जर्मन बोलेगा। ज्ञान होनेसे उसकी भाषा बदल नहीं जायेगी। बोले-यह क्या ज्ञानी है, जिसका एक भाषामें इतना मोह है।

आपको एक दिनकी बात सुनाते हैं। हम 'कोयम्बटूर' गये थे। उस समय एक नौ-दस बरसकी लड़की होगी। उसके परिवारके लोग यहाँ आते हैं। कथामें भी मैंने कल देखा-परसों देखा। उसके परिवारके लोग यहाँ बैठे थे। हम, विपिन बाबू, वह छोटी-सी लड़की और लड़कीका पिता-हम लोग मोटरमें कोयम्बटूरसे पलनी सुब्रह्मण्यम्‌का दर्शन करने जा रहे थे। लड़कीका पिता मोटर चला रहा था। अब महाराज! वह लड़की हमसे बहुत प्रेम करती थी। उसने हमसे पूछा-'तुम तमिल जानते हो?' मैंने कहा-'नहीं'। वह बोली-'मैं तो जानती हूँ।' अच्छा! फिर बोली-'तुम इंग्लिश जानते हो?' मैंने कहा-'नहीं।' वह बोली-'मैं तो जानती हूँ' अच्छा! 'तुम सिन्धी जानते हो?' मैंने कहा-'नहीं' वह बोली-'मैं तो जानती हूँ।' अच्छा! तुम जानते क्या हो? खाक जानते हो? अब ल्यो! वह लड़की अब बड़ी हो गयी है। लड़कीके चाचा-दादी सम्भवतः यहाँ बैठे हुए हों। अच्छा! हम आपसे पूछते हैं-क्या आप ज्ञानीसे यह आशा रखते हैं कि उसको दुनिया की सब भाषा मालूम हो जाये? क्या आप ज्ञानीसे यह आशा रखते हैं कि वह दुनियाकी कोई भी चीज मुँहमें डाल ले-खा जाये? क्या आप ज्ञानीसे यह उम्मीद रखते हैं कि वह जो चाहे, सो कर ले और जो चाहे, सो भोग ले? नहीं। भाई मेरे! यह आशा-यह उम्मीद करना ठीक नहीं है। ज्ञानीके जीवनमें ज्ञान होनेसे पहले जैसी रहनीका अभ्यास हो गया है, वह अपने आप चलती रहती है। ज्ञान होनेसे पहले वह साँप देखकर डरता था कि नहीं? डरता था। ज्ञान होनेके बाद भी जहाँ साँप दिखे और वहाँ वह ठिठक जाये और चौंककर पीछे हट जाये, तो क्या उसके ज्ञानमें बाधा पड़ गई? नहीं! ज्ञान होनेसे पहले वह बिच्छू देखकर डरता था कि नहीं? डरता था! ज्ञान होनेके बाद भी जहाँ बिच्छू दिखे और वहाँ वह ठिठक जाये और चौंककर पीछे हट जाये, तो क्या उसका ज्ञान उड़ गया? नहीं। ज्ञान उड़ा नहीं हो! रागद्वेष-भयादीनां अनुरूपं चरन्नपि।

एकबार गीताप्रेसके किसी महापुरुषने 'अच्युत मुनिजी' को चिट्ठी लिखी। बहुत पुरानी बात है। तब तक वे महापुरुषके रूपमें प्रसिद्ध भी थे कि नहीं थे। हाँ! प्रसिद्धि तो बादमें धीरे-धीरे हो जाती है न! उस समय तक उन्होंने अपने आपको अवतार या महापुरुषके रूपमें प्रकट नहीं किया था।

अच्युत मुनिजीको उन्होंने कभी कोई चिट्ठी लिखी। उसमें लिख दिया कि ज्ञानी तो वह होता है, जिसके मनमें किसी इच्छाका उदय नहीं होता है। अब ल्यो! ईमानदार तो वह होता है, जिसके पड़ोसमें भी बेईमान नहीं होता है। आप यह नियम बना लो। हैं? आप यह कायदा बना लो कि ईमानदार तो वह होता है, जिसके पड़ोसमें भी बेईमान नहीं होते हैं। वे बेईमान हैं। क्यों? उनके पड़ोसमें बेईमान रहते हैं। क्या आप यह कानून बना सकते हैं? नहीं बना सकते न! अच्युत मुनिजीने जवाब दिया–'क्यों भाई! अगर मैं कभी तुम्हारे घरमें भिक्षा करनेके लिए आऊँ और मैं यह कह दूँ कि दालमें थोड़ा नमक और चाहिए अथवा मैं खाते समय तुमसे काली मिर्चके दस दाने माँग लूँ, तो तुम मुझे ज्ञानी मानोगे कि अज्ञानी मानोगे? माने तुम्हारी श्रद्धाकी कीमत मेरे दस दाने काली मिर्च माँगने और न माँगनेपर निर्भर करती है न? क्या ज्ञान कोई ऐसी चिड़िया है कि जहाँ इच्छाकी ताली बजी और ज्ञान भाग गया? अरे! ज्ञान कोई उड़ने वाली चिड़िया है? महाराज! ज्ञान महाप्रलयके हुंकारसे भी भागता नहीं है। **प्रलयस्यापि हुंकारैः चलाचल-विचालनैः विक्षोभं नैस्थापतः।** उसका जो अन्तर्देश है, वह महाप्रलयकी हुँकारसे भी विचलित नहीं होता है। उसका जो स्वरूप है, वह महाप्रलयकी गर्जनासे भी विचलित नहीं होता है। ऐसा तो उसका स्वरूप है और उसके अन्तःकरणमें जैसी खाने-पीने और रहनेकी इच्छा होती है, वैसे वह खाता-पीता और रहता है। कोई ऐसे महात्मा भी होते हैं, जो किसानोंके घरमें ही रहना पसन्द करते हैं।

व्रजमें तो पहले यह मर्यादा थी। शायद आपको मालूम हो कि नहीं हो! जब साधु गाँवमें मधुकरीके लिए जाते थे, तब यदि कोई साधु व्रजवासीसे यह कह दे कि हमको दूध चाहिए या दही चाहिए, तो वह उसको दस गाली सुनाते थे। व्रजवासिनी औरतें कहतीं थीं कि 'यह निगोड़ा कहीं बाहरसे आया है। ऐसे माँगता क्यों है? अरे बाब! हमारे कृष्ण-कन्हैयाके लिए खुला दूध-दही रखा है। तेरा घर है। अगर तू व्रजवासी है, अगर तू कृष्ण का है, तो घुस जा घरमें और लेकर दही खा ले। लेकर दूध पीले। जितनी मौज हो, उतना दूध-दही ले ले। तू माँगता क्यों है?' व्रजमें पहले यह मर्यादा स्थापित कर दी थी। अब वैसा नहीं है भला! अब आप ऐसा मत समझो कि

आप किसीके घरमें घुसकरके दूध-दही-मक्खन निकालकर खाने लग जाओ। हाँ! अब वैसा नहीं है। अब तो व्रजवासी लोग देख लेते हैं कि यह पैसे वाला है या नहीं। जब उनको लगता है कि यदि हम इसको एक रुपयेका दूध-दही-मक्खन खिलावेंगे, तो यह हमको दस रुपया देकर जायेगा, तब देते हैं भला! फिर भी, कोई-कोई उदार हैं।

जीवन्मुक्तकी रहनी विधि-निषेधसे परे है। यह जो रहनी है, वह परमस्वतंत्र है। देखो! सूर्यकी रोशनीके साथ विष्ठा नहीं लगता है। आकाशमें बादल नहीं चिपकता है। है ना? आहा! आगने क्या जला दिया, इससे कोई मतलब नहीं है। गंगाजीकी धारामें क्या बह गया, इससे कोई मतलब नहीं है। हैं? मिट्टी कहाँकी काली और कहाँकी पीली है? कहाँ की करेली और कहाँकी बालू-सुन्दरी है? मिट्टीकी दृष्टिसे काली मिट्टी-पीली मिट्टीका कोई भेद नहीं है। पृथ्वी पृथ्वी है। नारायण! इसी तरहसे, ज्ञानी पुरुष तत्त्व है। वह आकाश नहीं है, वह तो चिदाकाश है। जब हम आकाशको नीला देखते हैं, तब भी आकाश नीला नहीं होता है। तल मलिनता दूसरोंके द्वारा आकाशमें आरोपित है। नीलिमा आकाशकी दृष्टिसे नहीं है। ब्रह्मस्वरूप ज्ञानीका स्वरूप है-ब्रह्म। उसमें न मिट्टीका मैल है और न उसमें पानीका जहर है। उसमें न अग्निका दाह है और न उसमें वायुकी गति है। उसमें आकाशकी ध्वनि भी नहीं है। उसमें सब दिखायी पड़ते हैं; परन्तु, है उसी चिदाकाशमें कुछ भी नहीं। उस चिदाकाशके रूपमें अपने आपको अनुभव करके जो बन्धनके आरोप और मुक्ति-रूप अपवाद-दोनोंसे छूट गया है, उसका नाम है-जीवन्मुक्त। वह जीवनकालमें-जीते जी मुक्त है।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## 17

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

पहले वेदान्तकी प्रक्रियाके सम्बन्धमें बोलते हैं। सिद्धान्त अलग चीज है और प्रक्रिया अलग चीज है। जैसे-स्वास्थ्य एक अलग चीज है और रोग मिटानेकी प्रक्रिया एक अलग चीज है। प्रक्रिया माने तरकीब-तरीका-प्रकार-युक्ति। वेदान्तमें यह प्रक्रिया अलग-अलग होती है। 'भगवान् सुरेश्वराचार्य'ने कह दिया कि 'भाई! सबपर एक ही दवा नहीं चलती है। जैसा रोगी होता है, उसके अनुसार दवा होती है।' ये जो 'पेटेण्ट' (Patent) दवाइयाँ होती हैं न-जिन्हें चाहे जो लेकर खाये-पीये और अच्छा हो जाये-उन्हें डाक्टरसे सलाह करके लेनी चाहिए और जाँच-पड़ताल करवाकर खानी-पीनी चाहिये। वेदान्तमें अनेक प्रक्रिया है-एक जीववाद, अनेकजीववाद, आभास-वाद, प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद, दृष्टि-सृष्टिवाद। दृष्टि-सृष्टिवादमें भी बहुत प्रकार हैं-मनोवृत्तिका नाम दृष्टि है; अविद्याकी वृत्तिका नाम दृष्टि है; आत्मदृष्टिका नाम दृष्टि है; इत्यादि। यह जो जीवन्मुक्तिकी प्रक्रिया है, यह आभासवादकी पद्धतिसे है भला! 'पंचदशी' और 'विचारसागर'-ये दोनों आभासवादी ग्रन्थ हैं। माने इन ग्रन्थोंमें जो तरकीब है-जो प्रक्रिया है, वह आभासवादकी है। अतएव, तत्त्वज्ञान होनेके बाद जो आभास होता है, उसीमें जीवन्मुक्तपनेका अध्यारोप किया जाता है।

वेदान्तकी क्या तरकीब है? अब आपको वह सुनाते हैं। यदि कोई आदमी आपको कहे कि हमको बहुत रोग है, बहुत दर्द है, बहुत कष्ट है और आप उसको बोलो कि आपको बिलकुल कोई रोग नहीं है, बिलकुल कोई दर्द नहीं है, बिलकुल कोई कष्ट नहीं है, तो वह आदमी आपकी बात नहीं मानेगा। वह कहेगा कि रोग हमको है, दर्द हमको हो रहा है और आप केवल जबानी जमा-खर्चसे कर रहे हो कि आपको रोग नहीं है, बिलकुल कोई

दर्द-कष्ट नहीं है। देखो! किसी भी कारणसे रोगमें-दर्दमें उस आदमीका अध्यास हो गया है। हाँ! अब आप उसको सीधे-सीधे कहो कि यह आपके मनका दोष है-मानसिक दोष है, तो वह कहेगा कि यह आदमी हमको पागल बताता है और पागल समझता है। यह तो हमारा अपमान कर रहा है। वह आपकी बात बिलकुल नहीं सुनेगा। अध्यास माने अज्ञान दशाकी स्थिति। अज्ञानसे भ्रान्ति होती है। हम एक चीजको ठीक न समझ करके उसको ठीक उसके विपरीत दूसरा समझने लगते हैं।

असलमें, आत्मा है-निरोग। आत्मा अद्वय है। आत्मामें बन्धन और मुक्तिका भेद ही नहीं है। भागवतमें यह बात लिखी है। **अज्ञान-संज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नामनान्यौऽसरितज्ञभावात्।** अपनी भावनाके अतिरिक्त न बन्धन है और न मोक्ष है। ऋत स्वरूप जो ज्ञ है-आत्मा है, उसकी भावनासे अतिरिक्त न बन्धन है, न मोक्ष है। कैवल्यमुक्ति-क्रममुक्ति-सद्योमुक्ति। आत्माके वास्तविक स्वरूपको न जानकर यह सब कल्पनामात्र हैं। अपनेमें बन्धन कल्पित है। वेदान्तकी प्रक्रिया यह है कि पहले इस कल्पित बन्धनको ही सिद्ध करते हैं। यदि अध्यास सिद्ध न हो, तो? स्वयंप्रकाश आत्मा और प्रकाश्य विषय। आत्मा विषयी और दृश्य विषय। आत्मा प्रकाश और दृश्य तमस्-परप्रकाश्य। इन दोनोंमें कभी अज्ञानकी सिद्धि हो ही नहीं सकती है। अध्यासकी सिद्धि हो ही नहीं सकती है। फिर भी, अनुभव तो हो ही रहा है न! मालूम तो पड़ ही रहा है न! हे भगवान्! रोगीसे यह मत कहो कि तुमको कोई रोग-दर्द-कष्ट नहीं है। है न? हाँ! यह मत कहो।

यह जो कच्चे वेदान्ती होते हैं न, उनका शील स्वभाव ऐसा होता है कि पहले ही दिन वे कहना शुरू कर देते हैं कि तुम्हें तो कोई बन्धन नहीं है। हाँ! तुम्हारे तो कोई बन्धन नहीं है। अरे! वह पैसेसे बँधा हुआ है। वह पैसेके लिए खिंचाखिंची कर रहा है। तुम्हारे मनमें पैसेके लिए तनाव है कि नहीं? अगर तुम्हारा मन पैसेसे बँधा न होता, तो तनाव क्यों होता? हैं? तुम्हारे मनमें स्त्रीके लिए तनाव होता है कि नहीं? तुम्हारे मनमें शत्रुके लिए तनाव होता है कि नहीं? तुम्हारा मन शत्रुसे, स्त्रीसे, धनसे, शरीरसे बँधा हुआ है। जब आदमी बँधता है, तब वह अकेला नहीं बँधता है हो! तुम औरतको

बाँधना चाहोगे और औरत तुमको बाँध लेगी। तुम पैसेको बाँधना चाहोगे और पैसा तुमको बाँध लेगा। तुम दुश्मनको बाँधना चाहोगे और दुश्मन तुमको बाँध लेगा। यदि तुम यह समझते हो कि जिसको तुम अपने पास बाँधकर रखना चाहते हो, उसको तुम्हीं बाँधकर रखोगे और वह तुमको नहीं बाँधेगा, तो तुम यह गलत समझते हो भला! हाँ!

एक बारकी बात है। किसीकी किसीसे दुश्मनी थी। अब महाराज! उसने ऑफिसमें ही उसके कपड़ोंपर पेट्रोल डालकर दियासलाईकी तीली फेंक दी। उसके शरीरमें आग लग गयी। बिलकुल ऑफिसमें। है न? अब उस आदमीने, जिसके शरीरपर पेट्रोल पड़ा था और कपड़ेपर आग लगी थी, क्या किया कि न आव देखा न ताव और दौड़कर जोरसे उस आदमीको पकड़ लिया, जिसने कपड़ोंपर पेट्रोल डालकर दियासलाईकी तीली फेंक दी थी। वह सोचता था कि हम इसको तो जला देंगे और खुद बच जायेंगे; लेकिन, दोनों जल गये। यह जो हम समझते हैं कि हम तो किसी चीजको बाँधकर रखेंगे और हम उसके साथ नहीं बँधेंगे, वह गलत समझ है। असलमें, बन्धन क्या होता है? यह जो हम दुनियामें किसी वस्तुको, किसी व्यक्तिको, किसी क्रियाको, किसी भोगको, किसी मनोवृत्तिको, किसी स्थितिको अपने साथ बाँधकर रखना चाहते हैं, यही बन्धन है। जबतक तुम उसको बाँधकर रखना चाहते हो, तबतक तुमको भी उसके साथ बँधे रहना पड़ेगा। अब पहले हम यह कहेंगे कि हाँ! तुम बँधे हुए हो। हम तुम्हारे अध्यासको स्वीकार करते हैं। बोले—हाँ! इस अध्यासमें बड़ा दर्द है। बड़ी पीड़ा है। बड़ा दुःख है। भाई! यह तो तुम्हारे जीवनको जन्म-मरणके चक्करमें डालता है।

एक अच्छे कवि हैं। आजकल वह अच्छे कवियोंमें माने जाते हैं। वह वृन्दावनमें आये थे। मैं कवि-सम्मेलनका अध्यक्ष था। अतएव, उन्होंने मेरे मनकी कविता सुनायी। उस कविताका मतलब यह था कि जो शकल-सूरत है—आकृति-रूप है, वह मर-मर जाते हैं; परन्तु, जीवन नहीं मरता है। आकृति-रूपका-शकल-सूरतका जन्म-मरण होता है। जीवनका जन्म-मरण नहीं होता है। जीवन तो सत् है। हाँ! जीवन तो सत्य है। वृत्तियाँ आती हैं और जाती हैं; परन्तु, ज्ञान नहीं मरता है भला! भोजन

भीतर जाता है और बाहर निकलता है; परन्तु, आनन्द नहीं मरता है भला! संयोग-वियोग होते हैं; परन्तु, आनन्द नहीं मरता है। सुख-दुःखके निमित्त आते-जाते हैं; परन्तु, आनन्द नहीं मरता है। असलमें, अजातवादके अनुसार और दृष्टि-सृष्टिवादके अनुसार जीवन्मुक्ति नामकी कोई वस्तु नहीं है। मुक्ति नामकी ही कोई वस्तु नहीं है। जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिकी तो बात ही क्या करें? क्रममुक्तिकी तो बात ही क्या करें? स्वरूपदृष्ट्या बन्धनकी अपेक्षासे मुक्ति कल्पित है। इसलिए, गौण हो गयी। अपने आप ही गौण हो गयी।

अच्छा! देखो! आप किसीके मनमें भूत-प्रेतकी कल्पना बैठाओ मत। भूत-प्रेतकी कल्पना होती है कि नहीं होती है? वह तो ब्रह्मके सिवाय कुछ है ही नहीं। यदि किसीके मनमें बैठ गयी हो, तो क्या करोगे? हमको ऐसा मन्तर-मन्त्र आता है कि हम तुरन्त भूत-प्रेत उतार दें। हाँ! पहले हम भूतको मान लेते हैं। हाँ! पहले हम मान लेते हैं कि तुमको भूत लगा है और फिर मन्तर पढ़कर तुरन्त उतार दें। जिसके मनमें यह बात बैठी हुई हो कि हमको भूत लगा है, उसको हम यह कहें कि भूत तो होता ही नहीं है, तो वह बिलकुल नहीं मानेगा। आपको अपने गाँवके पासकी एक घटना सुनाते हैं। एक चमार था। वह अन्धेरेमें कहीं जा रहा था। गाँवके एक राजपूतको मजाक सूझा। रास्तेमें महुआका पेड़ पड़ता था। वह उसपर चढ़ गये और चढ़कर बड़ी जोरसे डाल हिलायी। अब वह चमार बेचारा तो भूतकी कल्पनामें डूबा हुआ ही था। चमारने सोचा कि रातके समय यह डाल इतनी जोरसे हिलानेवाला सिवाय भूतके और कोई नहीं हो सकता। चमारको बुखार आगया। अब घर जाकरके वह जोर-जोरसे चिल्लाने लगा कि अरे! हमको तो भूत लगा है। महाराज! वैद्य बुलाये गये। तरह-तरहसे दवा हुई; लेकिन, वह अच्छा ही न हो। सयाने लोग बुलाये गये। किसी सयानेको मालूम ही नहीं था कि भूत कौन लगा? कहाँ लगा? कब लगा? कैसे लगा? अब चमार तो अपना हाथ-पाँव पटके। जब आदमीको भूत लगता है न, तब वह हाथ-पाँव पटकता है। वह चिल्लाता है। उसकी आँख लाल-लाल होती है। सब कुछ होता है। चमारकी यह गम्भीर हालत देखकर राजपूतने किसीसे उसके घरमें यह

खबर भिजवाई कि ठाकुर साहब जैसा भूत झाड़ना जानते हैं, वैसा कोई जानता ही नहीं है। ठाकुर साहब ही भूत उतार सकते हैं। देखो! पहले चमारके और उसके घर के लोगोंके मनमें श्रद्धा बैठायी और फिर उसके घरमें आये। अब घरमें आकर उन्होंने भी आँखें लाल की और हाथ-पाँव गरम किये। हाँ! सब नाटक किया। बोले-'तूँ क्या समझता है? मैं वह हूँ-महुआकी डालीवाला।' अब तो वह चमार झटसे उठकर बैठ गया हो। बोला-'यह सयाना ठीक है। यह पहचान गया कि भूत कौन है और कहाँ लगा?' बोले-'हाँ! वही महुआ वाला। है ना?' बोला-'हाँ! हाँ! हाँ! बोले-'मैं कहूँगा, वह करना पड़ेगा। उतरना पड़ेगा। अब हाथ जोड़।' 'हाँ! जोड़े।' 'अब धरतीमें नाक रगड़।' 'हाँ! नाक रगड़ी।' बोले-'अब भाग जा' वह भाग गया हो। दूसरे वैद्योंसे-डॉक्टरोंसे-सयानोंसे उसका भूत उतर नहीं सकता था भला! जो लोग जैसी मान्यताओंमें फँस जाते हैं, उन्हें वैसी मान्यताओंसे बाहर निकालना पड़ता है; ऊपर उठाना पड़ता है; आगे बढ़ाना पड़ता है। पहले मान्यताओंको स्वीकार करते हैं और फिर युक्तिसे मान्यताओंका अपवाद करते हैं।

आपको इस संसारकी आसक्तिकी बात बताते हैं। एक आदमी हमसे पूछता है कि हम आसक्ति करते हैं, तो इसमें हमारी क्या गलती है? हमने कहा कि भाई मेरे! तुम देखो। असलमें, तुम आसक्ति देना नहीं चाहते हो, अपितु लेना चाहते हो। असलमें जिसके हृदयमें आसक्तिका उदय होता है, वह आसक्तिके विषयके साथ बँध जाता है। बिलकुल पराधीन हो जाता है। आसक्ति करो-राग करो और पराधीन न बनो-यह बात नहीं होती है। यदि तुम्हारे चित्तमें किसी भी वस्तुके प्रति आसक्ति होगी, तो तुम जरूर बँधोगे। क्यों बँधते हो? क्योंकि, चित्तके साथ मिले हुए हो भला! तुम और चित्त तो हो गये हो एक। चित्त जिसके साथ बँधता है, उसके साथ तुम अपना बन्धन मान बैठते हो। यदि विवेक-ख्याति हो जाये माने चित्त और साक्षी-दोनों अलग-अलग हो जायें, तो चित्त अपने विषयके साथ घूमे-फिरे; हँसे-खेले; लेकिन, साक्षीमें कोई बन्धन नहीं है। न अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यमें बन्धन है, न तो सम्पूर्ण प्रपञ्चके साक्षीमें बन्धन है और न ही अद्वय ब्रह्ममें बन्धन है। द्वैत न होनेके कारण अद्वय

ब्रह्ममें बन्धन नहीं है। समष्टिका ज्ञान होनेके कारण ईश्वरमें बन्धन नहीं है। ईश्वर सृष्टि बनाता है, रक्षा करता है, प्रलय करता है। प्रलय करते हुए भी ईश्वरमें प्रलयका कर्त्तापन नहीं है।

जीवन्मुक्त ब्रह्मकोटिका नहीं है हो। जीवन्मुक्त ईश्वरकोटिका है भला! जैसे सृष्टि-व्यापार करता हुआ भी ईश्वर बद्ध नहीं होता है, वैसे सृष्टि-व्यापार करता हुआ भी जीवन्मुक्त बद्ध नहीं होता है। देहपातानन्तर जो मुक्ति है, उसको विदेहमुक्ति बोलते हैं। असलमें, जीवनकालमें भी जो मुक्ति है, वह विदेहमुक्ति ही है। जैसे राजा जनकको विदेह बोलते हैं। वह जीवनकालमें ही विदेह हैं। वहाँ तो जीवन्मुक्तिको ही विदेहमुक्ति कहा गया है। अतएव, देहपातानन्तरमुक्ति और जीवन्मुक्ति-दोनोंको विदेहमुक्ति बोलते हैं। **अशरीरकं वसन्तं प्रियाप्रियेण स्पृशत्।** आत्मा अशरीर है। यह बोध होकरके अपने स्वरूपमें स्थिति हो गयी। अब प्रिय और अप्रिय तकलीफ नहीं देंगे-स्पर्श नहीं करेंगे। आपको यह बात सुनायी।

अब आपको एक बात बताते हैं। सीधी बात है। हमको तो बड़ा डर लगता है। कब डर लगता है? जब कोई कहता है कि तुम हमारे प्रेमी बन, जाओ। क्यों डर लगता है? क्योंकि, हम जानते हैं कि पहले यह हमको अपना प्रेमी बनावेगा और फिर कहेगा कि हमारे इशारेपर नाचो। जब तुम हमारे प्रेमी हो और हम तुम्हारे प्रियतम हैं, तब तुम प्रियतमकी इच्छाके अनुसार चलो। है कि नहीं? आहा! प्रेमीको परवश होना पड़ता है। प्रेमीको पराधीन होना पड़ता है। प्रेमीको परतन्त्र होना पड़ता है। यह जो संसारका प्रेम है, वह प्रेमीको गुलाम बनाता है। बिलकुल गुलाम बनाता है। गुलाम बननेकी हमारी रुचि नहीं होती है। हमको तो बड़ा डर लगता है कि अगर हम किसीके प्रेमी बनेंगे, तो हमको उसके मनके अनुसार चलना पड़ेगा और वह हमसे न जाने क्या-क्या करावेगा? है न? तो, प्रेमी बननेमें हमारी बहुत पुरानी अरुचि है। अच्छा! यदि हम स्वीकृति दे दें, तो क्या तमाशा होता है? आप लोगोंको सुनावें? आप लोगोंको ऐसी बातें मालूम नहीं पड़ती होंगी। आपके जीवनमें ऐसे प्रसंग बहुत कम आते होंगे।

देखो! एक आदमी आकर हमसे कहता है-'महाराज! आज स्वप्नमें आपने हमको दर्शन दिया और आपने हमको मन्त्र भी दिया।' है न? ऐसे

कहता है। हम उसको साफ-साफ कह देते हैं-'हमने आपको दर्शन नहीं दिया। हमने आपको मन्त्र भी नहीं दिया। हमारे प्रति आपकी जो श्रद्धा है, उसने आपको स्वप्न दिया। उस श्रद्धाने आपके स्वप्नमें हमारा शरीर बनाया और फलस्वरूप आपको हमारे दर्शन हुए। जिस देवता और मन्त्रके प्रति आपकी श्रद्धा है, वह देवता और वह मन्त्र आपके स्वप्नमें प्रकट हुए। हमने आपको स्वप्न-दर्शन और मन्त्र नहीं दिया।' हम साफ-साफ बोल देते हैं। महाराज! जब कभी हमने कबूल कर लिया, तब नतीजा क्या हुआ? वह आपको बताते हैं, भला! उस दिन तो उस आदमीने आकर हमसे कहा- 'आपने स्वप्नमें दर्शन दिया और मन्त्र दिया।' उसके बाद क्या हुआ? सुनो! चार दिनके बाद या चार महीनेके बाद उसने आकर हमसे कहा-'आज तो स्वप्नमें आकर आपने हमारे साथ ब्याह किया।' अब बोलो। अब क्या कहें? हमने आपको यह सपना दिया कि नहीं? उसके बाद वह आदमी आकर हमसे कहता है-'आज तो स्वप्नमें आकर आपने हमसे वायदा किया कि आप हमारे पास आना। हम आपको पाँच-हजार रुपया देंगे।' अब बोलो! अब क्या कहें? देखो! महाराज! हमारे साथ ऐसी घटना घटित हो चुकी है। जब हमने यह भूल की कि 'हाँ! हमने ही आपको स्वप्न-दर्शन दिया, मन्त्र दिया और अब आप हमारे चेले हो गये', तब उसने दूसरे दिन आकर हमसे कहा कि 'आपने स्वप्नमें हमको पाँच हजार रुपये देनेका वायदा किया। वह आप हमको दे दीजिये।' जहाँ हमने संसारको स्वीकृति दी, वहाँ बन्धन हुआ। जब हमने संसारको कबूल किया, तब बन्धन हुआ। प्रेमी बननेमें हमारी बहुत पुरानी अरुचि है। गुलाम-पराधीन-परवश-परतन्त्र बननेमें हमारी बिलकुल अरुचि है।

एक सज्जन थे। उनको रोज 'उड़िया बाबाजी'का स्वप्न आता था। वह हमको आकर बताते थे कि 'आज उड़िया बाबाजी हमसे यह कह गये। आज यह कह गये।' 'आज यह कह गये' हम उनसे कह देते कि 'अच्छी बात है भाई!' एक दिन आये और हमसे बोले-'आज हमारे स्वप्नमें उड़िया बाबाजी आये थे। वे हमसे कह गये कि उनके पास चले जाओ। वह तुमको सात सौ रुपये देंगे।' अब देखो! रोज तो हम उनके स्वप्न को वाह-वाह करते थे और कहते थे कि 'देखो! तुम्हारे ऊपर उड़ियाबाबाजीकी कितनी कृपा है।

कितनी कृपा है कि तुमको सपना दे देते हैं और तुम्हारे सपने में आते हैं।' हाँ! महाराज! ऐसे कहते थे। अब जब पैसा देने वाली बात आयी, तब मन कुरमुराये। असलमें, हम पहले भी यही मानते थे कि श्रीउड़िया बाबाजीके प्रति उनके प्रेमसे ही उनको सपना आता है। आता है, तो ठीक है। अब जब सात सौ रुपये देनेवाली बात आयी, तब हमने कहा-'देखो! भाई! उड़ियाबाबाजीसे जैसे तुम्हारा प्रेम और श्रद्धा है और वे तुमको सपना देते हैं, वैसे मैं भी तो उनका कोई हूँ। है न? उनका मुझसे भी स्नेह है। मैं भी तो उनका वात्सल्य भाजन हूँ। तुम उनसे कहना-प्रार्थना करना कि जैसे वह तुम्हारे स्वप्नमें आये और तुमसे कह गये कि जाकर उनसे रुपये ले आओ, वैसे वह हमारे स्वप्नमें भी आयें और हमसे भी सपनेमें आकर कहें कि इसको सात सौ रुपये दे दो। जब तक बाबा हमसे नहीं कहेंगे, तबतक हम तुम्हारे सपनेको सच्चा माननेवाले नहीं हैं।' अब ल्यो! बात बदलनी पड़ी न? बिलकुल बदलनी पड़ी। भला! यह है संसारका प्रेम। संसारके प्रेमको स्वीकृति देते ही बन्धनमें पड़ना पड़ता है हो!

यदि आपको जन्म-मरणका जीवन ही पसन्द है, तो आप अब तक कई बार पैदा हो चुके और कई बार मर चुके हैं। मैं पूर्वजन्मकी बात नहीं करता हूँ। आप दिन भरमें सत्रह बार सुखी होते हैं और सत्रह बार दुःखी होते हैं। जब आप अपनेको सुखी मानते हैं, तब आपका जन्म सुखी हो गया। जब आप अपनेको दुःखी मानते हैं, तब आपका जन्म दुःखी हो गया। जब आप अपनेको पापी मानते हैं, तब आपका पापी जन्म हो गया। जब आप अपनेको पुण्यात्मा मानते हैं, तब आपका पुण्यात्मा जन्म हो गया। आप दिन-भरमें कई जन्म ग्रहण करते हैं। जो पापी था, वह अब पुण्यात्मा नहीं है। जो पुण्यात्मा था, वह अब पापी नहीं है। तुम तो एक हो। जिस समय तुमने पापी माना, उस समय तुम पापी नहीं हुए थे। जिस समय पुण्यात्मा माना, उस समय पुण्यात्मा नहीं हुए थे। जिस समय दुःखी माना, उस समय दुःखी नहीं हुए थे। जिस समय सुखी माना, उस समय सुखी नहीं हुए थे। तुम तो एक हो; लेकिन, दिन भरमें अपनेको दस माना। मनमें जो ये मान्यतायें आती हैं और सबसे हम ब्याह करते जाते हैं, सबको मैं-मेरी, मैं-मेरी कबूल करते जाते हैं, इसीका नाम है-बन्धन। ये मान्यतायें तो आती-जाती रहती

हैं। आत्मा बिल्कुल असंग साक्षी एक है। इसका नाम है–मुक्ति। मुक्ति बन्धनका अभाव ही है। अविद्यानिवृत्ति उपलक्षित आत्मा ही मुक्तिस्वरूप है। यदि आत्मासे अलग मुक्ति नामकी कोई चीज पैदा होती है, तो वह मर भी जायेगी। जो पैदा होगी, सो मर जायेगी। यदि बन्धन सच्चा है, तो कभी मिटेगा नहीं। वेदान्तका सिद्धान्त यह है। यदि बन्धन सचमुच है, तो वह कभी मिट नहीं सकता। यदि आत्मा सचमुच मुक्त नहीं है, तो वह कभी मुक्त हो नहीं सकता। इसलिए, सच्ची बात यह है कि आत्मामें बन्धन कभी पैदा हुआ नहीं और मुक्ति कभी होगी नहीं। हमने अपने ऊपर यह जो बन्धनका भूत लगा लिया है–चढ़ा लिया है, उसके निवारणके लिए मुक्तिका मन्त्र फूँकना पड़ता है। मुक्तिकी झाड़-फूँक करनी पड़ती है। आत्मामें बन्धन और मुक्ति–दोनों नहीं हैं।

**निवृत्ति आत्मा मोहस्य ज्ञातत्वे नोपलक्षितः। ज्ञातत्वेन उपलक्षितः आत्मा। मोहस्य निवृत्तिः आत्मा।** मोहकी निवृत्ति–अविद्याकी निवृत्तिका नाम ही आत्मा है। अपने जीवनमें जो यह भूल लगी है, वह अगर मिट गयी, तो बन्धनकी निवृत्ति हो गयी। यदि यह भूल मरते समय मिटी, तो मरते समय बन्धनकी निवृत्ति हुई। यदि यह भूल जीवनकालमें मिट गयी, तो जीवनकालमें ही बन्धनकी निवृत्ति हो गयी। मुक्तिमें कालकी कल्पना नहीं जुड़ती है भला! जीवनकालमें मुक्ति और मरणकालमें मुक्ति–यह भेद शरीरकी दृष्टिसे है। यह भेद वस्तुकी दृष्टिसे नहीं है। इसलिए, दृष्टि-सृष्टिवादियोंने जीवन्मुक्तिको स्वीकार नहीं किया। वे तो मुक्तिको भी स्वीकार नहीं करते हैं। यह अपना स्वरूप ही मुक्त है। आभासवादी कहते हैं कि एक बार आभासमें तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति होती है और अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है। आभास तो शरीरमें है। जबतक अन्तःकरण रहेगा, तबतक आभास भी रहेगा। आभासमें घटज्ञान-पटज्ञान-मठज्ञान माने घटाकारवृत्ति-पटाकारवृत्ति-मठाकारवृत्ति उदय होती रहेगी। अहं ब्रह्म जानामि–यह वृत्ति तो उदय नहीं होगी। अहं घटं जानामि–यह वृत्ति उदय होगी। अहं ब्रह्म जानामि–यह वृत्ति तो केवल एक बार महावाक्यसे पैदा होती है और अविद्या-निवृत्तिके साथ-साथ निवृत्त होती है। मैं घड़ीकी तरह ब्रह्मको देख रहा हूँ अथवा जान रहा हूँ–यह

वेदान्तका सिद्धान्त नहीं है। मैं ब्रह्मको नहीं जानता—इस अज्ञानको मिटानेके लिए एक बार बनावटी वृत्ति पैदाकी जाती है। इसीसे वह वाक्यजन्य है। जब वह बनावटी वृत्ति पैदा हो जाती है, तब अपनी ब्रह्मता अनुभवस्वरूप है। उसमें न अनुभविता है और न अनुभाव्य। अब इस अखण्ड जीव-ब्रह्ममें यह जीवनकाल कल्पित है।

ऐसे कहो कि जीवन्मुक्ति भी स्वदृष्टिसे नहीं है। शिष्यदृष्टिसे ही जीवन्मुक्ति है। उस जीवन्मुक्तके शिष्योंके अतिरिक्त और कोई उसको जीवन्मुक्त नहीं मानता है। जो उसके प्रति श्रद्धालु होते हैं, वे उसको जीवन्मुक्त मानते हैं। दूसरे लोग तो उसको बेईमान मानते हैं—ढोंगी मानते हैं—दम्भी मानते हैं। जीवन्मुक्त कहता है—**गुंजापुंजादि दध्येत् नान्यारोपित वह्निनः नान्यारोपितसंसारधर्मानेवमहम् भजे।** कोई घुमचीके दानेको आग समझ ले, तो उससे घुमचीका दाना जलता नहीं है। मैं तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त ब्रह्म तत्त्व हूँ। यदि कोई मुझे संसारी समझ लेता है, तो उसके समझनेसे मैं नहीं जलूँगा। वही जलेगा। जो जैसा समझेगा, वैसी उसकी गति होगी। भाई देखो! बात यह है। आकाशमें धुआँ आता है, धूल आती है, बादल आते हैं। आहा! हमारी आँखसे धुआँ भी दिखता है, धूल भी दिखती है, बादल भी दिखते हैं। है न? हाँ! लेकिन, क्या वह आकाशसे चिपकनेवाली कोई चीज है? नहीं। जो अपने स्वरूपको ठीक-ठीक जानता है, वह शरीरके साथ नहीं चिपकता। दुनियादारोंकी दृष्टिमें दीखनेवाला जो उसके शरीरका व्यवहार है, वह उसके साथ नहीं चिपकता। जो **अन्तरव्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते।** यह तो योगवासिष्ठका श्लोक है। अब गीताका श्लोक उद्धृत करके बताते हैं। आधा गीताका और आधा अपना। **यस्य नाऽहं कृतो भावो**—यह जिन्दाका वर्णन है कि मुर्दाका? आप बताओ!

**यस्य नाऽहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।**
**हत्वाऽपि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।**

देखो! जो केवल शरीरको मानता है, वह यदि यह माने कि शरीरसे परे एक आत्मा होती है और मरनेके बाद वह भूत हो जाती है, तो इस मान्यतासे उसका देहाभिनिवेश घटेगा हो। पितृयोनि प्राप्त होती है—इस

उपदेशसे भी देहाभिनिवेश समाप्त होगा। देवयोनि होती है-यह उपदेश भी देहाभिनिवेशको घटायेगा। है न? वह तो जैसा रोग, वैसी दवा। जहाँ तुम्हारी मनोवृत्ति बँधी हुई है, वहाँसे उसे छुड़ाना है। जिस अध्यारोपमें तुम बँधे हुए हो-भूतमें, पितरमें, देवतामें, ऋषिमें, लोकान्तरमें-उस अध्यारोपका अपवाद करना है। **अध्यारोपा वादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चयते।** यह अध्यारोप-अपवादकी युक्ति है।

आपको एक घटना सुनाता हूँ। आहा! दादाजी यहाँ बैठे ही हुए हैं। डाक्टरने हमसे जो कहा था, सो बताते हैं। एक बार दादाजीको यह ख्याल हो गया था कि उनका लीवर बहुत बढ़ गया है अथवा बहुत खराब हो गया है। उनकी दवा भी कोई मामूली नहीं हुई भला! बड़े-बड़े डाक्टरोंकी दवा हुई। वैद्योंकी दवा हुई। दादाजीका लीवर अच्छा ही न हो। 'जे. के.' वाले फ्रांस गये थे। वे वहाँसे लीवरकी दवा ले आये। फिर भी अच्छा नहीं हुआ। मूली खाओ। दही खाओ। क्या खाओ और क्या नहीं खाओ-यह सब बरसों तक चला। लीवरकी समस्या ज्यों-की-त्यों रही। मथुराके सरकारी अस्पतालमें एक डाक्टर था। उसका नाम था-'डॉ०माथुर'। उस समय वह Assistant Surgeon था। वह हमारे पास सत्संगके लिए आता था। जब उसको ज्ञात हुआ कि दादाजीको यह ख्याल हो गया है कि उनका लीवर बहुत खराब हो गया है और अनेकानेक उपचारों और परहेजोंके करनेके बाद भी कुछ फरक नहीं पड़ा है, तब उसने कहा कि 'आप चिन्ता मत करो। हम दादाजीको बिलकुल अच्छा करेंगे। हाँ!' आहा! उसने दादाजीका पेट-वेट दबाकर सब अच्छी तरहसे देखा-परखा। अब इलाजके तौरपर उसने दादाजीको इंजेक्शन लगाना शुरू किया। हर तीसरे दिन मथुरासे आकर इंजेक्शन लगाता था। दो महीने तक उसका इलाज चलता रहा। उसके बाद उसने पास कर दिया कि अब दादाजीका लीवर बिलकुल ठीक है। दादाजीको भी यह अनुभव हुआ कि उनका लीवर अब बिलकुल ठीक हो गया। अब उसके एकाध या दो वर्ष बादकी यह बात है। हम भागवतका सम्पादन करनेके लिए गोरखपुर गये। वहाँ हमें डॉ० माथुर मिला। वह सिविल सर्जन होकर मथुरासे गोरखपुर Transfer हो गया था। अतः बीचमें मिला नहीं था। जब गोरखपुरमें

मिला, तब अपने घरमें रातको खानेके लिए ले गया। हम, दादा और सब लोग उसके घरमें रातको खानेके लिए गये। हमने कहा–'भाई! तुमने तो दादाका लीवर अच्छा कर दिया। बड़ी सेवा की।' पैसा-वैसा तो लेता नहीं था। दवा भी अपने घर ले आता था। उसने हँसकर बताया–'स्वामीजी! दादाके लीवरमें कोई खराबी नहीं थी; लेकिन, इनको यह संविद् बैठ गयी थी कि मेरा लीवर खराब है। उस संविद्को दूर करनेके लिए मुझे दो महीने तक मेहनत करनी पड़ी। मैं इनको केवल (Distilled water injection) लगाता था। मैंने और कोई दवा नहीं दी। अगर उस समय मैं यह कह देता कि दादाका लीवर बिलकुल ठीक है, तो दादा मानते ही नहीं; क्योंकि, बड़े-बड़े डॉक्टर और वैद्य चिकित्सा कर चुके थे। बड़ी-बड़ी दवायें और उपचार-परहेज हो चुके थे। उस समय यह सोचते कि यह डॉ० माथुर किस खेतकी मूली है, जो कहता है कि लीवरमें खराबी नहीं है। है न? इसलिए, मैंने कहा–हाँ! हाँ! लीवरमें बहुत खराबी है और मैं दादाका इलाज करूँगा। असलमें, दादाका ख्याल बदलनेके लिए–दूसरा ख्याल पैदा करनेके लिए मैंने यह Distilled Water का इंजेक्शन दो महीने तक लगाया। रोगीको यदि यह निश्चय हो गया हो कि मैं रोगी हूँ, तो उस संविद्को बदलनेके लिए हमको यह परिश्रम करना पड़ता है। हमको डॉ० माथुरने ऐसे ही बताया भला! महाराज! ये महात्मा लोग भी तुम्हारी संविद्को बदलनेका प्रयास-परिश्रम करते हैं। है न? हाँ! तुम जिस चीजको पकड़कर बैठ गये हो, उस चीजकी पकड़में वे पहले तुम्हारी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं और फिर धीरे-धीरे तुम्हारी पकड़को ढीला करवाकर छुड़वा देते हैं। यह महात्माओंकी संविद् बदलनेकी युक्ति है।

अच्छा! देखो! तुम्हारी दृष्टिमें कारण-कार्य घुसा हुआ है। तुम सोचते हो कि ऐसा करनेसे ऐसा हुआ और ऐसा करनेसे ऐसा हुआ। तुम सोचते हो कि ऐसा करनेसे ऐसा होगा और ऐसा करनेसे ऐसा होगा। डॉक्टर एक-एक करके तुम्हारे कारणको हटाता जाता है और दृष्टिमें निदान देता है। तुम कहते हो–'मुझे यह रोग है।' डॉक्टर कहता है–'देखो! तुम अपना पिशाब जाँच कराओ। तुम्हारे पिशाबमें कुछ खराबी होगी।' आपने जाँच करायी। कोई खराबी नहीं निकली। 'अच्छा! तब टट्टीकी

जाँच कराओ।' जाँच करायी। कोई खराबी नहीं। 'अच्छा! तब खूनकी जाँच कराओ।' जाँच करानेपर कोई खराबी नहीं निकली। 'अच्छा! तब थूकमें होगी। उसकी जाँच कराओ।' ठीक है। कोई खराबी नहीं है। 'अच्छा! गलेमें कुछ खराबी होगी। उसकी जाँच कराओ।' गला भी ठीक है। 'अच्छा! अब कलेजेमें वह सफेद दवा डालो।' सफेद दवामें भी कुछ खराबी नहीं निकली। 'अच्छा! अब रंगीन दवा डालो।' रंगीन दवामें भी कुछ खराबी नहीं निकली। 'अच्छा! यह ठीक है। तब कुछ और बात होगी। है न? अब और बात क्या होगी भला! अरे भाई! कारण तो कुछ नहीं मिला।' अब डाक्टरकी समझमें आ जायेगा कि अब चाहे कोई भी दवा इनकी कर दी जाये, यह ठीक हो जायेंगे। है न? संविद्‌को ही तो बदलना है। रोग तो कोई है नहीं और निश्चय कर लिया कि मैं रोगी हूँ। अब यह ख्याल ही तो बदलना है। यदि पहलेसे ही उसको कह दो कि 'तुम बिलकुल ठीक हो; तुम्हें कोई रोग नहीं है; यह तुम्हारी मानसिक निर्बलता है। तुम नर्वस हो गये हो; तो, काम नहीं चलता है। नर बसको 'नर्वस' बोलते हैं हो। नरस्य सेविका नर्स। रोगी नरकी सेविका होनेसे इसका नाम 'नर्स' होता है। नर्वस कहनेसे काम नहीं चलता है। वह तो कहेगा कि यह डॉक्टर हमको पागल बोल रहा है। इसलिए, डॉक्टर अध्यासको क्रम-क्रमसे स्वीकार करता जाता है और क्रम-क्रमसे उस अध्यासको मिटाता जाता है और, इस प्रकार, दृष्टिमें निदान देता है। महात्मा भी यही युक्ति करता है। अध्यासको क्रम-क्रमसे स्वीकार करते जाना और फिर उसको क्रम-क्रमसे मिटाते जाना। बुद्धिमें जो-जो गलती है-समझमें जो-जो गलती है, उसको पकड़-पकड़ कर बाहर निकालना। हाँ! पहले उसका समर्थन करना-स्वीकार करना और उसका निराकरण करना-निदान करना। यही अध्यारोप-अपवादकी युक्ति है भला!

अच्छा! देखो! अन्नमयकोषमें तुम अन्नमयकोष नहीं हो। जो चैतन्य है, सो हो। ल्यो! पहली बात हो गयी। प्राणमय कोषमें तुम प्राण नहीं हो। जो चैतन्य है, सो तुम हो। जो शरीरमें चैतन्य है, वही प्राणमें चैतन्य है। अरे! तुम मनोमयकोष नहीं हो। तुम तो चैतन्य हो। अन्नमय-प्राणमय-मनोमयकोषमें जो चैतन्य है, वही तुम हो! लो! जब अन्नमयकोषमें बैठते

हैं, तब द्रव्य चाहिए भला! वस्तु चाहिए हो! जब मनोमयकोषमें बैठते हैं, तब अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिए शक्ति चाहिए। देखो! काम! इसको काम बोलते हैं। जब विज्ञानमयकोषमें बैठते हैं, तब बुद्धिमें बैठते हैं। हाँ! धीरे-धीरे भीतर चलते चलो। जब सुखमें बैठते हैं, तब आनन्दमें बैठते हैं। छोड़ो इनकी कल्पनाओं को। उस समय भी तुम चैतन्य हो। भोक्ता होकर बैठ गये हो। अरे नहीं। तुम यह सब कुछ नहीं हो। तुम तो साक्षी हो। ठीक है। तुम ऐसे साक्षी हो, जो कभी खण्डित नहीं हो सकता है। तुम अखण्ड साक्षी हो। तुम ऐसे साक्षी हो, जो देश-काल-वस्तुसे खण्डित नहीं होता है। ठीक है। तुम ऐसे साक्षी हो, जिसमें दूसरी चीज ही नहीं है। है न? उसमें यह क्रम होता है। असलमें, दूसरेके कामको अपने ऊपर थोप लेनेका यह नतीजा है। इसमें बहुत सावधान रहनेकी जरूरत है; नहीं तो, गुलामीके सिवाय और कुछ मिलनेवाला नहीं है। बन्धन जिसको बोलते हैं न!

बन्धन माने गुलामी। रस्सीसे बाँधनेका नाम बन्धन नहीं है। बन्धन क्या है? किसी वस्तुका गुलाम हो जाना। किसी व्यक्तिका गुलाम हो जाना। अपने मनका गुलाम हो जाना। है न? यह खुद तो गुलाम है और हमको गुलाम बनाने चला है। है न? ऐसे उसको डाँट दो। यह चौकीदार होकर कोतवालको अपने वशमें रखना चाहता है। है न? आहा! तो छोड़ो। दो ही बात हो सकती है। धर्मकी दृष्टिसे इसको डाँट-डपटकर रोकना। धृति, धर्मको पकड़ना। यह धर्मकी दृष्टि हुई। मालिकके घरमें भेज देना-ईश्वरके घरमें भेज देना। भाई! तुम हमारे काबूमें नहीं रहते हो, तो ईश्वरके घरमें चले जाओ। यह दूसरी दृष्टि हुई हो। यह भक्तिकी दृष्टि हुई। अपने आप ही डाँटकर-पीटकर काबूमें कर लेना-यह धर्मकी दृष्टि है। उसमें धर्माधर्मका विभाग होता है। इसको अपनेसे बड़े के घरमें-जिसके काबूमें वह रह सके-भेज देना। यह दूसरी दृष्टि हुई। तीसरी दृष्टि यह हुई कि बिलकुल निकाल दिया जाय। अपने घरसे ही निकाल दिया। निकाल देना माने यह नहीं कि मन रहेगा ही नहीं। निकाल देना माने उससे अपना सम्बन्ध नहीं मानना। है न? उससे जो लगाव है, वह हटा देना। अलग हो जाना।

'अलग' शब्द संस्कृतका है। यह अलगनसे भी ठीक है। जो लग्न न

हो, सो अलगन। लग्नबन्द होती है, तो लगन हो जाते हैं कि नहीं? पति-पत्नी लग्न कब होते हैं? हम लग्न कब होते हैं? जब लगन होती है। है न? अलग। न लगति। संस्कृतमें लग धातु है। इति अलग कित् प्रत्यान्त रूप है। नारायण! इसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे मेलेमें घूमते हुए आदमियोंके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है। जैसे बाजारमें रखे हुए सोने-चाँदी-हीरेसे अपना कोई सम्बन्ध है? जौहरीकी दूकानपर हजारों हीरे दिख रहे हैं; लेकिन, उससे अपना कोई रिश्ता-नाता है? हीरे तो हैं; परन्तु, अपना रिश्ता नहीं है। आहा! हीरा जौहरीका है, तो फिर, चाहे वह हीरा बेचे अथवा अपने घरमें रखे अथवा दूकान परसे उठाकर बाहर रास्तेपर फेंक दे। वह चाहे जो करे। हमारा कोई मतलब नहीं है। आहा! वह तो जब हम हमारा मानेंगे, तब उसमें तकलीफ होगी। बन्धन क्या है? मैं-मेरा।

**यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वाऽपि स इमान् लोकान्। कुर्वतोऽकुर्वतो वाऽपि स जीवन्मुक्त उच्यते।** यह आधा श्लोक योगवासिष्ठका है और आधा गीताका है। योगवासिष्ठमें गीताका वर्णन है हो। दो अध्यायोंमें गीताके तात्पर्यका वर्णन है कि श्रीकृष्णने अर्जुनको यह सुनाया है। गीताके अठारह अध्यायोंका सार योगवसिष्ठके दो अध्यायोंमें है। भागवतमें तो कई जगह गीताकी चर्चा है। आप देखो! गीतामें एक जिन्दा आदमीका वर्णन है। **ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा।** यह आत्माका वर्णन नहीं है। यह जिन्दा मनुष्यका वर्णन है। **कूटस्थो विजितेन्द्रियः युक्त इत्युच्यते योगी।** बोले-समाधिमें होगा। बोले-नहीं। **समलोष्टाश्मकाञ्चनः।** उसके सामने पत्थरके टुकड़े हैं। उसके सामने मिट्टीके डले हैं। उसके सामने सोना है। वह तीनोंको देख रहा है। माने व्यवहारमें स्थित है। यह जिन्दा आदमीका वर्णन है हो। **विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।** यह जिन्दा आदमीका वर्णन है कि मुर्दाका? यह जिन्दाका वर्णन है हो!

**यस्य नाहं कृतो भावो।**

जब मनुष्य कोई काम करता है, तब उसके मनमें यह ख्याल आता है कि 'मैंने यह काम किया।' वह अपने साथ कर्मका सम्बन्ध जोड़ लेता है। यह बात करनेमें ही नहीं होती है बल्कि छोड़नेमें भी यह बात होती है भला!

यह थोड़ी-सी बारीक बात है। हमारे एक मित्र थे। वह डबल एम. ए. पास थे। उनके ऊपर 'मालवीयजी'की बड़ी कृपा थी। एक बार मैं कहीं व्याख्यान दे रहा था। जब मैं संन्यासी नहीं हुआ था, तबकी बात है। उस समयके मित्रकी चर्चा कर रहा हूँ। उस व्याख्यानमें मैंने सनातन धर्म और संस्कृतिकी दृष्टिसे काशी विश्वविद्यालयकी थोड़ी-सी आलोचना कर दी। मैंने कहा कि 'इस विद्यालयको बनानेके पीछे मालवीयजीका संकल्प था कि जब प्रातःकाल सूर्योदयके समय दस हजार विद्यार्थी गंगास्नान करके, सिरपर चन्दन लगाके, सूर्यको अर्घ्य देनेके लिए गंगाके किनारे खड़े होंगे, तब हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृतिकी समुचित रक्षा होगी और संवर्धन होगा। लेकिन, आज विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंके लिए चोटी रखना, स्नान करना, सन्ध्यावन्दन करना, अर्घ्य देना पाप हो गया है।' ऐसी आलोचना मैंने एक बार कर दी। अब वह हमारे मित्र उसी विश्वविद्यालयके डबल एम.ए. थे। वह उठकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा-'मैं वहाँका एक नमूना हूँ। देख लो। विश्वविद्यालयमें मालवीयजीका संकल्प बिलकुल पूरा हुआ है।' मैं तो चुप हो गया महाराज! है न? मेरी ओरसे फिर 'हनुमानप्रसादजी' बोले। उन्होंने बड़े ढंगसे सब समाधान किया। हम लोग आपसमें कभी-कभी ऐसे बाँट लेते थे। समाधान हो जाता था। 'पण्डितजी'ने 'गाँधीजी'का खण्डन किया गाँधीजी वहाँ बैठे थे। 'देवनायकाचार्य'ने खण्डन किया, तो मालवीयजीने गाँधीजीके सामनेसे अपने आप लाउडस्पीकर ले लिया। बोले-'मैं बोलूँगा।' मालवीयजीको तो गाँधीजीकी तारीफ करनी थी न! वह महाराज! आपको क्या बतायें? बस! आपसमें इस प्रकार बाँट लेते थे और समयपर ठीक-ठीक समाधान हो जाता था।

अब हम आपको एक बात सुनाते हैं। एक दिन बातचीत करते हुए वही सज्जन बोले कि 'मैंने एम. ए.का सर्टिफिकेट फाड़कर गंगाजीमें फेंक दिया और अब मेरे अन्दर एम. ए.पनेका अभिमान नहीं है।' हम लोग मित्र-मित्र थे। साथ-साथ रहते थे। मैं था। 'पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्दे' थे। 'नन्ददुलारे बाजपेयी' थे। वह उज्जैन विश्वविद्यालय-विक्रमविश्व विद्यालयके कुलपति थे। 'वहाँ उन दिनोंमें 'राजबली पाण्डेय' थे, जो बादमें जबलपुर विश्वविद्यालयके उपकुलपति हुए। हम लोग साथ-ही-साथ थे।

नारायण! जब उन्होंने कहा कि 'मैंने एम. ए.का सर्टिफिकेट फाड़कर फेंक दिया है,' तब मैंने कह दिया कि 'अरे भाई! किसी तरहसे एम. ए. पास कर लिया था। यदि सर्टिफिकेट फाड़कर फेंक दिया, तो क्या आश्चर्य कर दिया?' मैंने ऐसे कह दिया हो। सब लोग बराबरीके थे। अरे! 'किसी तरहसे एम. ए. पास कर लिया था'–यह सुनते ही वह तो आगबबूला हो गये–बिलकुल गर्म हो गये। गर्देजी हँसे। हम लोगोंमें सबसे बड़े-बूढ़े वही थे। उन्होंने कहा–'सर्टिफिकेट गंगाजी में कहाँ फेंका? वह तो अभी तुम्हारे कलेजेमें गड़ा हुआ है। अगर सचमुच फेंक दिया होता, तो इसमें नाराज होनेकी क्या बात थी? नाराज होनेकी तो कोई बात ही नहीं थी।' **यस्य नाऽहं कृतो भावः।**

ग्रहणका भी अहंकार होता है और त्यागका भी अहंकार होता है। विक्षेपका भी अहंकार होता है। मैं कैसा बढ़िया नाच लेता हूँ–यह किस बातका अहंकार है हो? मैं बहुत बढ़िया ताली बजा लेता हूँ। मैं सबसे ज्यादा उछल-कूद लेता हूँ–यह किस बातका अहंकार है? मैं समाधि लगाकर शान्त बैठ लेता हूँ–यह किस बातका अहंकार है? विक्षेप और शान्ति–दोनों अन्तःकरणकी ही अवस्थायें हैं। द्रव्यकी प्रधानतासे संग्रहका अभिमान होता है। क्रियाकी प्रधानतासे कर्मका अभिमान होता है। उदारताकी प्रधानतासे या प्यारकी प्रधानतासे मनका अभिमान होता है। विचारकी प्रधानतासे बुद्धिका अभिमान होता है। शान्तिकी प्रधानतासे समाधिका अभिमान होता है। यह सब अहंकृत भाव हैं भला! ग्रहणमें भी अभिमान और त्यागमें भी अभिमान। जबतक परिच्छिन्नताका अहंकार नहीं छूटेगा, तबतक परिच्छिन्नतामें मैं-पना जुड़ा हुआ है। परिच्छिन्नता माने दृश्यकी नहीं। तुम परिच्छिन्नताके द्रष्टा हो कि नहीं? जब तुम परिच्छिन्नताके द्रष्टा हो, तब परिच्छिन्नताके अत्यन्ताभाववाले तुममें परिच्छिन्नता भास रही है। इसलिए, परिच्छिन्नता मिथ्या है। परिच्छिन्नमें जो अहंभाव है, वह अज्ञानका खेल है।

हमारे पास इतना पैसा है–यह एक अभिमान है। हमने इतने काम किये हैं–यह अभिमान है। हमारे पास इतना भोग है–यह अभिमान है। हमारे पास इतनी योजनायें हैं–यह अभिमान है। लोग दिखाते हैं–हमारी यह

योजना है—यह योजना है-यह योजना है। योजनावाले तो हमारे पास ऐसे-ऐसे आते हैं हो। उनकी संस्था अखिल विश्वसे तो कम होती ही नहीं है। वे विश्वको अपनी जेबमें रख करके डोलते हैं। उसका कागज लाते हैं कि हम दुनियाको ऐसे सुधारेंगे। यह देखो! क्या बढ़िया बात है? मनमें योजनायें रहती हैं। उनसे मैं एक हो गया। हमारे विचार कितने ऊँचे हैं! हम कितनी देरतक शान्तिसे बैठ सकते हैं। यह सब अभिमान होता है। जो इन सब अभिमानोंसे छूट गया और **बुद्धिर्यस्य न लिप्यते**, वह जीवन्मुक्त महापुरुष हो गया। हाँ!

लिप्यतेका क्या अर्थ है? यह कि मैं आगे यह-यह करूँगा। बुद्धि कहती है कि ये चीजें बड़ी अच्छी-अच्छी हैं। ये चीजें बड़ी अच्छी-अच्छी हुई हैं। ये चीजें बड़ी अच्छी-अच्छी हो रही हैं। आगे यह-यह और अच्छा-अच्छा करूँगा। यह बुद्धिका लेप हो गया। यदि अहंकार और बुद्धिका लेप छूट गया, तो चाहे करो और चाहे मत करो। **कुर्वतोऽकुर्वतो वाऽपि।** कर्ममें और कर्माभावमें—दोनोंमें समता आगयी हो। हम शान्तिसे बैठेंगे कि विक्षेपमें रहेंगे-इससे कोई मतलब नहीं। शान्ति और विक्षेप-दोनों चित्तकी अवस्थायें हैं।

अच्छा! अब हम आपको और एक बात बताना चाहते हैं। वह हम आपको कल बतायेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

## 18

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

जीवन्मुक्तके लक्षणमें एक बात आप यह देखेंगे कि उसका दृष्टिकोण बड़ा विशाल है। जैसे देखो! यदि ब्राह्मणपनेका अभिमान जल जाये, तो सरयूपारी, कान्यकुब्ज, सनाढ्य, गौड़, द्रविड़–ये सब भेदभाव दुःखद नहीं होंगे! ब्राह्मणत्व सामान्यसे सबके साथ ममता होती है। अच्छा! यदि वैदिकत्व सामान्यका अभिमान जग जाये कि हम वैदिक हैं, तो शंकर-रामानुज-निम्बार्क-सब वेदपर श्रद्धा करते हैं और वेदका नाम लेते हैं। आर्यसमाजी-सनातन धर्मी-सब वेद ही तो मानते हैं। सब वैदिक हैं। अच्छा! यदि हिन्दूपनेका अभिमान जाग्रत् हो जाये, तो जैन-बौद्ध-वैदिक-सब एक हो जायेंगे। अच्छा! यदि मानवताका अभिमान जग जाये, तो ईसाई-मुसलमान-हिन्दू सब एक हो जायेंगे। यदि भारतीयताका अभिमान जग जाये, तो दूसरे प्रान्तसे जो द्वेष है, वह मिट जायेगा। अच्छा! यदि एक ब्रह्माण्डका अभिमान जग जाये तो उस ब्रह्माण्डमें किसीसे द्वेष नहीं होगा, भले ही दूसरे ब्रह्माण्डोंसे द्वेष हो। आप इस बातपर ध्यान दीजिये कि दृष्टिकोणकी विशालताके कारण कैसे राग-द्वेष मिटता है? यह उदाहरण बताया है–दृष्टिकोणकी विशालताका।

अब देखो! हमारी विशालता जो है न, वह कहाँसे प्रारम्भ होती है? यह ब्राह्मण होना-वैदिक होना-हिन्दू होनेसे? हिन्दू वैदिक-अवैदिक दोनों होते हैं हो। आस्तिक-नास्तिक दोनों होते हैं। बौद्ध-जैन सब हिन्दू हैं अच्छा! मानव होनेसे? मानव तो सब हैं। मानवता ईसाई और मुसलमानको कहाँ छोड़ती है अच्छा! यह हुई जाति सामान्य। सामान्य–एक समानता। देखो! समानताका दृष्टिकोण जितना बड़ा होगा, उतना ही आपके अन्तःकरणका राग-द्वेष कम होगा। अच्छा! यहाँसे भी हमारा वेदान्त शुरू नहीं होता है। प्रान्त-राष्ट्र और ब्रह्माण्ड–यहाँ से वेदान्त शुरू नहीं होता है। ब्राह्मण और हिन्दूसे भी हमारा वेदान्त शुरू नहीं होता हे। वेदान्त जो है, वह वैदिक-अवैदिकसे शुरू नहीं होता है।

हम आपको सही बात बताते हैं। मैं मिट्टी हूँ। एक ब्रह्माण्ड नहीं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें जो मिट्टी है, वह मैं हूँ। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें जो रस है-जल है, वह मैं हूँ। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें जो तेज है, सो मैं हूँ। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें जो वायु है, सो मैं हूँ। यह तात्त्विक दृष्टि इस ढंगसे शुरू होती है। यह आप लोगोंका जो है न--हिन्दूत्व है। मानवता है। मानवता है—व्यक्ति-सामान्य। एक तरहकी शकल वाले आदमियोंको देख करके मानवता है। मैं वह नहीं, जो एक-एक जगह मिट्टी ठोस होकरके ब्रह्माण्ड बन गयी है। मैं वह नहीं हूँ। हाँ! मैं तत्त्व हूँ। तत्त्व किसको कहते हैं? आप तत्त्वपर ध्यान देना। किसी आकारका आरोप किये बिना जो सत्ता होती है, उसको तत्त्व कहते हैं। इसका माने यह है कि घड़ेका आकार, अंगूरका आकार, आमका आकार, सकोरेके आकारमें आकारको मत देखो। उसमें जो माटी है, उसको देखो। आहा! यह आईस्क्रीम है। यह बर्फ है। यह लाल रंगका पानी है। यह पीले रंगका पानी है। यह मत देखो, सबमें पानी है—यह देखो।

इस तरहसे, तात्त्विक दृष्टि जो है, वह तत्त्वका लक्षण है। लक्षण माने पहचान। लक्षण माने लखानेवाला। जिस असाधारण धर्मसे वह वस्तु लखी जाती हो, उसको लक्षण कहते हैं। जिसमें शकल-सूरतें अनेक बन जायें और मिट जायें; लेकिन, वह धातु ज्यों-की त्यों रहे, उसको तत्त्व कहते हैं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिस मृत्तिकामें बनते हैं, वह मृत्तिका मैं हूँ। कोटि-कोटि समुद्र जिस जलमें उमड़ते हैं, वह जल मैं हूँ। यह इतनी गर्मी है। थर्मामीटरसे गर्मी नापते हैं न! थर्मामीटरसे डिग्रीमें जो गर्मी नापी जाती है, उस डिग्रीके नापके बिना जो गर्मी है, वह तैजस तत्त्व मैं हूँ। आहा! वह वायु मैं हूँ, जो मुर्देको भी नहीं छोड़ती है। साँस तो वह चीज है, जो मुर्देको छोड़ देती है। मैं वह वायु हूँ जो मुर्देको भी नहीं छोड़ती है। जो मार्तण्डको भी नहीं छोड़ती है; जो मृत अण्डको भी नहीं छोड़ती है; जो ब्रह्माण्डके प्रलयको भी नहीं छोड़ती है, वह वायु मैं हूँ। वह आकाश मैं हूँ। वह प्रकृति मैं हूँ। वह ईश्वर मैं हूँ। वह ब्रह्म मैं हूँ।

अब देखो! यह दृष्टिकोणकी विशालताकी अन्तिम अवधि है। संस्कृत भाषामें इसको बोलते हैं—निरतिशय। निरतिशय माने क्या होता है?

अब देखो! सबके बीचमें बोलते हैं। जीवन्मुक्तिकी दृष्टि निरतिशय है। उसकी दृष्टिसे सृष्टिको देखना निरतिशय होना है। जीवन्मुक्तिकी निरतिशय दृष्टि में प्रान्ताभिमान-राष्ट्राभिमान-ब्रह्माण्डाभिमान नहीं है हो। उसमें वर्णाभिमान-आश्रमाभिमान-हिन्दूत्वाभिमान-मानवत्वाभिमान नहीं है। असलमें, उसमें पृथिवीत्व-जलत्व-अग्नित्व-वायुत्व-आकाशत्व आदि भी नहीं है। ऐसी अखण्ड वस्तुसे अपनी सिद्ध एकताका जो बोध है, यह दृष्टि की विशालता है। यह दृष्टिकोण नहीं है। यह दृष्टि है भला! ब्रह्मदृष्टि जो है, तत्त्वदृष्टि जो है, वह दृष्टिकोण नहीं है। वह दृष्टि है।

**अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे**
**समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतं विवर्जितः।**

कोई अद्वैतवादी होते हैं और कोई द्वैतवादी होते हैं; लेकिन, तत्त्व जो द्वैतवादी में है, वही अद्वैतवादीमें है। जीवन्मुक्तका यह विशाल दृष्टिकोण है। वादी चाहे द्वैतवादी हो अथवा अद्वैतवादी, वादी तो रोग है। है न? जब शरीरमें बादी बढ़ जाती है, तब रोग होता है। बादीपना तो रोग है। जीवन्मुक्तकी दृष्टिसे विशाल और कोई दृष्टि नहीं है। उसके लिए नरक कैसा है? मैं उसका उदाहरण बता देता हूँ। कहेंगे—'स्वामीजी नरकका वर्णन करते हैं।' जैसे आपके शरीरमें मलस्थान है, मूत्रस्थान है और आप उसको मैं-मैं करनेमें कभी भी संकोच नहीं करते हैं, वैसे जीवन्मुक्तकी विशाल दृष्टिमें नरकस्थान है। जैसे एक देहाभिमानीके शरीरमें मलस्थान-मूत्रस्थान है और वह उसको मैं कहनेमें नहीं सकुचाता है, वैसे ब्रह्मदृष्टिकी विशालता है। तो फिर, क्या होनेसे आपको हर्ष होता है और क्या होनेसे विषाद होता है? आप देखो!

अब आओ! व्यक्तिगत जीवनके क्षेत्रकी बात करते हैं। आप दृष्टिकी विशालतामें हैं न? कोई सर्वहारा वर्गका प्रतिनिधि होता है। कोई पूँजीपति वर्गका प्रतिनिधि होता है। कोई द्वैतका प्रतिनिधि होता है। कोई विशिष्टाद्वैतका प्रतिनिधि होता है। कोई महावीर-प्रवर्तित धर्मका प्रतिनिधि होता है। कोई बुद्ध-प्रवर्तित धर्मका प्रतिनिधि होता है। कोई ईसा-प्रवर्तित धर्मका प्रतिनिधि होता है। कोई मोहम्मद-प्रवर्तित धर्मका प्रतिनिधि होता है। हाँ! आप लोग एक-एक जिलेसे चुनकर आये हैं भला! राष्ट्रपतिका चुनाव सारे भारतराष्ट्रसे होता है। आहा! ईश्वरका चुनाव कोटि-कोटि

ब्रह्माण्डोंकी ओरसे होता है। परब्रह्म परमात्मा चुनाव किया हुआ नहीं है। वह चुना हुआ नहीं है। वह स्वतः सिद्ध सर्वाधिष्ठान और सर्वावभासक है।

अब व्यक्तिगत जीवनकी बात करते हैं। जीवन्मुक्ति ल्यो! यह तत्त्वकी बात नहीं है। यह व्यक्तिगत जीवनकी बात है। कितनी विशालताको समझ करके आपका दृष्टिकोण है–उसकी ओर ध्यान दीजिये। पहली बात तो यह है कि एक तो होते हैं–निकम्मे व्यक्ति, अकर्मण्य व्यक्ति। वह मूढ़ होते हैं हो! अपने शरीरको सुख पहुँचानेके लिए उनमें अहंकारका भाव होता है। अच्छा! हम आपको एक बात सुनाते हैं। माफ करना। यदि हमारा कपड़ा इतना साफ नहीं होगा तो हमें बड़े आदमियोंमें बैठनेकी जगह नहीं मिलेगी। यह कपड़ेकी विशेषतासे अपनेमें अभिमान है कि नहीं? इसीको अध्यास बोलते हैं। इसीको अध्यारोप बोलते हैं। कपड़ेकी सुन्दरतासे हम सुन्दर होते हैं–यह कपड़ेके सौन्दर्यको अपने सौन्दर्यपर आरोपित करना है। हाँ! लिपस्टिकसे हम सुन्दर होते हैं। स्नोसे हम सुन्दर होते हैं। पाउडरसे हम सुन्दर होते हैं। यह लिपस्टिक-स्नो-पाउडरके सौन्दर्यको अपने सौन्दर्यपर थोप दिया। ऐसे रहेंगे, तो हम सुन्दर होंगे। ऐसे रहेंगे, तो हम असुन्दर हो जायेंगे। यह बाहरी चीजोंका अध्यास है। अध्यास माने जो चीज मैं नहीं हूँ, उस चीजको अपने साथ जोड़कर उसकी विशेषतासे विशेष बनना। पैसेसे बड़ा बनना। कपड़ेसे बड़ा बनना। अब यह देखो! लँगोटी पहने, धूलमें लेटा हुआ दुनियाको दिखा रहा है–दुनियाका आदर्श हो रहा है। इससे लोगोंके चित्तकी वासना घटती है–कम होती है। अब तो महाराज! आपको क्या बतावें?

हमने कल कहीं 'जोक' (Joke) पढ़ा था। मान लो कि आपकी जेबमें सौ रुपया है। यदि आप अपनी पत्नीके लिए पचास रुपयेकी साड़ी खरीदते हैं, तो आपकी जेबमें कितना रुपया बचेगा? यह सवाल थां उसने कहा–'पचास रुपये बाकी बचेंगे।' बोले–'नहीं! बिलकुल कुछ नहीं बचेगा। आप जो सोचते-समझते हो कि पचास रुपये की साड़ी खरीदनेपर हमारे पास पचास रुपये बाकी बच जायेंगे, वह आपकी नासमझी है। पचास रुपयेकी साड़ी खरीदनेपर आपके पचास रुपये और खर्च होंगे। आपकी जेब बिलकुल खाली हो जायेगी। देखो! जब आप अपनी पत्नीके लिए

साड़ी खरीदेंगे, तब उसी साड़ीसे 'मैच' (Match) करते हुए नीचेके कपड़े- चनिया-चोली या ब्लाउज-पेटीकोट भी खरीदने पड़ेंगे। है न? साड़ीसे मैच करती हुई चप्पल खरीदनी पड़ेगी, चूड़ियाँ खरीदनी पड़ेंगी, बिन्दी खरीदनी पड़ेगी और लिपिस्टिक भी तो खरीदनी पड़ेगी।' सफेद साड़ीके साथ काली लिपिस्टिक तो लोग लगा लेते हैं। है न? बिलकुल कोढ़की तरह मालूम पड़ता है भला! माफ करना। हैं? वह तो अभी तक यह कृपा समझो कि काली साड़ीके साथ काली लिपस्टिक नहीं लगाते हैं। अब यह सब क्या है? यह मैचिंग-मैचिंग करना अपनेमें सुन्दरता लानेका ही तो प्रयास है। जो लोग छोटी-छोटी बाहरी चीजोंसे अपने अन्दर विशेषता लानेका प्रयत्न करते हैं, वे उपाधिके साथ तादात्म्य करते हैं। इसीको उपाधिके साथ तादात्म्य बोलते हैं।

कल एक सज्जन आये थे। उन्होंने कहा—'ये वेदान्ती लोग उपाधि-उपाधि तो बहुत करते हैं। यह उपाधि क्या है?' हमने उनसे कहा—'देखो! हम पलंगपर लेटे हैं। पलंगपर हमारा सिर शरीरके बराबर है। तख्तेपर जैसा हमारा शरीर है, वैसा हमारा सिर भी है। अब सिरके नीचे उपाधान लगाया। उपाधान माने तकिया। संस्कृतमें तकियेको उपाधान बोलते हैं। अब क्या हुआ? सिर ऊँचा हो गया। शरीरके बराबर नहीं रहा। सिरमें जो ऊँचाई आयी, वह तकियेके कारण आयी। इसका नाम हुआ—उपाधान। उपाधानका ही फिर होता है—उपाधि।'

अच्छा! हमने उनको यह भी बताया कि 'देखो! आपका स्वभाव बड़ा उदार है। आप तो पाँच-दस हजार रुपयोंको कुछ समझते ही नहीं हो; यों ही लुटा देते हो; लेकिन, एक दिन आपने दो रुपयेके लिए कंजूसी की। हमको मालूम है कि आपने ऐसा क्यों किया? आपकी औरत बहुत कंजूस है। उसने ज्यों-ही आँख तरेर कर आपकी तरफ देखा, त्यों-ही आपने दो रुपयेकी कंजूसी कर ली। देखो! आपका स्वभाव उदार है और आपकी उपाधिका-पत्नीका स्वभाव कंजूस है। हैं? वह जो तुम्हारी उपाधि है, उसका धर्म है—कृपणता। आपने अपनी उपाधिके धर्मको—कंजूसीको अपनेमें स्वीकार कर लिया। इसीका नाम हुआ—'उपाधि'।

जो हमारेसे जुदा होकर भी अपना गुण-धर्म हमारे अन्दर डाल दे,

उसको बोलते हैं--उपाधि। उप माने पास रहना और आधि माने आधान करना। यह अपने शरीरका रोग नहीं है। यह अपना रोग नहीं है। यह जैसे एलर्जिक (Allergic) रोग होते हैं न, वैसे है। आहा! तुम्हारे शरीरमें फुन्सी नहीं थी। चम्पाका फूल लग गया--इत्र लग गया। बस! फुन्सी हो गयी। यह संक्रामक रोग है। बाहरसे आया हुआ है। अब आपसे निवेदन यह करना है कि जीवन्मुक्त बाहरसे आये हुए गुण-धर्मको अपने अन्दर स्वीकार नहीं करता है। अपने आपको भी उसके अन्दर मिलाता नहीं है। **यस्य नाऽहं कृतो भावो।**

यह बड़ा भारी अध्यास है कि दूसरी वस्तुसे हमारी कीमत बढ़ती है या घटती है। यदि यह चीज हमारे पास रहेगी, तो हम बड़े और यदि यह चीज हमारे पास नहीं रहेगी, तो हम छोटे। यह अध्यास हो गया। **अतस्मिंस्तद् बुद्धि।** एक आनेवाली और बिछुड़नेवाली चीजको आपने मैं-मेरा समझ लिया। निकम्मा-पनमें अहंकार होता है। आलसी आदमी-मूढ़ आदमी निकम्मेपनका अहंकार करता है। उग्र व्यक्ति हिंसाका अहंकार करता है। उग्र हिंसक व्यक्ति कहता है--'मैंने पाँच आदमियोंकी हत्या कर डाली है। तुम हमें क्या समझते हो? तुम्हें हम थोड़े ही छोड़ेंगे।' ऐसा अभिमान करते हैं हो। 'हमने पच्चीसोंके सिर फोड़ दिये हैं। तुम क्या होते हो?' अब देखो! यह हिंसाका अभिमान है। प्रतिहिंसक व्यक्ति कहता है--'भाई! डण्डा तो हमने भी मारा; परन्तु, पहले उन्होंने डण्डा मारा था। पहले उन्होंने डण्डा मारा, तब उसके बदलेमें हमने उनको डण्डा मारा।' वह अपने अपराधको कुछ हद तक स्वीकार करता है। वह अपराधको अपराध तो मानता है; लेकिन, हलका-फुलका मानता है। एक तो अपराधको अपराध ही नहीं मानता है। हमने पच्चीसोंके सिर फोड़े हैं और तुम्हारा भी फोड़ देंगे। यह हिंसा हुई। दूसरा कहता है--'भाई! हमारे मनमें तो डण्डा चलानेकी नहीं थी। जब उन्होंने हमको डण्डा मार दिया, तब हमने चलाया।' वह अपने अपराधको हलका करता है। एक ऐसा है, जिसको डण्डा मारो चाहे मत मारो, वह अपनी अहिंसामें प्रतिष्ठित है। एक ऐसा भी है, जिसको हिंसा और अहिंसा--दोनोंमें समत्व है। अहिंसा साधककी स्थिति है। प्रतिहिंसा सज्जन पुरुषकी स्थिति है। जो राज-काजके संचालक हैं, वह पहले मुकदमा बनाते

हैं कि पहले इन्होंने हमारे ऊपर आक्रमण किया, तब हमने अपने बचावके लिए प्रत्याक्रमण किया। यह राजनीति है। है न? अच्छा! साधन क्या है? सहन कर जाना। अहिंसा साधन है। समता सिद्धि है। वह साक्षितामें निवास करती है। स्वरूपमें साक्षिता। चित्तमें समता। व्यवहारमें असंगता। ब्रह्ममें अद्वितीयता। जो ब्रह्मपना है, वहाँ तो दूसरा कोई है ही नहीं। दूसरा कौन है, जिसके हम साक्षी बनें? दूसरा कौन है, जिससे हम असंग रहें? कौन विषम है, जिसके प्रति हम सम हों? जब कई विषम होते हैं, तब उस विषमतामें समता रखनेकी जरूरत पड़ती है। जब कोई दूसरा होता है–दुश्मन होता है, तब उससे असंग रहना पड़ता है। जब कोई दृश्य होता है, तब उसका साक्षी रहना पड़ता है। जब दृश्य ही नहीं है, तब साक्षी क्या? जब विषमता नहीं है, तब समता काहेकी? जब कोई संगका विषय नहीं है, तब असंगता क्यों? अपना स्वरूप ही अद्वितीय है। यह ब्रह्मदृष्टि है।

**यस्य नाऽहंकृतो भावः**का अर्थ क्या है? यहके रूपमें जो मालूम पड़ता है, वह है–इदम्। इस इदम्को देखनेवाला है–अहम्। अहम्को इदम्के साथ मिला देना माने मैंको यहके साथ मिला देना। इसका अर्थ होता है–अहंकृति। अहंकृति यस्यास्ति इति अहंकृतः। जो चीज साफ-साफ यह मालूम पड़ती है–इदम् मालूम पड़ती है–अपनेसे जुदा मालूम पड़ती है, उसको मैं मान बैठना–अहम् मान बैठना अहंकृति है भला! यह बदलती हुई धारा है, चाहे झूठी हो चाहे सच्ची–चाहे विवर्त हो चाहे परिणाम। उसको चाहे परिवर्तन कहो चाहे विवर्तन। है न? वि उपसर्ग है और वर्तन तो परिवर्तनमें और विवर्तनमें भी वही है। वृति वर्तने धातु। वर्तनार्थक माने व्यवहारके लिए। 'वर्तन' शब्द संस्कृतमें है। इत्थं वर्तते। बदलनेका नाम परिवर्तन है। बदलनेका जो भान है, उसका नाम विवर्त है। विपरीत भासना। जैसा है, उसके विपरीत भासना। वि माने विपरीत और वर्तन माने आप। दुनियामें जो यहके रूपमें बदलती हुई चीजें हैं,उनको मैं–के रूपमें मान बैठना। आनेवाली साड़ियोंको मैं मान बैठना। आनेवाले पावडरको मैं मान बैठना। वह जो जाना है, उसको मैं–मेरा मान बैठना। आने–जानेवालेको मैं–मेरा मान बैठना। यह परिवर्तनशील होता है। यह परिणामी होता है। यह विवर्ती होता है। यह अपने अभावके अधिष्ठानमें ही भासता है। यह उस

भासकमें भासता है, जो कभी भास्य नहीं होता। अपने अभावके अधिष्ठानमें भासनेके कारण यह मिथ्या होता है।

विषयमें आनन्द है—यह अध्यास है भला! जो इदम्के रूपमें भास रहा है, वह ज्ञाता ज्ञानस्वरूप मैं है—यह अध्यास है। भासनेवाली जो आकृति है, उसमें मैं भासना असत् है। आकृति असत् है। उसमें मैं भासना माने उसको सत् मानना। दृश्य मिथ्या है। उसमें मैं भासना अर्थात् अज्ञान भासना। विषय जड़ है। उसको आनन्ददायी मानना अपने आनन्दस्वरूपका तिरस्कार है। जो अपरिच्छिन्न है—सम्पूर्ण परिच्छेदोंका साक्षी है और सम्पूर्ण परिच्छेदोंका अभाव जिसमें रहता है, वह स्वाधिष्ठाना निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगी जो पदार्थ है, उसको बोलते हैं—मिथ्या। जिस द्रष्टामें दृश्य दिख रहा है, उस द्रष्टा में तो दृश्य है ही नहीं। दृश्य के अभाववाला है—द्रष्टा। जिस अधिष्ठानमें दृश्य दिख रहा है, उसमें तो है ही नहीं। फिर भी, इदम्को अहम् मान बैठना। आहा! इसका नाम अहंकार होता है हो!

जिसके हृदयमें वस्तुओंके इकट्ठा करनेसे, शृंगारसे, भोगसे, कर्मसे और अकर्त्तापनसे, अहिंसासे, शक्तिसे, सिद्धिसे, परिच्छिन्नतासे अहंभावका उदय नहीं होता। एक बात। **यस्य नाऽहंकृतो भावो**। यह श्लोक गीतामें आधा है। **बुद्धिर्यस्य न लिप्यते**। जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती। लेप तो आप लोग अच्छी तरह समझते हैं। जब अपने शरीरमें बाहरी कोई चीज लग जाती है और हम सोचते हैं कि उसको लगाये रखें, तब वह लेप हो जाती है। अच्छा! हम आपको बचपनकी एक बात सुनाते हैं। हम लोगोंके यहाँ बचपनमें लाल-पीला कपड़ा पहनाया जाता था। महाराज! एक तो देहात और दूसरा हम बच्चे। जब हमको कभी लाल कपड़ा पहनाया जाता, तब हम पहन लेते थे। जब हमारी माँ उसको निकालने लगती, तब हम रोने लगते कि यह मत निकालो। बचपनकी याद है। है न? अब तो हम अपने बचपनको जवानोंमें देखते हैं। ऐसे रंग-बिरंगे कपड़े पहनते हैं महाराज! पहले तो हम लोग इसको पैबन्द मानते थे। अगर कपड़े दो रंगके-दो तरहके चकत्थे लगे हों, तो हम समझते थे कि बेचारेको एक तरहका कपड़ा नहीं मिला होगा। इसलिए, इसने यह फटा-पुराना दो तरहका कपड़ा पहन लिया है। एक दिन 'श्यामजी भाई पारीख'ने हमको वह मखमल लाकर दिखाया,

जिसका वह निर्यात करते हैं–विदेशोंमें भेजते हैं। वह तो आधा–आधा फुटके कई रंगके कपड़े एकमें जोड़े हुए थे। उन्होंने हमको बताया कि 'आजकल ऐसे कपड़ेकी बड़ी माँग है। अगर हम मिलमें रंग–बिरंगे मखमल अलग–अलग बना दें, तो उसकी माँग नहीं है। पहले हम रंग–बिरंगे मखमल अलग–अलग बनाते हैं; फिर उनको छोटे–छोटे टुकड़ोंमें फाड़–फाड़ कर रखते हैं; और, फिर उन फटे हुए छोटे–छोटे टुकड़ोंको सिलवाकर जोड़ते हैं। ऐसे मखमलकी माँग होती है।' श्यामजी भाई पारीख यहाँ कथामें बैठे होंगे। हमको अपना वह बचपन याद आ जाता है, जब हम लाल कपड़ा निकालनेपर रोते थे। कपड़ा लाल है, तो चद्दर पीली है। पीताम्बर ओढ़ते थे। उसका बड़ा शौक था हो! यही बचपन है। **बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।** हमारे शरीरपर वह लाल–पीला कपड़ा बना रहे, यह बचपन है। हाँ! इसी तरह, जब हम बाहरकी आयी हुयी चीजको बनाये रखना चाहते हैं, तब हम उसके साथ चिपक जाते हैं। लेप माने चिपक जाना। गोंद लग जाना। है न? जैसे हमारे और उस चीजके बीचमें गोंद लग गया–लेप लग गया। इसीको संस्कृत भाषामें संग बोलते हैं।

पहले लोगोंको स्वर्ग न मिलनेका दुःख हुआ करता था। अब तो खैर, ईश्वर–कृपासे वह दुःख कम होता जा रहा है। पहले लोगोंको भय होता था कि हमको नरकमें जाना पड़ेगा। अब नरकके डरको भी कालके परिवर्तनने कम कर दिया है। हाँ! हमको एकने बताया कि 'हमारी लड़कीकी शादी इसलिए नहीं हो रही है कि वह कथा सुनने जाती है।' हमने कहा–'भला बोलो! ऐसे क्यों?' उसने कहा–'महाराज! जिसके यहाँ शादी करनी है, वह कहता है कि अगर लड़कीमें सत्संगका संस्कार होगा, तो वह हमारी 'सोसायटी' (Society) में फिट नहीं बैठेगी। हमारे साथ तो शराब पीनी पड़ेगी। मांस खाना पड़ेगा। डांस करना पड़ेगा। परपुरुषके साथ विहार करना पड़ेगा–नाचना पड़ेगा। उसके मुँहकी शराब लेकर पीनी पड़ेगी। उसके मुँहका कोकोकोला लेकर पीना पड़ेगा। अपने मुँहकी कोकोकोला–शराब उसको देनी पड़ेगी। दूसरेके साथ बैठकर 'कम्पनी' (Company) देनी पड़ेगी। हाँ! यह सब तो हमारे यहाँ करना ही पड़ेगा। सत्संगसे तो लड़कीके संस्कार बिगड़ गये। हमारी सोसायटीमें बिगड़े हुए संस्कारवाली

सत्संगी लड़की फिट नहीं बैठेगी।' हमको एकने ऐसे बताया हो! अब आप लोग तो मानते होंगे कि हम लोग सत्संग करते हैं, तो बहुत अच्छा काम करते हैं। यह देखो! दूसरा मानता है कि सत्संगसे संस्कार बिगड़ गये। इसका नाम है—बुद्धिलेप। आत्मसौन्दर्यपर दृष्टि न रखकरके उधार ली हुई चीजके कारण अपनेमें बड़प्पनका जो आरोप है, वह बुद्धिका लेप है।

बाहरसे आता है—हर्ष। बाहरसे आता है—विषाद। बाहरसे आता है—शोक। हम इस बाहरसे आये हुए गुण्डेको अपने साथ जोड़ लेते हैं। यह हर्ष–विषाद-शोक बुद्धिका लेप है। **बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।** जब बुद्धिमें तृष्णाका आविर्भाव हो कि हमको यह चीज मिले; जब बुद्धिमें मोहका आविर्भाव हो कि यह चीज बनी रहे; और, जब बुद्धिमें भयका आविर्भाव हो कि यह चीज छूट न जाये, तब उसको बोलते हैं—बुद्धिलेप। तुम्हारी बुद्धिके साथ वह चीज चिपक गयी अथवा तुम्हारी बुद्धि उसके साथ चिपक गयी। बुद्धिलेप माने अपनेमें कर्त्तापन और भोक्तापनका अभिमान। अब एक तीसरा लेप देखो। करके तो अभिमान होता ही है कि हमने यह 'यूनिवर्सिटी' (University)' बनवायी और हमने यह 'हॉस्पिटल' (Hospital) बनवाया। छोड़कर भी अभिमान होता है कि हमने यह छोड़ा।

एक साधु थे। वह स्वर्गाश्रममें रहते थे। बचपनमें तो तरह-तरहका ख्याल आता था न! हम तो छोटी उम्रके थे, तबसे सत्संग करनेके लिए जाते थे। सफेद कपड़ा पहनते थे। अब महाराज! जो मिले, सो ही खा लेते थे और कहीं भी सो जाते थे भला! मन्दिरके चबूतरेपर सो जाते थे। 'स्वर्गाश्रम'की सीढ़ीके पास जो मंदिर है, उसीके चबूतरेपर सो जाते थे। हमको अकेलेको कौन कमरा देता? है न? एक बार 'ऋषिकेश'में 'पंजाब सिन्ध क्षेत्र'में गया। वहाँके कर्मचारीने पूछा—'अकेले हो कि दो हो कि चार हो?' मैंने कहा—'अकेले हैं।' उसने कहा—'क्षेत्रमें अकेले आदमीको कमरा नहीं दिया जाता है।' मैं बड़ी जोरसे चिल्लाया—'श्रीकृष्ण! ' कमरा न मिलनेपर मेरे मुँहसे ऐसे ही आवाज निकली। मेरी आवाज सुनकर वहाँका चपरासी आगया और बोला—'तुम्हारे मुँहसे जो यह श्रीकृष्ण आवाज निकली है, वह तो बड़े प्रेमकी-बड़ी भक्तिकी आवाज है। ऐसी आवाज हृदयमें भक्ति हुए बिना नहीं निकल सकती है। आओ! हम तुमको कमरा

देते हैं।' हाँ! महाराज! एक श्रीकृष्णका नाम लेनेसे हमको अकेले ठहरनेके लिए कमरा मिल गया। भगवान् के नामसे बड़ी रक्षा होती है। लोगोंको मालूम नहीं पड़ता है।

एक बार हम अपनी बहनको कहीं पहुँचानेके लिए बैलगाड़ीपर चढ़कर स्टेशन जा रहे थे। मेरी बहन ससुराल जा रही थी। बहनके साथ जेवर भी होता ही है। रातको डाकुओंने घेर लिया। आहा! मेरी उमर तो बहुत छोटी थी। लेकिन, मैंने बताया कि 'हम फलाने पंडितके नाती हैं-पोते हैं। यह सामनेवाले गाँवमें अमुक व्यक्ति हमारे रिश्तेदार हैं। तुम लोग हमको मत लूटो।' यह सुनकर डाकुओंने कहा–'पाय लागी पण्डितजी! अच्छा! आप हमारे बाबाजीके लड़के हैं? आप हमारे बाबाजीके पोते हैं? माफ करना! हमने आपको पहचाना नहीं। आओ! आओ! हम आपको स्टेशन तक पहुँचा देते हैं। आप निश्चिन्त रहो।' देखो! हमारे बाबाके नामसे–हमारे पितामहके नामसे काम चल गया हो! केवल नामसे काम चल गया। है न? लोगोंको मालूम हो कि भगवान्के नामसे बड़ी सुरक्षा होती है। बड़े-से-बड़े संकट प्रभु-नामके प्रभावसे टल-मिट जाते हैं।

अच्छा! हम आपको यह बात सुना रहे थे कि त्यागका भी अभिमान होता है। मैं स्वर्गाश्रममें गया–साधु-दर्शन-सत्संग हेतु। अबसे चालीस साल पहलेकी बात है। छोटी-सी उम्र थी। बचपन के दिन थे। लोगोंने बताया कि बड़े विद्वान् महात्मा स्वर्गाश्रममें रहते हैं। मैं दर्शन करने गया। महात्माकी बड़ी-भारी लम्बी-दाढ़ी थी। वह सारा गेरुआ कपड़ा पहनते थे। वह बड़े पढ़े-लिखे थे। महात्माका सत्संग हुआ। उन्होंने यह सुनाया कि 'उनके पास सात लाख रुपया था। उसका त्याग करके वह यहाँ स्वर्गाश्रममें आये हैं। वह कोई भिखमंगे महात्मा नहीं हैं। अब देखो! उन्होंने सात लाख रुपया तो छोड़ दिया था; परन्तु, उसके छोड़नेका बड़प्पन उनके साथ लगा हुआ था। त्यागका अभिमान नहीं छूटा हो! है न? इसीका नाम बुद्धिलेप है हो!

अच्छा! किसी चीजको पकड़नेका भी अभिमान होता है। किसीको राजदूत बनाना था। विदेशमें भेजना था। उसको 'इण्टरव्यू' (Interview)के लिए बुलाया गया। बोले–'तुमको अमुक देशमें–ब्राजीलमें या दूसरे कहीं–

राजदूत बनाना है। तुम बताओ कि तुम्हारे अन्दर क्या-क्या योग्यता है?' उसने सब कुछ बतानेके बाद यह भी बताया कि हमारी जो बेगम साहिबा हैं, वह बहुत सुन्दर हैं। राजदूतकी बेगम साहिबा भी तो सुन्दर होनी चाहिये न? विदेशमें जायेंगे, तो कैसे काम चलेगा? हैं? देखो! अपनी योग्यताके साथ उसने बेगम साहिबाकी सुन्दरताको भी जोड़ दिया। यह बुद्धिलेप ही है।

अब देखो! यदि किसी चीजको पकड़नेका अभिमान होता है, तो त्यागका भी अभिमान होता है। यदि होनेका अभिमान होता है, तो छोड़नेका भी अभिमान होता है। यदि करनेका अभिमान होता है, तो न करनेका भी अभिमान होता है। लेकिन, जीवन्मुक्त वह है, जिसमें न पानेका अभिमान है और न ही छोड़नेका। न करनेका अभिमान है और न ही न करनेका। जीवन्मुक्तमें किसी भी आकृतिका अभिमान नहीं है। किसी भी दृश्यका अभिमान नहीं है। किसी भी विषय-भोगका अभिमान नहीं है। किसी भी परिच्छिन्नताका अभिमान नहीं है। जीवन्मुक्त अभिमानसे मुक्त है। **कुर्वतोऽकुर्वतोऽपि।** अभिमानराहित्य जीवन्मुक्तका असाधारण लक्षण है। उसके सिवाय अभिमानका परित्याग नहीं हो सकता।

दैन्यका भी अभिमान होता है हो। आप लोगोंके ध्यानमें नहीं होगा। दीनताका अभिमान होता है। हमारे सत्संगमें—वृन्दावनमें एक सज्जन आते थे। उनको हम पाँच-दस बार कहकर हार गये कि 'आओ! फर्शपर बैठो।' वह बोलते कि 'नहीं महाराज! हम तो जहाँ लोगोंके जूते हैं, वहाँ बैठेंगे। हम लोगोंके बराबर बैठने लायक नहीं हैं। *'मो सम दीन न दीन हित।' 'हौं हरि सब पतितन को राय।'* हम तो दीन-हीन हैं। पतितोंके राजा हैं। आप लोगोंके साथ हम कैसे बैठेंगे? जूतोंमें जाकर बैठ गये। एक दिन मालूम हुआ कि वह सज्जन अपने 'घरमें कहते हैं कि ये सब अभिमानी लोग ऊँची-ऊँची जगहपर जाकरके बैठते हैं। देखो! मैं कितना विनयी हूँ कि जूतोंमें बैठ रहा हूँ।' आहा! यह विनयीपनेका अभिमान है हो!

मैं अभिमान नहीं करता हूँ, इसका भी अभिमान हो जाता है। आहा! यह अहंभाव जो है, यह कैसे-न-कैसे आ ही जाता है। जीवन्मुक्त अहंभावसे मुक्त होता है। जबतक दृष्टिमें विशालता नहीं आवेगी, तबतक तुम अभिमानको हटा नहीं सकते हो। तुम अभिमानको हटाते जाओगे और

वह भीतरसे निकलता आवेगा; क्योंकि, जो उसका बीज है–अज्ञान, वह बना हुआ है। जबतक बीज रहेगा, तबतक अंकुर निकलेंगे। तुम अभिमानको हटावोगे और अभिमान आवेगा। तुम अभिमानको हटावोगे और वह फिर आवेगा। जब उसका बीज–अज्ञान मिट जायेगा, तब वह भी मिट जायेगा और अभिमानराहित्य होना ही जीवन्मुक्ति है। जीवन्मुक्ति केवल मनोनाश या वासनाक्षय नहीं है। जीवन्मुक्ति केवल शान्ति नहीं है। विक्षेपमें भी जीवन्मुक्ति है और शान्तिमें भी जीवन्मुक्ति है। काम करते हुए भी जीवन्मुक्ति है और समाधिमें भी जीवन्मुक्ति है। जीवन्मुक्तका सामनेवाली चीजमें जो सत्यत्व–सम्बन्ध और प्रियताका भाव है–देह-सहित–अन्तःकरणसहित, वह मिट गया।

जीवन्मुक्तका एक और लक्षण सुनावें। नारायण! यह भी आपका पढ़ा हुआ तो होगा; परन्तु, यह पता नहीं कि गुना हुआ है कि नहीं है? अच्छा! हमको यह बात कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि वेदान्तके प्रेमियोंमें-से पचास प्रतिशतको 'श्रवण' शब्दका अर्थ मालूम नहीं होता है। आप बिलकुल बुरा मत मानना। है न? वेदान्तमें श्रवण शब्दका अर्थ कानसे श्रवण नहीं है। पोथीका श्रवण भी वेदान्तमें श्रवण नहीं है। हाँ! वेदान्तमें श्रवण पारिभाषिक शब्द है–'टेक्निकल' (Technical) शब्द है। वेदान्तमें श्रवणका अर्थ होता है–निश्चय। कौन-सा निश्चय? क्या निश्चय? यह निश्चय कि सम्पूर्ण उपनिषदोंका परम तात्पर्य ब्रह्म और आत्माकी एकतामें है। इस एकत्वके निश्चयका नाम वेदान्तमें श्रवण है। निश्चय बुद्धि–धर्म होता है। **वेदान्तानां अशेषानां आद्यमध्यावसानतः ब्रह्मात्मन्यैव तात्पर्यं इति धी श्रवणं भवेत्।** बोले–'हमने तो वेदान्तका श्रवण किया है। हमने तो शिवोऽहं! शिवोऽहं! हजार बार सुना है। हमने तो तत्त्वमसि! तत्त्वमसि! हजार बार सुना है। हमको तो ज्ञान नहीं हुआ है।' बोले–'इसका नाम श्रवण नहीं है। श्रवण तो बुद्धि धर्म है और वह निश्चयात्मक है। श्रवण विद्या है। श्रवण पोथी नहीं है। श्रवण श्लोक नहीं है। विद्या वृत्त्यात्मक होती है। पोथी कर्गजात्मक होती है। श्लोक शब्दात्मक होते हैं। शब्द राशिका कर्णकुहरसे कर्णशष्कुलीसे संयोग है, वह वेदान्तमें श्रवण नहीं है। कानके छेदमें जाकर जो आवाजें टकराती हैं, उनको वेदान्तमें श्रवण नहीं बोलते हैं। बुद्धिमें ब्रह्म

और आत्मकी एकताके निश्चयको वेदान्तमें श्रवण बोलते हैं। लो भला! वेदान्तका नाम लेनेवालोंमें-से पचास प्रतिशत लोग श्रवण शब्दका अर्थ नहीं जानते हैं। आहा! ऐसी स्थितिसे अवगत करा रहे हैं।

अच्छा! अब देखो! आपने गीता पढ़ी होगी। यहाँ कई लोग ऐसे होंगे, जिन्होंने हजारों बार गीता पढ़ी होगी। कुछ लोग ऐसे होंगे, जिन्होंने सैकड़ों बार गीता पढ़ी होगी। कई लोग ऐसे होंगे, जो मनन-चिन्तन करते होंगे। गीताके इस श्लोकपर क्या आपने कभी ध्यान दिया है?

**यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।**
**हर्षामर्षभयान्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।।**

दो चरण पूरे-के-पूरे गीताके हैं। तीसरा चरण करीब-करीब गीताका है। थोड़ा-बहुत फेर-फार है। चौथा चरण योगवासिष्ठ वालोंका अपना है। वह जीवन्मुक्ति विवेकमें उद्धृत है। क्या आपने कभी इसपर ध्यान दिया? जिससे किसीको उद्वेग नहीं होता और जिसको किसीसे उद्वेग नहीं होता है। यह ल्यो! हे भगवान्!

श्री उड़ियाबाबाजी महाराजसे किसीने आकर कहा कि 'चम्बल घाटीका अमुक डाकू यहाँ आपके पास आया है और आपसे एकान्तमें मिलना चाहता है।' महाराजके भक्त बोले—'महाराज! ऐसे डाकूसे एकान्तमें मिलना ठीक नहीं है।' महाराज तो हँसने लगे। बोले—'बेकूफ! आने दो।' ऐसे हो! मना करनेवालेको कह दिया—'बेकूफ! बाँवरे! आने दो।' डाकू आया। उसने अपने हाथमें पिस्तौल ले रखी थी। पिस्तौल एक तरफ रख दी। बाबाके चरणोंमें जाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और फिर पिस्तौल उठा ली। उसने कहा—'महाराज! अपने दस वर्षके डाकू जीवनमें आज पहली बार मैंने पिस्तौलको अपने हाथसे हटाकर इस तरहसे जमीनपर रखा है। हाँ! महाराज! अपने इस जीवनमें आज दस बरसके बाद पिस्तौल नीचे जमीनपर रखी है।' उस डाकूको देखकर उड़ियाबाबाजी महाराजको कोई उद्वेग हुआ? कोई उद्वेग नहीं हुआ। अरे! बाबा तो अपने हृदयसे लगा लेते थे। भाई मेरे! यह पोशाक ही तो अलग-अलग दिखती है। भीतरसे तो एक ही है। हमारा आत्मा है। **लोकान्नोद्विजते च यः।**

अच्छा! यह बात तो जल्दी समझमें आती है भला! लेकिन एक

बातपर आपने ध्यान नहीं दिया। **यस्मान्नोद्विजते लोको।** जिससे किसीको उद्वेग नहीं होता है। ऐसा होना कैसे शक्य है? क्या यह सम्भव है कि दुनियामें किसीसे किसीको उद्वेग न हो। इसका अर्थ यह है कि दुनियामें एक ऐसा आदमी है, जिससे किसीको कोई उद्वेग नहीं होता है। माने वह किसीका विरोधी नहीं है। वह नरकका भी विरोधी नहीं है। वह स्वर्गका भी विरोधी नहीं है। उसका जीवन बिलकुल अविरोधी है। यह बात माननी पड़ेगी कि नहीं? यदि कोई भूलसे मान भी बैठे कि यह हमारा विरोधी है, तो उस विरोधी माननेवालेके प्रति भी वह अविरोधी है। **यस्मात् नोद्विजते लोको।**

इस बातको हमारे एक महात्माने ऐसे समझाया है। आपको मालूम है कि समुद्रके पेटमें बहुतसे भयंकर जानवर रहते हैं और समुद्र बहुत गहरा है। देखो! न तो वे असंख्य जानवर डरते हैं कि यह समुद्र हमको डुबो लेगा और न तो समुद्र डरता है कि ये हजारों भयंकर जानवर हमको खा जायेंगे। है कि नहीं? अब आज जरा अपनेको समुद्रके स्थानपर कीजिये। आप देखिये। जो ये उड़ते हुए ब्रह्माण्ड हैं न, ये तरंगके समान भी नहीं हैं। तरंग तो बड़ी-बड़ी होती हैं। हाँ! अनन्तमें ये कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड एक बूँदके समान भी नहीं हैं। एक फुहियाके समान भी नहीं हैं। एक बूँदके सैकड़ों हिस्सेके बराबर होती है-एक फुहिया। भला बताओ! ये कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड अनन्तमें एक फुहियाके समान भी नहीं हैं। **यस्य समन्ततो अनन्तानि ब्रह्माण्डानि प्रज्वलन्ति। यस्य रोमकूपेषु अनन्तानि ब्रह्माण्डानि समुज्ज्वलन्ति।** 'महानारायणोपनिषद्' में यह वर्णन है। जैसे आगसे चिन्गारी निकलती है, वैसे ही विष्णु भगवान्‌के एक-एक रोमकूपमें ये कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड चिन्गारीकी तरह चमकते रहते हैं। यह तो विष्णु भगवान् हैं। ईश्वरमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड फुरते रहते हैं। यह तो महानारायणका शरीर है।

हमको एक ज्योतिषीने एक बार समझाया था। उसने बताया कि सूर्यका पिण्ड है। यह पृथिवी सूर्यके चारों ओर घूमती है-सूर्य की परिक्रमा करती है। सूर्य ध्रुवकी परिक्रमा करता है। ध्रव महाध्रुवकी परिक्रमा करता है। महाध्रुव ब्रह्मपिण्ड है। जैसे सूर्य ग्रह है, ऐसे आकाशमें एक ब्रह्माग्रह है। उस ब्रह्माग्रहको ही ब्रह्मलोक बोलते हैं। महाध्रुव उस ब्रह्माग्रहकी परिक्रमा

करता है। ब्रह्माग्रहसे बड़ा है—विष्णुग्रह। ब्रह्माग्रह विष्णुग्रहकी परिक्रमा करता है। विष्णुग्रह शिवग्रहकी परिक्रमा करता है। जानते हो क्यों? क्योंकि, इन सबका प्रलय हो जानेपर भी वह ग्रह-शिवग्रह बना रहता है। ग्रहोंके रूपमें इन पिण्डोंकी कैसी स्थिति है?, उसको नक्शा बना-बनाकर हमको ज्योतिषीने समझाया था हो। मैंने कहा—'भाई! तुम्हारी अकल तो बहुत अच्छी है। अध्यारोप करनेमें तुम बड़े निपुण हो'।

अब आप देखो! आप वह आकाश हो, जिसमें करोड़ों ग्रह-नक्षत्र चक्कर काटते रहते हैं; परन्तु, आप जड़ आकाश नहीं हो। आप शून्य आकाश नहीं हो। आप चित्त आकाश नहीं हो। आप कौन हो? आप चित् आकाश हो। हाँ! इस बांतको ध्यानमें लो। आप जड़ाकाश नहीं हो। आप शून्याकाश नहीं हो। आप चित्ताकाश नहीं हो। आप चिदाकाश हो। जहाँ चिदाकाशसे एकता हुई, वहाँ आपके अन्दर सब और सबके अन्दर आप। आपमें सब और सबमें आप। न आप किसीको उद्वेग देते हो और न किसीसे उद्वेग लेते हो। ऐसे सृष्टि-स्थिति-प्रलय होते रहते हैं। हाँ! **हृदयं यस्य शीतलं**। वह तो अपनी-अपनी पार्टी होती है। अपना-अपना फंड होता है। अपना-अपना विरोध-निरोध होता है। आहा! धर्ममें विरोध होता है। किसका? अधर्मका। उपासनामें अनुरोध होता है। किसका? अपने इष्टदेवका। योगमें निरोध होता है। किसका? अपनी वृत्तियोंका। ज्ञानमें किसीका विरोध-अनुरोध-निरोध नहीं होता है। हाँ! विरोध दुश्मनका होता है। अनुरोध दोस्तका होता है। जैसे पति-पत्नी एक दूसरेको मनाते हैं—अनुरोध करते हैं। यह उपासना है। निरोध अपने आपमें होता है। अपनी इन्द्रियोंको रोका जाता है। ज्ञान वह चीज है, जिसमें न दुश्मनका विरोध है, न तो दोस्तका अनुरोध है और न ही वृत्तियोंका निरोध है। यह बिना धर्म-विरोध, बिना इष्ट-अनुरोध, बिना वृत्ति-निरोधकी जो स्थिति है वह जीवन्मुक्तकी स्थिति है।

जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें अपनी आत्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। भला बताओ! उससे किसको उद्वेग होगा? अपनी आत्मासे किसीको उद्वेग नहीं होता है। **हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तो यः स च मे प्रियः। हर्षामर्षभयान्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते**। उसको संसारमें हर्ष नहीं है।

जब माला गलेमें डाली जाती है, चन्दनका तिलक लगाया जाता है और बोला जाता है–'बोलो! समाजसेवी महापुरुष की जय!', तब समाजसेवी महापुरुष फूलकर कुप्पा हो जाता है। हर्ष माने फूलना, हर्ष माने हृष्ट होना। रोमहर्ष बोलते हैं। गीतामें आपने यह 'रोमहर्ष' शब्द पढ़ा या नहीं? रोमहर्षश्च जायते। पहले अध्यायमें है। वहाँ हर्ष शब्दका क्या अर्थ है? रोमका-रोएँका खड़ा होना। है न? वह खुशीसे फूलकर कुप्पा हो गये? अच्छा! यदि कोई अपनी बराबरी करने लगा, तो अमर्ष हो गया। तुम नाचीज। भला! तुम हमारी बराबरी कर सकते हो? अच्छा! यदि कोई आगे बढ़ गया, तो डर लग गया कि अब तो हम पीछे छूट गये। अरे! जीवन्मुक्तको न तो आगे बढ़नेकी खुशी होती है, न तो किसीकी बराबरीका अमर्ष होता है; और, न ही यह डर होता है कि कोई उसको नीचे गिरा देगा। जीवन्मुक्तको न तो कोई आकर आगे बढ़ाता है, न तो कोई आकर उसकी बराबरी करता है और न ही कोई आकर उससे आगे बढ़ता है। जब दूसरा कोई हो, तब न उसे हर्ष-अमर्ष-भय हो। उसकी दृष्टिमें तो सब अपना-आपा ही है। इस सर्वात्मभावमें उद्वेगका स्थान ही नहीं है।

ईश्वरसे एक होनेपर यह सर्वात्मभाव होता है। ब्रह्मसे एक होनेपर सर्वात्मबोध होता है। ब्रह्मात्मैक्यबोध होनेपर ब्रह्मात्मबोध होता है। एक सर्वात्मभाव होता है और एक सर्वात्मबोध होता है। अपने दिलमें ऐसा भाव रखकर बैठना सर्वात्मभाव है। हम ऐसे महात्माको जानते हैं, जिनके चित्तमें सर्वात्मभावकी प्रतिष्ठा है। हम ऐसे महात्माको भी जानते हैं, जिनके हृदयमें सर्वात्मबोधकी प्रतिष्ठा है। सर्वात्मबोधकी प्रतिष्ठा होनेपर जीवन्मुक्ति है। सर्वात्मभावकी प्रतिष्ठा होनेपर भक्ति है। हाँ! अब यह बात आपको कल सुनावेंगे। है न? इस निष्ठाकी बातको अब आपको कल सुनावेंगे।

ओऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 19

## नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

जीवन्मुक्तका वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह किसीके उद्वेगका हेतु नहीं है और वह किसीके द्वारा दिये गये उद्वेगका विषय नहीं है। **यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।** जीवन्मुक्त न तो उद्विग्न होता है और न ही उद्विग्न करता है। यह दुहरी बात है। जीवन्मुक्त किसीको उद्विग्न नहीं करता है—यह बात तो जल्दी गलेसे नीचे उतर जाती है, परन्तु, यह बात थोड़ी मुश्किल है कि वह किसीके उद्वेगका कारण नहीं बनता है। देखो! अगर एक दिगम्बंर पुरुष बम्बईकी सड़कपर से निकल जाये, तो कई लोग उसको गाली देंगे। कई लोग तो पीटना ही शुरू कर देंगे। कई लोग पुलिसमें दे देंगे। पुलिस पकड़कर जेलमें डाल दे—यह भी हो सकता है। अब भला बताओ। जीवन्मुक्त महापुरुषको देखकर किसीको उद्वेग नहीं होता है—इसका क्या अर्थ है?

कल आपको सुनाया था कि जीवन्मुक्त महापुरुषकी दृष्टि ब्रह्मदृष्टि है! उसका दृष्टिकोण नहीं होता है। दृष्टिकोण तो अधूरा होता है। एक कोणसे लिया हुआ फोटो सच्चा फोटो नहीं होता है। जीवन्मुक्तने तो सम्पूर्ण विश्वका समूचा फोटो ले लिया है। ब्रह्मज्ञानसे सम्पूर्ण प्रपंचका सम्पूर्ण फोटो लिया जाता है। ब्रह्मज्ञानसे सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्डका प्रकाशन होता है। ब्रह्मज्ञानके अतिरिक्त और किसी भी ज्ञानसे सम्पूर्ण विश्वका प्रकाशन नहीं होता है। हाँ! विश्वके एक अंशका प्रकाशन होता है। अतएव, बाकी सब तो दृष्टिकोण है और ब्रह्मदृष्टि दृष्टि है। वह दृष्टिकोण नहीं है। ब्रह्ममें द्रष्टा और दृश्यका भेद नहीं है। बस! यदि जीवन्मुक्त और ब्रह्ममें भी विलक्षणता बतानी हो, तो ब्रह्मदृष्टि जीवन्मुक्ति है और ब्रह्ममें द्रष्टा-दृष्टि-दृश्यका कोई भेद नहीं है। इसका मतलब यह है कि व्यावहारिक ब्रह्मका नाम जीवन्मुक्त है और जीवन्मुक्तके परमार्थ स्वरूपका नाम ब्रह्म है।

अच्छा, नारायण! अब व्याख्या करते हैं। क्या व्याख्या करते हैं? **हर्षामर्षभयान्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।** यदि सम्मान प्राप्त हो, तो बड़ा

हर्ष होता है। यदि धन प्राप्त हो, तो बड़ा हर्ष होता है। यदि सम्बन्धी प्राप्त हो, तो बड़ा हर्ष होता है। अमर्ष माने मर्षण न कर पाना माने सहन न कर पाना। अमर्ष माने असहिष्णुता। यदि कोई अपनी बराबरी करे, तो अमर्ष होता है। सहन नहीं होता है। आगेकी चिन्ता करके भय होता है या सामनेवालेसे भय होता है। मृत्युका भय होता है। मृत्युका भय ही होता है हो। मृत्युका अनुभव कभी नहीं होता है।

कल मैंने एक आदमीको बताया कि अगर तुम्हारे सिरमें दर्द हो जाये और तुम मुझे बताओ नहीं कि मेरे सिरमें दर्द है, तो मुझे मालूम नहीं पड़ेगा। अच्छा! अगर मुझे कभी सिरदर्द न हुआ हो अथवा मेरी जानकारी सिरदर्द के बारेमें न हो और तुम मुझे बताओ कि तुम्हारे सिरमें दर्द है, तो तुम्हारे अपने सिरदर्दके बारेमें कहनेपर भी मुझे मालूम नहीं पड़ेगा। सिरदर्द नेत्रादि इन्द्रियोंका विषय नहीं है। हम उसका अनुमान करते हैं। वह कैसे करते हैं? जब दूसरा बताता है कि मेरे सिरमें दर्द है, तब हम अपने सिरके दर्दके दृष्टान्तसे उसके सिरदर्दका अनुमान लगाते हैं। सिरदर्दका प्रत्यक्ष नहीं होता है। जब अपनेको दर्द होगा, तब तो दर्द अपरोक्ष होगा। जब दूसरेको दर्द होगा, तब अपने दर्दके दृष्टान्तसे—कि हमको कभी दर्द हुआ था—उसका अनुमान होगा।

अच्छा! फिर चल गयी योगकी चर्चा कि योगी लोग दूसरोंके चित्तकी बात जान लेते हैं। अब देखो! हमसे पोल-पट्टी मत खुलवाओ। हम 'पतंजलि'का भी खण्डन कर सकते हैं भला! हम वेदान्ती हैं। हम किसीका लिहाज नहीं कर सकते हैं। यदि कोई हमारे सामने पोथी लाकर रख दे कि देखो! योगदर्शनमें यह लिखा है, तो हम उससे डरेंगे थोड़े ही। आहा! हम जानते हैं कि हम जिस दर्शनमें स्थित हैं—जिस अनुभवमें स्थित हैं, उसमें योग तो केवल एक व्यक्तिगत वृत्तियोंका विचार होकर रह जाता है या वृत्तियोंकी शान्ति होकर रह जाता है। योग तो एक व्यक्तिगत स्थिति है और अद्वैत एक मूल तत्त्व है। ऐसे समझो कि विषयी एक घड़ा है, जिसमें शराब भरी है। योगी एक घड़ा है, जिसमें दूध भरा है। तत्त्वज्ञानी तो समूची पृथ्वी ही है। इतना फरक दोनोंमें है। यदि योगी निर्मल घटाकाश है—उसके भीतर और कुछ नहीं है, तो विषयी पुरुष मैल भरा घटाकाश है;

परन्तु, वह घटाकाश ही है। योगी और भोगी–दोनों घटाकाश ही हैं। महाकाशके साथ उनकी एकता नहीं है। उनको अपनी एकताका बोध भी नहीं है। नारायण! जब योगकी चर्चा आयी, तब मैंने कहा–'भाई! आप योगकी बात तो उनसे करो, जिन्होंने योगदर्शन न देखा हो। उसकी तो ऐसी पोल-पट्टी है। है न?' दूसरेके मनका ज्ञान कैसे होता है? इसकी युक्ति योगदर्शनमें बतायी है।

एक बार हमने एक योगीसे पूछा–'क्या आप हमारे मनकी बात जानते हैं?' बोले–'हाँ! जान सकते हैं।' देखो! उन्होंने यह नहीं कहा कि 'मैं जानता हूँ।' उन्होंने कहा कि 'मैं जान सकता हूँ।' हमने पूछा–'कैसे जान सकते हैं?' उन्होंने योगदर्शनका सूत्र उठाकर हमारे सामने उसकी व्याख्या कर दी। योगदर्शनका सूत्र है–**प्रत्ययस्य संयमात् परचित्तज्ञानम्**। अपने प्रत्ययका संयम करनेपर परचित्तका ज्ञान होता है। प्रत्यय माने वृत्ति। हृदयमें वृत्तियोंका जो उत्थान होता है–मनमें जो संकल्प-विकल्प उठते हैं, उनमें धारणा-ध्यान और समाधि लगानेसे–**त्रयमेकत्र संयमात् परचित्त-ज्ञानम्**। अपनी चित्त-वृत्तियोंको ठीक-ठीक देख लेनेपर दूसरेकी चित्त-वृत्तियोंका ज्ञान हो जाता है। जैसे हमको जो चीज प्रिय लगती है, उसको देखकर हमारा मन उसको उठा लेनेको होता है, वैसे दूसरेको जो चीज प्रिय लगती है, उसको देखकर उसके मनमें भी उसको उठा लेनेकी इच्छा जाग्रत् हो जाती है। बस!

अच्छा! एक दूसरा सिद्धान्त बताते हैं। योगका जो इससे भी गम्भीर सिद्धान्त है, वह इससे थोड़ा दूसरा है। वह क्या है? वृत्तियाँ व्यक्तिगत होती है। चित्त सत्त्व सारी सृष्टिका एक है। वहाँ सम्पूर्ण वृत्तियोंका बीज-समग्र सृष्टिकी वृत्तियोंका बीज विद्यमान होता है। धारणा-ध्यानके बाद जब किसी वस्तुको जाननेके लिए अपनी वृत्तियोंका निरोध करके चित्त-भूमिमें स्थित होते हैं–निरोध-भूमिमें स्थित होते हैं और उसमें जब डुबकी लगाते हैं, तब उसका दर्शन हो जाता है।

हमको आपको यह बात सुनानी है कि हम लोग दूसरोंके बारेमें कल्पना करते हैं। हम अपने नमूनेपर दूसरेके मनकी केवल कल्पना करते हैं। हम लोग बचपनमें क्या बदमाशी करते थे? वह आपको सुनाते हैं।

राजस्थानी भाषामें-मारवाड़ी भाषामें यह 'बदमाशी' शब्द बहुत हलका है। हमारे गाँवमें तो इसको बहुत भारी मानते हैं। यदि किसीको बदमाश कह दें, तो डण्डा मार दे। है न? लेकिन, मारवाड़ी भाषामें तो 'बदमाश' प्यारका शब्द है। बच्चोंको बड़े प्यारसे इस नामसे पुकारते हैं। अच्छा! अब आपको यह बात सुनाते हैं कि बचपनमें हम क्या बदमाशी करते थे? यदि स्कूलमें-से छुट्टी लेनी होय, तो जाकर मास्टर साहबसे कहते कि 'मास्टर साहब! मेरे पेटमें बहुत दर्द हो रहा है।' अब यह बात तो वैद्यजीको नाड़ी पकड़नेपर भी मालूम न पड़े कि पेटमें दर्द है। यदि कह दे कि सिरमें दर्द है, तो वह जो जाँच करनेका उपकरण होता है, उससे भी सिर दर्दका पता नहीं चलता है। सिर दर्दमें हमेशा 'ब्लड-प्रेशर' (Blood Pressure) भी नहीं बढ़ता है। बच्चेके कहनेपर भी कि मेरे सिरमें दर्द हो रहा है, यह मानना ही पड़ता है कि भाई! जब इसको दर्दका अनुभव हो रहा है, तब हमको उसपर शंका करनेका क्या कारण है? मास्टरसे झूठमूठ कह दिया कि 'हमारे सिरमें दर्द है। हमारे पेटमें दर्द है।' मास्टरसे छुट्टी लेली और चले गये अमरूदके बगीचेमें। अमरूदके पेड़ छोटे-छोटे होते हैं। मौजसे चढ़ गये और मस्तीसे अमरूद खाने लगे। नारायण! दर्दका पता नहीं चलता है। मानकर ही चलना पड़ना है। दूसरेके मन में यह है-यह बात केवल कल्पनासे आती है। हम अपने नमूनेपर उसके मनकी केवल कल्पना करते हैं। हाँ! यदि कोई मुस्कुराता है, तो हम समझते हैं कि इसका दिल भी मुस्करा रहा है। ऐसा हम समझते हैं; लेकिन, क्या वास्तुस्थिति यही है? क्या उसकी मुख-मुस्कान सचमुचमें दिलकी मुस्कानसे निकलती है?

एक बार हमसे बड़ा अपराध हुआ। हम आपको बताते हैं। हमारे पास एक बड़े-बूढ़े रहते थे। वह हमसे बहुत बड़े थे। हम उनके छोटेसे बच्चे थे। वह बड़ी उमरके थे; परन्तु, वह हर समय चुहलबाजी करते रहते थे। वह बड़े विद्वान् भी थे। वह बड़े प्रतिष्ठित भी थे। लेकिन, वह हर समय कुछ-न-कुछ मजाक-हँसी-खेल करते रहते थे। चुटकुला बोलते रहते थे। दो-दो चोंचें करते रहते थे। अब उस समय तो हम अपनेको बिलकुल साधक मानते थे। हमको उन बड़ी उमरके-विद्वान्-प्रतिष्ठित सज्जनकी यह सब चुहलबाजी-चुटकुलेबाजी, हास-परिहास, व्यंग्य-चोंचे बिलकुल भी अच्छी नहीं लगती

थीं। एक दिन हमने कह ही दिया कि 'यह सज्जन दिन भर मजाक करते रहते हैं। हमको तो यह सब बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता है।' उस साधुने हमको कहा—'भलेमानुस! तुम समझते नहीं हो। इनकी छह तो बेटी हैं। उनमें से पाँच विधवा हो चुकी हैं। विधवा होनेके बाद वे पाँचों बेटियाँ बापके घरमें ही रहती हैं। उनके दो बेटे थे। एक मर गया। एक गुण्डा हो गया। पैसा घरमें है नहीं। उनको दो सौ रुपया मदद में मिलता है। उसीसे सारी गृहस्थी चलाते हैं। उनके हृदयमें इतनी पीड़ा है कि तुम उसका अन्दाज ही नहीं लगा सकते हो। यदि वह मजाक न करें, चुटकुले न बोलें, हास-परिहास न करें, व्यंग्य न बोलें, तो अपने दिलकी पीड़ाको बरदाश्त कैसे करें? वह अपना दुःख मिटानेके लिए अपना समय हँसी-मजाकमें काटते हैं। यदि वह गम्भीर हो जायें, तो सारा दुःख उनके ऊपर सवार हो जायेगा और वह बिचारे बड़े दुःखी हो जायेंगे। इसलिए, उनकी यह चुहलबाजी-चुटकुलाबाजी हर समय होती रहे। उनका यह हास-परिहास-व्यंग्य हर समय होता रहे। उनका यह हँसी-मजाक हर समय चलता रहे। इसीमें उनकी भलाई है भला! तुम उनके हृदयकी पीड़ाको समझते नहीं हो; इसलिए, तुम्हें यह सब अच्छा नहीं लगता है। जब तुम उनके दिलके दर्दको समझोगे, तब तुम्हें भी यह सब दुःख बरदाश्त करनेकी कला लगेगी।' हमसे उस साधुने ऐसे कहा हो! यह हमारे बचपनकी बात है। वह सज्जन महाराष्ट्रके थे। अब देखो! पीड़ामें-से भी मुस्कान निकलती है। हम उनकी मुस्कुराहटको-हँसीको समझ नहीं पाते थे। हम यह समझ ही नहीं पाते थे कि उनकी असह्य-भयंकर पीड़ामें-से उनकी यह मुस्कान निकलती है-उनकी यह हँसी गूँजती है-उनकी चुटकुलेबाजीके कहकहे लगते हैं। साधुने हमको यह रहस्य समझाया हो!

नारायण! यह जो सृष्टिका संचालन हो रहा है, इसमें अपने अनुकूल वस्तुको प्राप्त करके हर्ष होता है। अपनी बराबरी करने वालेको देखकर अमर्ष होता है-चिढ़ना होता है। आगेके स्थान-समय-वस्तु-व्यक्तिको सोचकर भय होता है। भय भविष्यका होता है। भय वर्तमानमें नहीं होता है। एक सेकेंड बादका होगा; लेकिन, बादका होगा। भय हमेशा भविष्यत् वृत्ति होता है। अमर्ष बराबरीवालेका होता है। हर्ष अनुकूल विषयसे होता है।

जीवन्मुक्त तो इन सबसे—हर्ष अमर्ष-भयसे मुक्त है। अब ल्यो! यह तो बड़ी विचित्र बात है। आदमी है और मुक्त है।

हम आपको यह भी निवेदन कर दें कि हमारे वैष्णवाचार्योंमें-से कोई भी जीवन्मुक्तिको स्वीकार नहीं करता है। रामानुज-निम्बार्क-वल्लभ-मध्व-श्रीकृष्ण चैतन्य—कोई भी जीवन्मुक्तिको स्वीकार नहीं करते। शैवाद्वैत-शाक्ताद्वैत—यह तो जीवन्मुक्तिको स्वीकार करते हैं। अवधूत-शाक्तावधूत और अद्वैतवादी जीवन्मुक्तिको स्वीकार करते हैं। जीवन्मुक्तिका यह अर्थ रहता है कि उनको न तो किसी साध्यकी प्राप्ति करनी है और न तो किसी साध्यकी प्राप्तिके लिए साधना करनी है। वे साधन और साध्यके भेदभावसे मुक्त होकर सहज जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनका जीवन बिलकुल सहज-सरल बीतता जा रहा है। आहा! बोले—यह बात कैसे हुई? बताओ! अगले श्लोकमें इसकी युक्ति है।

**शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।**
**यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥**

जीवन्मुक्त किसको कहा जाता है? यह वाग्व्यापार—यह बोलनेका ढंग भी ध्यान देने योग्य है। अहं जीवन्मुक्तः—मैं जीवन्मुक्त हूँ—ऐसे नहीं बोला जाता है। मैं जीवन्मुक्त हूँ—यह तो व्यक्तिका अभिमान है। अच्छा! देखो! सः जीवन्मुक्तः—वह जीवन्मुक्त है—ऐसे भी नहीं बोला जाता है। वह जीवन्मुक्त है—यह तो श्रद्धाका विषय है। भला बताओ! दूसरेकी जीवन्मुक्ति तुमको कैसे दिखेगी? दूसरेकी जीवन्मुक्ति तो दृश्य नहीं है और अपनेमें जीवन्मुक्तिका अभिमान नहीं है। हम बोलते तो किस्से-कहानी ही हैं; लेकिन, आप इसपर विचार करो। **अहं जीवन्मुक्तः**—यह अभिमान है। **सः जीवन्मुक्तः**—यह श्रद्धा है। **स जीवन्मुक्त उच्यते**—यह संस्कृत भाषामें बोलनेकी भंगी है। मैं जीवन्मुक्त हूँ—ऐसा नहीं। वह जीवन्मुक्त है—ऐसा भी नहीं। शास्त्रकी भाषामें ऐसे महात्माको जीवन्मुक्त कहा जाता है। उच्यते। प्रवचनविषयः भवति। वह प्रवचनका विषय होता है।

कैसा महात्मा? **शान्तसंसारकलनः**। आप 'कलना' शब्दके अर्थपर थोड़ा ध्यान देंगे, तो आपको मालूम पड़ेगा। गणितमें संकलन होता है। है न? गिनती-पर-गिनती बोलते गये और बादमें उसको जोड़कर इकट्ठा कर

लिया। उसका नाम हो गया–संकलन। ऐसे हमारे सामने जो यह व्यक्ति है न, वह सहृदय व्यक्ति है या दुष्ट हृदय व्यक्ति है, संकलन करता है। चुन-चुनकर अपने भीतर इकट्ठा करता जाता है। कलनाका अर्थ है–संकलन करना। इकट्ठा करना। बोले–'भाई! इसने तो पैसा इकट्ठा करना छोड़ दिया। बड़ी भारी बात है। इसने तो ईंटे इकट्ठा करना छोड़ दिया। बड़ी भारी बात है। चेले इकट्ठे करने छोड़ दिये। बड़ी भारी बात है।' जहाँ संन्यासियोंका वर्णन आता है, वहाँ यह भी वर्णन आता है कि उन्होंने पैसा इकट्ठा नहीं किया। ईंट-पत्थर इकट्ठा नहीं किया। आदमी इकट्ठे नहीं किये। जब संन्यासी धर्मका वर्णन आता है, तब उस प्रसंगमें यह भी आता है–**संग्रहः शिष्यसंग्रहः**। शिष्योंका भी संग्रह नहीं करना। ज्योतिष नहीं बताना। दवा नहीं बताना। भूत-प्रेत नहीं बताना। यह सब संन्यासी धर्ममें आता है।

अब हम जीवन्मुक्तकी चर्चा करते हैं। जीवन्मुक्त केवल संन्यासी नहीं होता। जीवन्मुक्त तो जनकादिके समान गृहस्थ भी हो सकते हैं। संन्यास तो आश्रम है। जीवन्मुक्ति वासनाक्षय-मनोनाश-नाशोपाधिक तत्त्वज्ञान है। सोपाधिक ज्ञान है; परन्तु है ज्ञान। तत्त्वज्ञान। अन्तःकरण दो रकमके होते हैं। एक वह है, जिसमें वैराग्यकी धारा भरी हुई है और एक वह है, जिसमें राग-द्वेषकी धारा भरी हुई है। जिस अन्तःकरणमें राग-द्वेषकी धारा बहती है, वह जीवन्मुक्त नहीं हो सकता है। जिसके अन्तःकरणमें वैराग्यकी धारा प्रवाहित होती है, उसकी वेशभूषा चाहे कुछ भी हो, वह जीवन्मुक्तिकी ओर उन्मुख हो जाता है। वहही जन्मसे भी ऐसा होता है। जन्मसे ही किसी-किसीका अन्तःकरण रागोपाधिक होता है और किसी-किसीका अन्तःकरण वैराग्योपाधिक होता है। आहा! अब एक बात और देख लो। वैदिक धर्मके अनुसार-पूर्व जन्मके अभ्यासके अनुसार जन्मसे रागोपाधिक और वैराग्योपाधिक–दो तरहका अन्तःकरण हो जायेगा। जो लोग पूर्वजन्म नहीं मानते हैं, उनके लिए दो प्रकारका अन्तःकरण ऐसे मानना पड़ेगा कि यदि माता-पिताका अन्तःकरण वैराग्य-सम्पन्न होगा, तो बेटेमें भी थोड़ा वैराग्य आयेगा और यदि माता-पिताका अन्तःकरण राग-द्वेषवाला होगा, तो बेटा भी राग-द्वेष करनेवाला होगा। आहा! दोनों ही बातें देखनेमें नहीं आती हैं। इसका कोई अदृष्ट हेतु स्वीकार करना पड़ता है।

अन्तःकरण दो तरहके होते हैं। एक अन्तःकरण राग-द्वेष करनेवाला होता है और एक ऐसा अन्तःकरण होता है, जिसमें वैराग्यकी धारा बहती रहती है। योगदर्शनमें इसको विवेक निम्न बोला गया है। विवेक निम्न अन्तःकरणका झुकाव विवेककी तरफ होता है। एक विषय निम्न अन्तःकरण होता है। अब देखो! महाराज! गंगाजी बहती हैं। गंगाजीमें गण्डकी नदी आकर मिलती है। गण्डकी नदीका एक-एक पत्थर शालिग्राम होता है। गण्डकी नदी आसाम और उत्तरी बिहारकी सीमा बनाती है। गंगाजीमें कर्मनाशा नदी भी आकर मिलती है। कर्मनाशामें पाँव रखनेसे लोग पुण्यका नाश मानते हैं। कर्मनासा थोड़ी दूरतक बिहार और उत्तर प्रदेशकी सीमा बनाती है। नारायण! चित्तमें रागकी धारा कर्मनाशाके समान बहती है और वैराग्यकी धारा गण्डकीके समान बहती है। राग और द्वेषकी दोनों धारा आकर चित्तमें मिल जाती हैं। आप अपने चित्तकी धारापर ध्यान दो। वह चुन-चुनकर रखता जाता है। क्या रखता है? संसारको चुनता है। यह हमारा शत्रु है-यह चुनकर बहीखातेमें लिख लेता है। यह हमारा मित्र है-यह चुनकर बहीखातेमें लिख लेता है। संसारी लोग बड़ा चुन-चुनकर रखते हैं। महाराज! इसके बारेमें अब क्या बतावें?

हमारी आठ पीढ़ी पहले दो परिवारोंमें लड़ाई हो गयी थी। हमारे आठ पीढ़ी पहलेके पूर्वज अपने वंशके लिए सौगन्ध दिला गये थे कि 'उस परिवारवालोंके घरमें कभी खाना नहीं-कभी पीना नहीं।' पूर्वज शपथ दिला गये थे। आठ पीढ़ीसे शत्रुता चली आ रही थी। न हमारे घरमें वह लोग खायें-पियें और न उनके घरमें हम खायें-पियें। हम अपने पूर्वजोंकी बात सुनाते हैं हो। जब हम साधुओंके पास जाने लगे, तब यह बात उनके ध्यानमें ले आये। हमने बताया कि 'वे लोग हम लोगोंसे दुश्मनी करते थे। वे हमारे ब्याह-शादीमें आते थे; परन्तु, खाते-पीते नहीं थे। हम लोग भी उनके घरमें ब्याह-शादीमें जाते थे; परन्तु, खाते-पीते नहीं थे।' साधुओंने कहा कि 'नहीं! यह द्वेष पालना ठीक नहीं है।' महात्माओंकी आज्ञासे हमने फिर जाकर उन लोगोंके घरमें खाना-पीना शुरू कर दिया। वे लोग भी हमारे घरमें आकर खाने-पीने लगे। वह आठ पीढ़ीसे आता हुआ द्वेष शान्त हो गया। **शान्तसंसारकलनः।**

यह जो हम अपने चित्तमें राग-द्वेष चुनकर रखते हैं न, यह है संसारकलना। आखिर आप क्या चुनकर रखते हैं? एक आदमीका स्वभाव है कि वह बगीचेमें-से गुलाबका फूल चुन लेता है। एक आदमी सड़कपर पड़े हुए कागजके टुकड़े, रस्सी और गन्दी-गन्दी चीजें इकट्ठी करके अपने कन्धेपर डालता जाता है। वह पागल ही तो हुआ न? आपने ऐसे पागलको सड़कपर जरूर देखा होगा। एक बार मैंने एक पागलसे पूछा—'तुम ऐसा क्यों करते हो?' उसने कहा—'सर्वसंग्रह कर्त्तव्यं।' वह संस्कृत तो जानता नहीं था। हाँ! ऐसे बोला—'**सर्वसंग्रह कर्त्तव्यं। कः काले फलदायकः।**' समयपर न जाने कौन-सी चीज काममें आजाये? आहा! आपका मन क्या चुनाव करता है? आप कौन-सी चीज चुनकर अपने दिलमें रखते हैं?

जीवन्मुक्तका यह स्वभाव होता है कि वह संसारको चुन-चुनकर अपने हृदयमें नहीं रखता है। शान्त-संसार-कलनः। शान्तः संसार-संकलनं यस्य। इसने हमको यह गाली दी। अब यह हमेशाके लिए हमारा दुश्मन हो गया। अब हम इससे बदला लेंगे। इससे हमारा राग है। अतः इसको हम हमेशा अपनी छातीमें घुसेड़ कर रखेंगे। यह बात जीवन्मुक्तके मनमें नहीं होती है। उसके चित्तकी यह विशेषता है कि वह निर्मल शीशेकी तरह है। चित्तकी नदीमें मुर्दा भी बह रहा है और फूल भी बह रहा है। मुर्दा भी बहता जा रहा है और फूल भी बहता जा रहा है। उसका यह स्वभाव नहीं है कि वह नदीमें बहते हुए मुर्देको इकट्ठा करे। हम लोग बनारसमें नदी-बिहार करते हैं। हाँ! जब बरसातका दिन नहीं होता है, तब हम नावपर गंगाजीमें जाते हैं। जब बनारसमें होते हैं, तब हर रोज हमारे प्रायः दो-तीन घण्टे नावपर बैठकर गंगाजीमें घूमनेमें बीतते हैं। कभी-कभी तो मरे हुए पशु गंगाजीमें बहते हुए दिखायी पड़ते हैं। कभी-कभी गाय-ऊँटके मुर्दे भी गंगाजीमें बहते हुए दिखायी पड़ते हैं। उनको देखकर हमारे मनमें यह नहीं होता है कि इनको पकड़कर खींचो और किनारे ले चलो और फिर जलाकर जलकी गन्दगी दूर करो। अगर राजघाटके नीचे नाव चली जाये। तो श्वास लेना कठिन हो जाता है। सारे बनारस शहरकी गन्दगी राजघाटके नीचे गंगाजी में मिलती है। अबकी बात हम नहीं जानते हैं। पहले तो यही होता था। शायद अब उसकी कोई व्यवस्था ऐसी कर ली गयी हो कि गन्दगी वहाँ न मिले।

देखो! असलमें, उद्वेगका हेतु यही है कि हम चित्तमें संसाको चुन-चुनकर रखते हैं। संस्कृतमें 'चित्त' शब्दका अर्थ चिञ् चयने धातु है। चिनोति। चुनना। चिनुते। यह चिञ् चयने धातुसे तुक् प्रत्यय होता है। तो चित् शब्द बनता है और उसीसे त प्रत्यय होकर चित्त बनता है। आहा! नारायण! यह चित्त क्या है? अचेतत इति। इसने चुन-चुनकर अपने भीतर चीजें रखी हैं। चुनकर कि यह हमारा दोस्त है। चुनकर कि यह हमारा दुश्मन है। चुनकर कि यह चीज हमको खानेमें बड़ी अच्छी लगती है। चुनकर कि घरमें मिर्चका अचार रहना बहुत जरूरी है। जैसे हम घरमें चीजें रख लेते हैं, वैसे चित्तमें रख लेते हैं। इसीका नाम संसार-कलना होता है। तुमने अपने दिलमें क्या-क्या चीजें भर रखी हैं? जीवन्मुक्त वह है, जिसका चुनाव बन्द हो गया है। शान्त संसार-कलना। दिखता सब है; लेकिन, शान्त संसार-कलनः। कलावानपि निष्कलः।

आपसे एक बात बताते हैं। यदि आप सड़कपर कभी थूक देखते होंगे, तो आप और भी थूक देते होंगे। हाँ! कई लोग ऐसे होंगे, जो थूक देते होंगे। थूक देखकर थूकपर थूक दिया। पहलेसे ही सड़क गन्दी थी। आपने और गन्दी कर दी। हाँ! अच्छा देखो! आपके मुँहका थूक सड़कपर जानेपर तो गन्दा हुआ; लेकिन, जबतक आपके मुँहमें था। तबतक गन्दा क्यों नहीं था? आपकी पिशाब बाहर निकली, तब वह गन्दी; लेकिन, जबतक वह आपके शरीरके भीतर है, तबतक आप उसको गन्दा क्यों नहीं मानते हो? जब मल बाहर निकल गया, तब गन्दा और जबतक पेटमें है, तबतक गन्दा क्यों नहीं? देखो! इसका एक रहस्य है। वह रहस्य यह है कि जबतक कोई भी चीज 'मैं'के अन्तर्गत होती है, तबतक वह शुद्ध होती है और जब वह 'अन्य'के अन्तर्गत होती है, तब अशुद्ध हो जाती है। यह दुनिया तभी तक अच्छी और बुरी है, जबतक अनात्माके रूपमें है।

समग्र विश्व जीवन्मुक्तका शरीर है। कर्मनाशा भी उसका शरीर है। गण्डकी भी उसका शरीर है। नर्मदा भी उसका शरीर है। गंगा भी उसका शरीर है। सोनभद्र भी उसका शरीर है। मलाकार-परिणत मृत्तिका भी उसका शरीर है। पूज्य बालुकालिंग भी उसका शरीर है। बालुकासे निर्मित जो कांजीवरम्के महादेव हैं, वह भी उसके स्वरूप हैं; क्योंकि, वह मृत्तिका है-

वह मिट्टी है। वह न तो मलाकार परिणामी पिण्डमें अहंभाव रखता है और न ही शिवाकार परिणामी पिण्डमें अहंभाव रखता है। पिण्डमें जो अहंभाव है, वह उसका छूट गया है। तब क्या ब्रह्माण्डमें उसका अहंभाव है? नहीं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डमें भी उसका अहंभाव नहीं है। तब क्या मायामें उसका अहंभाव है? माया तो अदृष्ट है। **जन्ममारोपमं तेषां सा च माया न विद्यते।** 'माण्डूक्यकारिका'के 'अलातशान्ति-प्रकरण'में यह प्रसंग आता है। **सा च माया न विद्यते। अविद्यमानस्य इव माया इति नाम।** 'स्वयंप्रकाशानन्द सरस्वती'ने कारिकापर टीका लिखी है। उन्होंने कहा- **अविद्यमानतैव माया इति उच्यते।** जो चीज बिलकुल नहीं है, उसको माया कहते हैं। मीमांसक लोग उसको अपूर्व कहते हैं। नैयायिक लोग उसको अदृष्ट कहते हैं। वेदान्ती लोग उसको अनिर्वचनीय कहते हैं। वेदान्त प्रक्रियामें अनिर्वचनीयता भी अन्यदृष्टिसे है। स्वदृष्टिसे नहीं है। आहा! **स्वयंप्रकाशे चिदात्मनि आत्मये।** हम तो स्वयं प्रकाश चिदात्मा ब्रह्ममें बैठे हुए हैं। हमारे अन्दर माया-छाया क्या होती है? जहाँ न पिण्ड अवच्छेदक है, न ब्रह्माण्ड अवच्छेदक है, न माया अवच्छेदक है, उस परब्रह्म परमात्मासे जिसने अपनी एकताको जान लिया है—जिसकी एकता निरावरण हो गयी—अविद्याका निराकरण हो गया, वहाँ अपने स्वरूपके सिवाय तो और कुछ है ही नहीं। यह शत्रु है और यह मित्र है, इसको भी वह जीवन्मुक्त इकट्ठा करके नहीं रखता है। यह रागास्पद है और यह द्वेषास्पद है, इसको भी वह इकट्ठा करके नहीं रखता है। यह हर्षप्रद है और यह भयप्रद है, इस कल्पनाको वह इकट्ठा करके नहीं रखता है। **कलावानपि निष्कलः।**

बोले—'भाई! तब तो तुम किसी गैरमाकूल-नामाकूल आदमीको भी जीवन्मुक्त कह सकते हो।' बालकपनेमें कैसा-कैसा तमाशा होता है। हम वृन्दावनमें रहते थे। एक सज्जन थे। वह कहते थे कि 'जीवन्मुक्तको तो होश ही नहीं रहता है कि हम क्या खा रहे हैं? हम क्या पी रहे हैं? हम कहाँ चल रहे हैं? हम क्या कर रहे हैं?' आहा! जीवन्मुक्तको होश-हवास नहीं रहता है। इसपर हमको सूझा मजाक। अच्छा! सुनो। 'श्रीउड़ियाबाबाजी'के एक बड़े प्रेमी भक्त हैं। उनका नाम है—'मुंशीलाल'। बाबाने स्वयं कहा था कि 'यह आदमी हमसे सच्चा प्रेम करता है।' अभी मुंशीलाल जिन्दा हैं। उनकी पत्नी

भी है और वह लड़की, जिसके बारेमें मैं चर्चा कर रहा हूँ, वह भी है। उस समय वह लड़की ग्यारह-बारह वर्षकी थी। वह पागल थी। कुछ भी उठाकर मुँहमें डाल ले। कभी शरीर परसे कपड़ा हटाकर फेंक दे। नंगी हो जाये। चाहे कुछ कर ले। चाहे कहीं चली जाये। मैंने उन सज्जनसे कहा कि 'भाई! मैं एक पुस्तक लिखने वाला हूँ।' लिखनेका अभ्यास तो मेरा था ही। वह बोले-'क्या पुस्तक लिखोगे?' मैंने कहा-'मैं इस लड़कीकी जीवनी लिखना चाहता हूँ।' वह बोले-'इस लड़कीमें ऐसा क्या है कि जीवनी लिखोगे?' मैंने कहा-'यह बिलकुल जीवन्मुक्त है।' बोले-'क्यों?' मैंने कहा-'देखो! इसको तो होश-हवास ही नहीं है। क्या खाना? क्या नहीं खाना? क्या पहनना? क्या नहीं पहनना? कैसे रहना? कैसे नहीं रहना? इसको तो इसका होश ही नहीं है। यह ब्रह्म तो है ही है। अच्छा! तुम इसको ब्रह्म मानते हो कि नहीं?' बोले-'हाँ! ब्रह्म तो मानते हैं।' मैंने कहा-'देखो! यह ब्रह्म भी है और इसको होश-हवास ठीक रहता नहीं है। यह जीवन्मुक्त है। कहो तो इसके पूर्वजन्मकी भी कथा लिख दें कि इसको ज्ञान कैसे हुआ था? तीन-जन्मकी कथा लिख दें। इस जन्ममें यह बिलकुल जीवन्मुक्त है; क्योंकि, यह बदहवास रहती है-यह पागल है।' बोले-'नहीं भाई! जीवन्मुक्तिकी यह शर्त थोड़े ही है कि उसको होश-हवास न हो। उसको तत्त्वज्ञान होना जरूरी है। यदि तत्त्वज्ञान नहीं होगा, तो जीवन्मुक्त कैसे होगा?' हम बोले-'ठीक है। जब तत्त्वज्ञान होगा, तब यह शर्त-वर्त नहीं लगायी जा सकती है कि उसमें होश-हवास है कि नहीं है? तत्त्वज्ञानके साथ कोई शर्त-वर्त नहीं लगती है। न पहले, न पीछे। कोई शर्त नहीं लगती है।' **कलावानपि निष्कलः।** तत्त्वज्ञानी ऐसा होता है।

अब आपको क्या सुनावें? शास्त्रमें ऐसा-ऐसा वर्णन मिलता है। **भोगे भोगी गुणिनि गुणवान्। भोगिनि प्राप्तभोगः।** जब वह विद्वानोंमें गया, तब विद्वान्की तरह बात करने लगा। भोगियोंमें बैठा, तो भोगियोंकी तरह बात करने लगा। गुणवानोंमें गया, तो गुणवान् हो गया। संगीतज्ञोंमें गया, तो सा रे ग म प ध नी करने लगा। आसावरी और घनाक्षरीका भेद बताने लग गया। यह कौन-सी भैरवी है? यह बताने लग गया। आहा! खाने-पीनेवाले लोगोंके बीचमें बैठ गया। तो स्वाद बताने लग

गया कि ऐसी चीज कैसी होती है? ऐसी चीज कैसी होती है? हाँ! अरे! यहाँतक लिखा है—

**स्त्रीषु स्त्रैणो युवतिषु युवा वाग्मिषु प्रौढ़ वाग्मि।**
**धन्यः कश्चिद् त्रिभुवनजयी योऽवधूतेऽवधूतः।।**

यह बहुत पुराना है हो! जब वह युवाओंके साथ बैठा, तब युवा हो गया! हाँ! जब स्त्री-पुरुषकी चर्चा चलने लगी। तब उसमें भी शामिल हो गया। जब कोई अवधूत आगया। तब वह भी अवधूत है। योऽवधूतेऽवधूतः। आहा! परन्तु, एक बात ध्यान देने योग्य है। वह किसी भी व्यक्तित्वकी परछाईंको अपने अन्दर नहीं पकड़ता है। हाँ! व्यक्तित्वकी परछाईंको पकड़कर वह अपने अन्दर नहीं रखता है। उसको सम्पूर्ण कला ज्ञात है। उसको मकान बनाना आता है। उसको खटिया बुनना आता है। उसको जादूगरी आती है। उसको आयुर्वेद आता है। उसको धनुर्वेद आता है। उसको स्थापत्यवेद आता है। दक्षः। अनपेक्षः शुचिर्दक्षो। वह चौंसठ कला जानता है। सब कलाओंमें दक्ष होनेपर भी उसको अपनेमें कलाका अभिमान नहीं है। **कलावानपि निष्कलः।** चन्द्रमामें कलायें बढ़ती-बढ़ती पन्द्रह हो जाती हैं और फिर घटती-घटती एक रह जाती है—सोलहवीं। लेकिन, चन्द्रमा न घटता है और न बढ़ता है। ज्यों-का-त्यों रहता है। आप जानते हैं—पृथ्वीपर सूर्योदय भी होता है और सूर्यास्त भी होता है; लेकिन, सूर्यमें न सूर्योदय भी होता है और न सूर्यास्त होता है। **यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।** व्यवहार दृष्टिसे उसमें चित्त है और परमार्थ दृष्टिसे उसमें चित्त नहीं है। यह व्यवहार-दृष्टि और परमार्थ-दृष्टिका भेद भी व्यवहारमें ही है भला! हाँ!

एक बार वेदान्तियोंकी चर्चा हो रही थी। हम तो बड़े-बूढ़ोंकी वेदान्त-चर्चामें ही शामिल हुए हैं। हमने प्रश्न किया—'महाराज! सत्ता तीन तरहकी होती है—व्यावहारिक सत्ता, प्रातिभासिक सत्ता और पारमार्थिक सत्ता। एक सत्में यह तीन भेद कहाँसे आये? यह भेद व्यावहारिक हैं या पारमार्थिक हैं?' बोले—'भाई! परमार्थमें सत्ता तीन तरहकी नहीं होती है। वह तो अद्वितीय होती है। यह तीन भेदकी कल्पना भी व्यावहारिक ही है।' अब बीच-बीचमें वेदान्तकी कोई बात तो छेड़ देनी चाहिए न?

जीवन्मुक्त स्वदृष्टिसे अभिमानरहित होनेके कारण निष्कल है और शिष्यदृष्टिसे अत्यन्त निपुण होनेके कारण कलावान है। हमको महात्माओंने बर्तन माँजना सिखाया। हमको 'स्वामी योगानन्दजी'ने हाथ पकड़कर झाड़ू लगाना सिखाया। उन्होंने हमको बताया कि जब कमरा झाड़ना है, तब पूरे मनसे कमरा झाड़ो। ऐसा नहीं होना चाहिए कि इस कोनेमें यह धूल रह गयी, इस कोनेमें यह धूल रह गयी और इस कोनेमें यह धूल रह गयी। है न? अच्छा! उन्होंने सिखाया कि फूल तोड़ते समय फूलपर कहीं खरोंच न लग जाये, इसका ध्यान रखकर फूल चुनना चाहिए। आहा! स्वामी योगानन्दजीने हमको यह भी सिखाया कि रोटी कैसे बनाना चाहिए? **कलावानपि निष्कलः**। सारी कला जानते हैं; परन्तु, अपनेमें कलाका अभिमान नहीं रखते हैं।

**यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः**। हाँ! चित्त तो है। शीशेमें सबकी परछाईं पड़ती है; परन्तु, शीशा कैमरा नहीं है। उसमें फिल्म नहीं भरती है। जो सामने आया, उसकी परछाईं पड़ती गयी। चलता गया-चलता गया। है न? चित्त तो है। उसमें परछाईं पड़ती है। चित्तोपाधिकमें ही परछाईं पड़ती है। जिसमें चित्तकी उपाधि नहीं है, उसमें तो परछाईं भी नहीं पड़ेगी। आहा! वह स्वयं अपने स्वरूपमें निश्चित्त है। ऐसे महापुरुषको जीवन्मुक्त कहते हैं। वह व्यवहारी भी होता है।

आपको एक बात यह भी सुनानेकी है। हाँ! ब्रह्मा सृष्टि बढ़ानेवाले विभागमें रहकर भी जीवन्मुक्त रहता है। विष्णु पालन-पोषण विभागाध्यक्ष हैं। विश्वपति तो परमेश्वर है। सृष्टि-विभागके मंत्री ब्रह्मा हैं। पूर्ति-विभागके मंत्री विष्णु हैं। मुहैया करना विष्णुका काम है। पालन-पोषणके लिए अन्न देना। सिचाईका बन्दोबस्त करना। जल देना। जो चाहिए, सो सामग्री देना। खाना-पीना देना। दूध देना। दूधका समुद्र अपने नीचे दबाकर बैठे हैं कि जहाँ दूधकी जरूरत पड़े, वहाँ बिना नलके दूध पहुँचा दें। जैसे बेतारका तार जाता है, वैसे बिना नलोंके दूध भेजनेके विभागके मिनिस्टर हैं—विष्णु भगवान्। महाराज! जब कटाकटीका समय आवे, तब रुद्र आवे। युद्ध-विभागके अध्यक्ष रुद्र हैं। रक्षा-विभाग, प्रतिरक्षा-विभाग, आक्रमण-विभाग, प्रत्याक्रमण विभागके अध्यक्ष रुद्र हैं। महाप्रलय करते हुए भी रुद्र

जीवन्मुक्त हैं। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र—तीनों जीवन्मुक्त हैं। तीनोंका स्वामी ईश्वर है। जैसे प्रधानमंत्री होता है अथवा राष्ट्रपति होता है, वैसे ही ईश्वर है। नारायण! सारी सृष्टिका जो मालिक है, सो तो ईश्वर है।

देखो! एक बात जरा-सी कटाक्षकी बोलते हैं। जिन लोगोंके मनमें विश्वाधिपतिकी कल्पना नहीं है, उनके मनमें देहेश्वरकी कल्पना भी नहीं होती है। **स एष विश्वाधिपतिः सर्वेश्वरः। सर्वाधिपतिः सर्वज्ञः सर्वेश्वरः।** अगर तुम्हारे मनमें यह भाव होगा कि सम्पूर्ण विश्वका संचालक एक परमेश्वर है, तो तुम्हें यह माननेसे कोई दिक्कत नहीं पड़ेगी कि इस देहकी वृत्तियोंका संचालक एक जीव है। विश्वसृष्टिमें भी एक कर्त्ता-भोक्ता है—सर्वज्ञ सर्वेश्वर और इस शरीरमें भी एक कर्त्ता-भोक्ता है। अगर तुम यह एक कल्पना मान लोगे, तो धर्मकी सिद्धि होगी। अर्थकी सिद्धि होगी। कामकी सिद्धि होगी। इच्छानुसार। हाँ! मोक्षके लिए साधन होगा। साधनकी सिद्धि होगी। शरीरमें बैठ करके जीव साधन करता है और विश्व ब्रह्माण्डमें बैठकर परमेश्वर समग्र विश्वको पैदा करता है, पालन करता है और संहार करता है। विभाग अलग-अलग बना दिये हैं और खुद सबका मालिक रहता है। देहके स्वामी जीवमें जो चिन्मात्र वस्तु है, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका सृजन करनेवाली मायाके अधिपतिमें भी वही चिन्मात्र वस्तु है। दोनोंकी चिन्मात्रता एक है। उस चिन्मात्रताकी दृष्टिसे न माया है, न ब्रह्माण्ड हैं, न पिण्ड है, न सृष्टि है। चिन्मात्र वस्तु अखण्ड है। वह केवल ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। देखो! अब इस श्लोकमें जो आखिरी बात है—जीवन्मुक्तका स्वरूप, वह आपको कल प्रातः सुनायेंगे।

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# 20

**नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!**

**यः समस्तार्थजातेषु व्यवहार्य्यपि शीतलः।**
**परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते।।**

**यः समस्तार्थजातेषु व्यवहार्य्यपि शीतलः।** मनुष्य चाहे व्यवहारमें हो अथवा समाधिमें, जीवन्मुक्तका ऐसा कोई लक्षण होना चाहिए, जो दोनों दशामें एक हो। जो लक्षण समाधिकालमें रहता है और व्यवहारकालमें नहीं रहता है, वह जीवन्मुक्तका लक्षण नहीं है। जो लक्षण व्यवहारकालमें रहता है और समाधिकालमें नहीं रहता है, वह जीवन्मुक्तका लक्षण नहीं है। लक्षण नहीं है माने पहचान नहीं है। वह तो ऐसे ही है, जैसे किसीने कुर्त्ता निकाल दिया, तो दूसरा हो गया और कुर्त्ता पहन लिया, तो दूसरा हो गया। इसीको उपाधि बोलते हैं हो।

*दास कबीर जतन से ओढ़ी,*
*ज्यों-की-त्यों धरी दीनी चदरिया।*

जीवन्मुक्ति शब्दका अर्थ है कि काम करते हुए भी वैसे ही और समाधि लगाते हुए भी वैसे ही। समाधि एक पोशाक है। देखो! जब स्त्रियाँ विवाहमें जाती हैं, तब रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहनकर जाती हैं और जब मातमपुरसी करनेके लिए जाती हैं, तब बहुत सादी पोशाक पहनकर जाती हैं। इतनी बुद्धि तो है न! रंगीन पोशाक पहननेपर भी वही रहती हैं और सादी पोशाक पहननेपर भी वही रहती हैं। स्त्री तो वही है। ऐसे आत्मा बिलकुल वही है, चाहे वह व्यवहारकी रंगीन पोशाक पहन ले अथवा समाधिकी सादी पोशाक पहन ले। आत्मा तो बिलकुल एक है।

आपको जीवन्मुक्तकी एक विशेषता सुनाते हैं। यह निष्कृष्ट लक्षण है। संस्कृतमें निष्कृष्ट शब्दका अर्थ होता है—निचोड़ा हुआ। निष्कर्ष। निष्कर्षसे निष्कृष्ट शब्द बनता है। जीवन्मुक्तसे निकालके सब लक्षणोंमें-से निचोड़कर यह लक्षण बताते हैं। यह किताब 'अहमदाबाद'से छापकर 'निमित्तमात्र'ने भेजी है। अभी 'हेमलता'ने इस किताबकी चर्चा की है। जब

यह किताब अहमदाबादमें छप रही थी, तबकी बात सुनाता हूँ। यह निमित्तमात्र ऐसा मनोरंजक आदमी है कि जो चुटकुले होते हैं–रोचक अंशकी बात होती है, उसको वह झट संग्रह कर लेता है। यहाँ 'तेजपाल हॉल'में आया था। दो-तीन दिन व्याख्यानमें बैठा था। उनमें कोई रोचक बातें आगयीं, तो उनका संग्रह कर लिया। अहमदाबादमें जाकर तीन-चार दिनोंमें उनको छापकर आज यहाँ भेज दिया। अहमदाबादमें जब यह पुस्तक छप रही थी, तब एक आदमी हमारे ऊपर बहुत नाराज हुआ। उसने नाराज होकर चिट्ठी लिखी–'स्वामीजी! क्या आप यह चुटकुले ही सुनाते हो? रोचक-रोचक किस्से-कहानी ही सुनाते हो? क्या आप सिर्फ औरतोंके लिए कथा कहते हो? पण्डितोंके लिए कथा नहीं कहते हो?' ऐसे चिट्ठी लिखकर हमारे पास भेजी। अच्छा! देखो! असलमें, यह जो बोला जाता है न, उस बोलनेका मतलब क्या है? बोलनेका मतलब यह है कि दूसरी भाषाओंमें, दूसरी बोलियोंमें जो बात बहुत मुश्किल ढंगसे समझायी हुई है, उसको हम इतना आसान करके बोलें कि मामूली-से-मामूली आदमी भी उसको समझ जाये। भाषणका अभिप्राय होता है–निगूढ़तम भावको सरल बनाना। अन्यथा, बोलनेकी जरूरत ही क्या है? एकने कहा और दूसरेने समझा। बहुत बढ़िया। एकने कहा और दूसरेने नहीं समझा। चलो! यहाँतक भी ठीक है। लेकिन, अपना कहा अगर आप ही समझे, तो क्या समझे? हैं? अगर अपना कहा हुआ खुद ही समझते हैं, दूसरा कोई नहीं समझता है, तो आप क्या समझाते हैं? हाँ!

अच्छा! देखो! आपको जब जीवन्मुक्तकी पहचान बताते हैं। 'स्वामी रामतीर्थ'का पहला नाम 'तीर्थराम' था। पहले वह विवाहित थे। गृहस्थ थे। उनका बेटा हुआ। किसीने आकर उनको खबर दी कि 'आपके घरमें बेटा हुआ है।' वह बोले–'महासमुद्रमें-से एक बूँद छलक गयी। यह क्या आश्चर्य है?' दूसरेके घरमें बेटा होता है, तो जाकर बोलते हैं–'बधाई! बधाई!' मंगलगीत गाकर आते हैं–'आज नन्दघर बजत बधाई।' अयोध्यामें गाते हैं– 'बधैया बाजी हो।' बधाई गाकर-बजाकर-खेलकर-कूदकर आपसमें रंग डालकर नाचते भी हैं। गाँवमें तो नाचते हैं। जब बधाई गा-बजाकर, खेल-कूदकर, नाच-उछलकर अपने घरमें आते हैं, तब फिर वही दोस्ती और वही

दुश्मनी चलती है। वह तो थोड़ी देरके लिए दूसरेके घरमें गये थे। उसके रंगमें अपना रंग मिला दिया। बधाई मना ली। लौट आये। लेकिन, जब अपने घरमें लौटकर आते हैं, तब अगर किसीसे दुश्मनी होती है, तो फिर वही दुश्मनी चलती है और अगर किसीसे दोस्ती होती है, तो फिर वही दोस्ती चलती है। है न? हाँ!

अच्छा! दूसरेके घरमें ब्याहमें गये, तो लगा कि लक्ष्मी-नारायणका ब्याह हो रहा है। संस्कृत भाषामें तो ऐसे लिखते हैं कि कन्या लक्ष्मी है और वर नारायण है। हमारे यहाँ जब कन्यादानका संकल्प होता है न, तब ब्राह्मण लोग बोलते हैं–'**लक्ष्मीरूपिणीं इमां कन्यां श्रीधररूपिणे वराय तुभ्यं अहं सम्प्रददे।**' अर्थात् यह मेरी कन्या लक्ष्मी है और यह दूल्हा साक्षात् नारायण है। मैं नारायणको लक्ष्मीका समर्पण करता हूँ। देखो! किसीके ब्याहमें गये, तो लगा कि लक्ष्मी-नारायणका ब्याह हो रहा है। वहाँ भी मिठाई खायी-खिलायी। हँसे-खेले। मिले-जुले। हम इसी हॉलमें कई बार आये हैं। हम समझते हैं, जब 'मगनलाल जोशी'की लड़कीकी शादी थी, तब हम यहाँ आये थे। और भी कई शादियोंमें हम इस हॉलमें आये हैं। आये। 'रिसेप्शन' (Reception) किया। स्वागत किया। हँस-हँसकर बात की। आहा! हमको भी माला-वाला पहनायी गयी। चले गये। जाकर फिर पलंगपर सो गये।

अच्छा! अब आपको क्या बतावें? कोई मरता है, तो मातमपुर्सी मनानेके लिए जाते हैं। वहाँ जानेके पहलेसे मुँह बना लेते हैं कि वहाँ कहीं हँसी न आजाये। बिलकुल मुँह बना लेते हैं। आप इसको गलत नहीं समझना। अच्छा! देखो! घरवाला तो अकेला होता है और रुलानेवाले सौ आते हैं। वे पट्ठे पाँच-पाँच मिनटके लिए रोकर और रुलाकर चले जाते हैं। जाकर खाते हैं, पीते हैं, हँसते हैं-खेलते हैं-बाजारका काम करते हैं। घरवाला आदमी अलग-अलग जाकरके पाँच-पाँच मिनटके लिए झूठमूठ रोता है, तो उस बेचारेको पाँच-सौ मिनटतक रोना पड़ता है। रुलानेवाले सोचते हैं कि इस आदमीको अभी खूब रुला लेंगे, तो यह रोनेसे ऊब जायेगा और फिर ज्यादा नहीं रोयेगा।

अच्छा! **परार्थेष्विव पूर्णात्मा।** हम दूसरेके बेटेके ब्याहमें जाते हैं

और खुशी मनाकर लौट आते हैं। हम दूसरेके बेटेके जन्ममें जाते हैं और खुशी मनाकर लौट आते हैं। हम दूसरेकी मौतमें जाते हैं और वहाँ थोड़े आँसू गिराकर, थोड़े गम्भीर बैठकर, थोड़ा उसका गुणानुवाद गाकर, अपनी जगहपर फिरसे लौट आते हैं। जीवन्मुक्तका व्यवहार बिलकुल ऐसा ही है। परार्थेष्विव पूर्णात्मा। दुनियामें जब सूखाका प्रसंग आया अथवा बाढ़का प्रसंग आया, तब उसके प्रति सहानुभूति प्रकट कर दी। विवाह हुआ, तो खुशी मना ली। बेटा हुआ, तो बधाई गा दी। जैसे एक बुद्धिमान् व्यवहारी पुरुष यह सब करता हुआ भी अपनी स्थितिसे नीचे नहीं गिरता है–अपना घर नहीं छोड़ देता है, अपनी पत्नीको नहीं छोड़ देता है, अपना व्यवहार नहीं छोड़ देता है–वैसे जीवन्मुक्त पुरुष इन देहोंमें–इन इन्द्रियोंमें, इन मनोवृत्तियोंमें रहता हुआ भी अपने स्वरूपमें ज्यों-का-त्यों स्थित रहता है। जब मनमें हर्षकी वृत्ति आवे, तब हर्षित होता है। जब मनोवृत्तियाँ शान्त हो जायें, तब इनकी शान्तिमें शान्त रहता है। जब कभी विषाद आजाये, तब विषाद करता है। लेकिन, इन मनोवृत्तियोंके साथ रहता हुआ भी जीवन्मुक्त पुरुष ज्यों-का-त्यों अपने स्वरूपमें बैठा रहता है।

किसी दूसरेको घाटा हो जाता है, तो हम उसके पास जाते हैं और उसको समझाते हैं कि 'अरे भाई! अभी तो घाटा हुआ है। ठीक है। फिकर मत करो। फिर आमदनी हो जायेगी। हैं? आहा! यह तो प्रारब्धकी बात है। यह तो कुदरतकी बात है। दुनियामें कभी-कभी ऐसा हो जाता है। इत्यादि।' महाराज! दूसरेको तो समझा आते हैं; लेकिन, अपने जीवनमें कैसे रहना?

**यः समस्तार्थजातेषु व्यवहार्य्यपि शीतलः।**

एक महात्मा थे। अतरौलीमें रहते थे। अलीगढ़ जिलमें एक अतरौली कस्बा है। उस कस्बेके पास एक बड़ा भारी तालाब है। अभी उनकी जगह बनी हुई है। उनको एक सेठजी रोज दूध पिलाने जाते थे। खुद ही लेकर जाते थे। आपको क्या कहें? श्रद्धालु लोग कैसे करते हैं? एक बार हम लोग कहींसे जा रहे थे। दादाजीने कुचामनके राजा साहबको चिट्ठी लिख दी कि हम लोग अमुक गाड़ीसे गुजर रहे हैं और वह गाड़ी बाँदी कुई होकर गुजरती है। उनके सम्बन्धी यहाँ बैठे होंगे। राजा साहब कुचामनसे अपने हाथमें इतना बड़ा दूधका लोटा लटकाकर, चार-पाँच घण्टेकी रेलयात्रा करके

वहाँ–बाँदी कुई आये। मैंने पूछा–'और कोई साथ है?' बोले–'नहीं। ट्रेन तो अपने स्टेशनसे आती है। बैठकर चले आये।' एक दिलकी बात सुनाते हैं। है न? ट्रेनपर वहाँ दूध लेकर रातको नौ बजे आये। आहा!

अच्छा! अब वह बात सुना दें। सेठजी रोज खुद ही दूध ले जाकर अतरौलीके महात्माको पिलाते थे। एक बार सेठजी कहीं बाहर चले गये। बाहर जानेसे पहले वह अपने मुनीमको कह गये कि 'महात्माजीको रोज खुद जाकर दूध पिलाना।' मुनीमने सोचा कि जरा परीक्षा लेनी चाहिए कि महात्मा कैसा है? सच्चा है कि झूठा है? वह शामको मट्ठेमें–छाछमें नमक और लाल मिर्च डालकर ले गया और बोला–'महाराज! दूध पी लीजिये।' महात्माजीने रोजकी तरह पी लिया। मुनीमने पूछा–'महाराज! दूध कैसा है? ठीक है न?' महात्मा बोले–'अरे भैया! जैसा तूँ लाया है, वैसा ही है। है न?' जब तीन महीने बाद सेठजी वापिस आये, तबतक वह महात्मा रोज-रोज दूधकी जगहपर मुनीमके द्वारा लायी हुई नमक और लाल मिर्च डाली हुई छाछ पीते रहे। रोज मुनीम पूछता–'महाराज! दूध कैसा है? ठीक है न?' रोज महात्मा बोलते–'अरे भैया! जैसा तूँ लाया है, वैसा ही है। है न?' भला बताओ! क्या महात्माको मालूम नहीं पड़ता था कि दूध नहीं अपितु नमक और लाल मिर्च डाला हुआ मट्ठा–छाछ पी रहे हैं। मालूम पड़ता था हो! खूब अच्छी तरहसे मालूम पड़ता था। महात्मा सोचते थे–'चलो! बहुत दिन दूध पिया। अब थोड़े दिन छाछ ही सही। मिर्च नहीं खाता था। मिर्चका त्याग कर रखा था। अब सारी जिन्दगीकी मिर्च एक ही साथ आगयी है, तो क्या किया जाय? जो आ रहा है, वह ठीक ही है। जो हो रहा है, वह ठीक ही है।' यह है–जीवन्मुक्तका व्यवहार। व्यवहारमें शीतलता। वस्तु-सम्बन्धी व्यवहार हो अथवा व्यक्ति-सम्बन्धी व्यवहार हो, व्यवहारमें जीवन्मुक्तका लक्षण यह है कि शीतलता उसको नहीं छोड़ती है।

पानीको कभी-कभी गरम होना पड़ता है; लेकिन, आगपरसे उतारनेके बाद वह फिर ठण्डा हो जाता है। यही तो है। मिट्टी कभी-कभी गीली हो जाती है; परन्तु, वह सूख जाती है। आगमें-से कभी धुआँ निकलता है और कभी निर्धूम हो जाती है। वायुका झोंका कभी सुगन्ध लेकर आता है और कभी दुर्गन्ध लेकर आता है। आकाशमें कभी धूम और

कभी धूमरहित होता है। व्यवहार चाहे वस्तुसे किया जाये अथवा व्यक्तिसे, अपने स्वरूपका परित्याग नहीं होना चाहिए। अपने शरीरसे भी वैसा ही व्यवहार है। बेटा हुआ, तो बेटेके रूपमें भगवान् आये। माँ आयी, तो माँके रूपमें भगवान् आये। जिस माँके पेटसे पैदा हुए, वह तो हमारी जन्मदाता माता है। जिस पिताके वीर्यसे पैदा हुए, वह तो हमारा जन्मदाता पिता है। माता भी ईश्वर है। पिता भी ईश्वर है। जब पतिदेव आये, तब पति-परमेश्वर होकर आये। जब बेटे आये, तब भगवान् होकर आये। देखो! वल्लभाचार्यजी महाराजके घरमें सात बेटोंके रूपमें भगवान् आये। उनको तृप्ति ही न हो। भगवान्‌ने कहा—'एक बारके दुलारसे—वात्सल्यसे हमें सन्तोष नहीं हुआ। अभी हम दुबारा तुम्हारा स्नेह लेगें। तिबारा-चौबारा तुम्हारा प्यार-दुलार लेंगे।' सात-सात बार बच्चे होकरके भगवान् उनका स्नेह लेते रहे। भाई मेरे! व्यवहार चाहे जैसा हो—वस्तु सम्बन्धी हो अथवा व्यक्ति सम्बन्धी, अपनी शीतलता-मधुरता ज्यों-की-त्यों बनी रहनी चाहिए।

आपको सुनाया होगा। हम लोग मोटरसे 'मरीन ड्राइव' जा रहे थे। गाड़ीमें 'स्वामी प्रेमपुरीजी' बैठे थे। बरसातका दिन था। एक मोटर वालेने अपनी मोटर आगे निकाली। सड़कपर जो गँदला पानी था। वह उछलकर मोटरमें आ गया। आहा! वह मुँहमें भी चला गया। अब क्या होना था? जो ड्राइवर हमारी मोटर चला रहा था, वह बड़ा नाराज हुआ। देखो! स्वामी प्रेमपुरीजी क्या कहते हैं? 'भगवान्‌के चरणामृत और महात्माओंके चरणामृत तो लेते ही हैं। आज मोटरका चरणामृत मिल गया।' गन्दा पानी मुँहमें जानेपर भी स्वामीजी गरमाये नहीं हो। ठंडे ही रहे। ड्राइवरका गुस्सा भी उतर गया। वह भी हँसने लगा। असलमें, पहले तो हमारे ड्राइवरकी राय यह थी कि हम भी अपनी मोटर एक बार तेजीसे ले चलें और आगे बढ़ाकर उस मोटरमें बैठे लोगोंपर सड़कका गँदला पानी उछालकर उन्हें भिगो दें। है न? हाँ भला! यह तो स्वामी प्रेमपुरीजीकी बातपर वह ठंडा हो गया और हँसने भी लगा।

यह जो शीतलता है न, यह जीवन में होनी ही चाहिये। गर्म-से-गर्म बात को ठंडी बना देने की युक्ति जीवनमें आनी चाहिए। जो बात हँसी-

खेलमें टाली जा सकती है, उस बातको हँसी-खेलमें टालनेकी कला जीवनमें आनी चाहिए। जिस घटना-क्रमको-प्रसंगको हँसकर बिताया जा सकता है, उसको भी लोग गम्भीर बना देते हैं। यह बुद्धिमानी नहीं है। जब छींटाकसी होने लगती है-ताने बाजी होने लगती है, एक दूसरेपर तीर छोड़ने लगते हैं, तब अपना दिल भी जलता है और दूसरेका दिल भी जलता है। यह बुद्धिमत्ताका काम नहीं है। जो दूसरेके दिलमें भी जलन पैदा करता है और अपने दिलमें भी जलन पैदा करता है, वह नासमझ है। वह तो गाँवमें आग लगानेवाला आदमी है। है न? हाँ!

अच्छा! आपको एक बात सुनाते हैं। 'श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज' 'कासगंज' गये। कासगंजके भक्तोंने बड़ा ऊँचा सिंहासन बनाया और उड़ियाबाबाजीको कहा कि 'महाराज! आप इसपर बैठिये।' बाबा बैठ गये। वह धूलमें भी बैठते थे। अब सिंहासनपर बैठ गये। उन दिनोंमें आर्यसमाजका बड़ा जोर था। अब आर्यसमाजियोंने कहा-'जैसे आदमी हम, वैसे आदमी तुम। हम भी मनुष्य, तुम भी मनुष्य। हमारे सामने तुमको सिंहासनपर बैठनेका-ऊँचे बैठनेका क्या हक है?' श्रीउड़िया-बाबाजी महाराज बोले-'भैया! जहाँ कहो, वहाँ बैठ जाता हूँ। मैं उतर जाता हूँ।' बाबा सिंहासनपर-से उतरे और जाकर उनके बीचमें बैठ गये। अब सनातनियोंने कहा-'अगर तुम लोग ऐसा करोगे, तो हम तुमको मारेंगे। हाँ! पकड़-पकड़कर मारेंगे।' अब बाबा बोले-'अरे भाई! झगड़ा मत करो। मैं फिरसे सिंहासनपर बैठ जाता हूँ। तुम लोग आपसमें लड़ाई मत करो। हमको लड़ाई बिलकुल भी पसन्द नहीं है। तुम लोग हमको चाहे नीचे बैठा दो अथवा ऊपर बैठा दो। हमको कहीं भी बैठनेमें कोई हर्ज नहीं है।' बाबा फिरसे जाकर सिंहासनपर बैठ गये। चिड़िया पेड़के ऊपर बैठती है, तो क्या बड़ी हो जाती है? चींटी अपने बिलमें रहती है, तो क्या छोटी हो जाती है? महत्त्व संसारकी स्थितियोंमें नहीं है। महत्त्व जो है, वह अपने हृदयकी शीतलतामें है।

अच्छा! देखो! हम दूसरोंके घरमें मातमपुर्सी करके भी शोकग्रस्त नहीं होते हैं। हमको इसका बड़ा कड़ा अनुभव है। बचपनमें ही हो गया था। हमारे पितामहकी मृत्यु हुई, तो हमलोग उनको गंगाजी ले गये। जब चिता

लगायी गयी और उनका शरीर जलने लगा, तब वहाँ सैकड़ों आदमी होंगे। आनेपर तो सब लोग हमारे सामने बोले–'हाय! हाय! हमारे तो गुरुजी चले गये। हीरा खो गया। इतना बड़ा विद्वान् गया। इतना बड़ा ज्योतिषी गया। इतना बड़ा कर्मकाण्डी गया।' हाँ! हमारे सामने आनेपर तो सब लोग ऐसे ही बोले; परन्तु, जब वहाँ गंगा किनारे तीन घण्टे बैठना पड़ा, तब हमने देखा कि चार-चार, पाँच-पाँच, आठ-आठ आदमियोंने अपनी-अपनी टोली बनाली और अलग-अलग बैठ गये। उनमेंसे जो सिगरेट पीनेवाले थे, वे सिगरेट पीते थे। जो हँसी-मजाक करनेवाले थे, वे हँसी-मजाक करते थे। अब मरा तो हमारा दादा था। उनका दादा तो मरा नहीं था। है न? आहा! हमने मन-ही-मनमें कहा–'देखो! दुनिया की यही स्थिति है।'

दुनियामें इस शरीरके साथ और दूसरे शरीरोंके साथ जो कुछ हो रहा है, वह हमको जलानेके लिए नहीं है। हमको दुःखी करने के लिए नहीं है। हमको शीतल रखनेके लिए है। **बुद्धिः सन्तापं न प्राप्नोति।** इसका अर्थ हुआ कि दुनियाकी जलनसे वह जलता नहीं है। अथवा बुद्धिके जलनेसे भी वह नहीं जलता है। ऐसा अर्थ भी कर लें, तो कोई बात नहीं है। इसमें एक दृष्टिकोण है। बिना दर्शनकी जो क्रिया होती है या अभ्यास होता है, वह टिकाऊ नहीं होता है। जिसके अन्दर कोई 'फिलोसोफी' (Philosophy) नहीं-कोई दर्शन नहीं, वह क्रिया-वह साधना-वह अभ्यास-वह स्थिति ऐसी होगी कि जैसे कोई पराये घरकी औरत आवे और किसीको रिझाकर चली जाये। आप भले निष्क्रिय होकर बैठो–आँखें बन्द करके बैठो–वृत्तियोंको शान्त करके बैठो; परन्तु, यदि आप अन्धे होकर बैठते हो–यदि आपको दृष्टि प्राप्त नहीं है, तो वह स्थिति ऐसी ही होगी जैसे पराये घरकी कोई औरत आवे और किसीको रिझाकर छोड़ जाये। नारायण! यदि दर्शन नहीं होगा, तो वह स्थिति ऐसी होगी।

जीवनमें दर्शनकी आवश्यकता है। दर्शनके बिना जीवनमें दृढ़ता नहीं आती है। केवल भावना तो सपनेमें भी साथ नहीं देती है। केवल भावना तो सुषुप्तिमें भी साथ नहीं देती है। रोज-रोज कट जाती है। तुम हजार भावना बनाओ। तुम हजार कल्पना करो। अच्छा! देखो! आगसे शरीर जल रहा हो और कल्पना करो कि 'मैं बर्फमें बैठा हुआ हूँ।' जब वह आग शरीरको

जलाते-जलाते तुम्हारी कल्पनावाली कक्षामें पहुँचेगी, तब वह आग कल्पनाको भी जला डालेगी। तुम चाहे कितनी कल्पना करो कि मैं बर्फमें बैठा हूँ, वह आग तुम्हारे शरीरको ही नहीं अपितु तुम्हारी कल्पनाको भी जला देगी। यह केवल बाहरकी वस्तुओंको देखनेसे हमको दुःख होता है–ऐसा समझकर अथवा बाहरकी वस्तुओंमें फँसनेसे हमको दुःखी होना पड़ता है–ऐसा समझकर, यदि बाहरकी चीजोंने भीतर धकेल दिया और तुम भीतर जाकर बैठ गये, तो ज्यादा देरतक बैठ नहीं सकोगे। हाँ! उसमें दर्शन चाहिए।

अच्छा! देखो! जब कोई कर्ज वसूल करनेवाला घरमें आता है, तब जाकर कमरेमें बैठ जाते हैं और बाहर वालोंसे कह देते हैं कि 'बता दो कि घरमें नहीं हैं।' यह तो आप लोगोंने सुना ही होगा। अच्छा! आप कबतक कमरेमें बैठते हैं? जबतक वह कर्ज वसूल करनेवाला चला नहीं जाता है। जब मालूम हो जाता है–खबर मिल जाती है कि 'भाई! वह कर्ज वसूल करने वाला चला गया,' तब आप कमरेमें-से निकल कर फिर बाहर आ जाते हैं। जो हम कर्ज लेने वालेके डरसे कमरेमें बन्द होते हैं। वह ज्यादा देरतक बन्द नहीं होंगे। जब वह कर्ज देनेवाला चला जायेगा, तब हम भी बाहर निकल जायेंगे। केवल बाहरके द्वारा जो कर्म-संस्कार लिये जाते हैं, जो वस्तुओंका सुख लिया जाता है, जो व्यक्तियोंसे सुख लिया जाता है, जो अभ्याससे सुख लिया जाता है, जो प्राणायाम आदिके द्वारा स्थिति बनाकर सुख लिया जाता है, वह हमेशा टिक नहीं सकता है। जिस सुखको बाहरसे भीतर डाला जाता है, अभ्यास कर-करके जिसका संस्कार बनाया जाता है–आदत डाली जाती है, वह बाहरसे भीतर लायी हुई चीज हमेशा टिक नहीं सकती है। इसलिए, जीवनमें आत्मदर्शन-तत्त्वदर्शन-परमार्थदर्शन-भगवद्दर्शन होना चाहिए।

**परार्थेष्विव पूर्णात्मा। न केवलं बुद्धिसंतापादेव शीतलः।**

भाई! बाहर जानेसे बड़ा दुःख होता है; इसलिए, अपने कमरेमें बैठे रहो। बाहर जानेसे धूप लगती है; इसलिए, अपने कमरेमें बैठे रहो। यदि बाहरके डरसे भीतर बैठोगे, तो बाहरका डर थोड़ा कम होनेपर फिर भीतरसे बाहर निकल जाओगे। अगर अपने स्वरूपको जानकर अपने स्वरूपमें

बैठोगे, तो पूर्णात्मा होवोगे। हमारी स्थिति बाह्य प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिह्य, सम्भव, चेष्टा द्वारा उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। सच्चाईका जो विज्ञान है, सच्चाईका जो दर्शन है, उसके आधारपर हमारी स्थिति होनी चाहिए।

एक लड़केको लोगोंने बता दिया कि बाहर जो पीपलका पेड़ है न, उसपर भूत रहता है। उसके नीचे कभी मत जाना। आहा! अब महाराज! वह बेचारा कुछ दिनोंतक तो पीपलके पेड़ेके नीचे नहीं गया। एक दिन वह आँगनमें बैठा था। उसको इतनी जोरसे पिशाब लगी कि वह झटसे आँगनमें-से निकलकर बाहर पीपलके पेड़के नीचे जाकर बैठ गया। उसी समय कोई चिड़िया उड़ी। पीपलका पत्ता खड़-खड़ाया। अरे! वह ऐसा डरा-ऐसा डरा कि तुरन्त बुखार हो गया। महाराज! यह भूत-प्रेतकी कहानियाँ सुनाकर बच्चोंके चित्तमें जो एक डर पैदा कर देते हैं, वह उनको बहुत दुःख देता है। बाहरी वस्तुओंमें प्रियताकी कल्पना कराकर या दुष्टताकी कल्पना कराकर हम मनुष्यको जो रोकते हैं, वह हमारी रुकावट कभी-कभी बड़ी धोखेबाज निकलती है। उससे हम बहुत दुःखी हो जाते हैं। जीवनमें दर्शनकी आवश्यकता है।

असलमें, हमें अपने भीतरका-अपने अन्तरंगका-अपने सहज स्वभावका दर्शन होना चाहिए। यदि धूपमें रहनेसे पानी गर्म हो गया, तो क्या हुआ? यह पानी भीतर रखनेपर, छायामें रखनेपर फिर ठंडा हो जायेगा; क्योंकि, जलका स्वभाव शीतलता है। आत्माका स्वभाव चेतनता है। दूसरेको प्रकाशित करना—दूसरेके ऊपर रोशनी बरसाना—आत्माका स्वभाव है। अर्थावभासकत्व चेतनका लक्षण है। सबसे प्यारा अपना आपा होता है। हम अपनी प्रियताके लिए सबका परित्याग कर सकते हैं। आत्माकी कभी मृत्यु नहीं होती है। हम तो जन्मदिवस मनाते हैं। बड़ी खुशीकी बात है। जन्म हो। लेकिन; पण्डित लोग कहते हैं कि कहीं-कभी अपनेमें जन्म-मरणका आरोप ही मत करो। कहीं माने किसी जगहमें। कभी माने किसी दिन। भूगोलकी किसी स्थितिमें जन्म होना, कहीं जन्म होना है। खगोलकी किसी स्थितिमें जन्म होना, कभी जन्म होना है। हड्डी-मांस-चामके शरीरसे जन्म होना, किसीसे जन्म होना है। यह तो अपने

स्वरूपका स्पर्श ही नहीं करता है। जो अपना जन्म मानता है, उसका मरण होता है। जो अपनेको अजन्मा मानता है। उसका मरण नहीं होता है। यह मानना नहीं है। यह जानना है। इसमें प्रमाकी उत्पत्ति होनी चाहिए। **पूर्णात्मा शीतलः।**

हमारे ही दिलकी यह सब झाँकियाँ हैं। हमारे दिलका सब सिनेमा है। हमारे दिलमें वृत्तियाँ नाच रही हैं। जैसे नटियाँ मञ्चपर नाचती है, वैसे वृत्तियाँ हमारे दिलके मञ्चपर नाचती हैं। पहले हमने थियेटर देखा है। पहले हमने उदयशंकरका नृत्य देखा है। जैसे रंगमंचपर उदयशंकर नर्तकियोंके साथ नृत्य करते हैं, वैसे हमारे हृदयके रंगमंचपर यह वृत्तियोंकी नर्तकियाँ आकरके नाच करती रहती हैं। कभी क्रोधमुद्रामें आती हैं। कभी ऐसे-ऐसे मना करती हुई आती हैं भला! कभी ऐसे-ऐसे चले जाओ करती हुई आती हैं। कभी ऐसे-ऐसे बुलाती हुई आती हैं। महाराज! ये वृत्तियाँ-नर्तकियाँ हृदयके रंगमंचपर नाच करती रहती हैं और नारायण! पूर्णात्मा!

**किम् नाम पूर्णत्वं?** पूर्णता क्या है? अद्वैतसिद्धिकारने कहा—**परिच्छेदाभावः पूर्णत्वं।** किसी प्रकारके परिच्छेदका न होना ही पूर्णता है। परिच्छेद माने कटना-पिटना। टुकड़ा होनेका नाम परिच्छेद है हो! एक होता है—भेदन। एक होता है—छेदन। जब हथौड़ेसे किसी चीजको फोड़ देते हैं या बरमासे छेद कर देते हैं, तब उसका नाम होता है—छेदन। जब तलवारसे किसी चीजको काट देते हैं, तब उसका नाम होता है—भेदन। किसी चीजमें छेद होना-किसी चीजका टूट-फूट जाना—इसका नाम होता है—छेदन-भेदन। अपने स्वरूपमें ऐसी कोई चीज नहीं है, जो हमको तलवारकी तरह काटकर दो टुकड़े कर सके। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ हम दो टुकड़े होकर बिखर सकें। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जिसमें हम कट सकें। ऐसा कोई समय नहीं है, जिसमें हम कट सकें। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिससे हम कट सकें। परिच्छेद अर्थात् घिर जाना। चारों ओरसे कटकर एक टुकड़ेके रूपमें बन जाना। इसीको बोलते हैं—परिच्छिन्नता। वस्तुकृत परिच्छेद-काल-कृत परिच्छेद-देशकृत परिच्छेद। यह तो हमारा स्पर्श करते ही नहीं। बोले—'अरे! हमको तो मालूम पड़ता है।' बोले—'अपने स्वरूपके

अज्ञानसे मालूम पड़ता है।' बोले–'अपना स्वरूप क्या है?' बोले–'**परिच्छेदात्यन्ताभावोपलक्षित** अपना स्वरूप है।'

देखो! अगर हम पण्डिताईकी भाषामें बोलना शुरू कर दें, तो आप दो मिनटमें बोर हो जाओगे भला! जहाँ संस्कृतके पण्डितोंमें बोलना पड़ता है, वहाँ खण्डनखण्डखाद्यकी भाषा बोलते हैं। वह समझें कि इन्होंने पढ़ा है। अद्वैतसिद्धिकी भाषा बोलते हैं। वह भी समझें कि इन्होंने पढ़ा है। चित्सुखीकी भाषा बोलते हैं, जिससे वे यह समझें कि इन्होंने पढ़ा है। है न? हाँ! स्वप्रकाशता क्या होती है? चित्सुखीकारने प्रारम्भमें ही दस विकल्प उठा दिया। भेदधिक्कार पढ़ो। सम्पूर्ण वेदोंका तात्पर्य केवल अभेदमें ही होता है। ऐसा बढ़िया प्रतिपादन है। द्वैत जो है, वह वेदका प्रतिपाद्य हो ही नहीं सकता है। ये उसमें ऐसी-ऐसी बढ़िया-बढ़िया युक्तियाँ दी हैं। जो आँखसे दीख रहा है, उसके प्रतिपादनके लिए वेदकी क्या जरूरत रही? वह तो अनुवादक हो गया। **प्रमाणानन्तर-सिद्धत्वात्** । **मिथ्यात्वात्** । हाँ! यह तो सब बाधित होता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि अद्वैत प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है। इन्द्रियाँ स्वयं पाँच हैं, तो पाँच तरहके प्रत्यक्ष होंगे। उनसे अद्वैत कैसे सिद्ध होगा? उन पाँचोंके संस्कार भीतर जायेंगे, तो उन्हींसे अनुमान होगा। अनुमानसे अद्वैत कैसे सिद्ध होगा? उपमान होगा, तो दूसरा होगा। उससे अद्वैत कैसे सिद्ध होगा? ऐतिह्य होगा, तो बीती हुई बात होगी। उससे अद्वैत कैसे सिद्ध होगा? इसमें घर नहीं मिटा। इसमें परिवार नहीं मिटा। इसमें दुनियाका दर्शन होना नहीं मिटा। यह झलकियाँ नहीं मिटीं। यह झाँकियाँ नहीं मिटीं। यह थियेटर नहीं मिटा। यह सिनेमा घर नहीं मिटा। हैं? अपने स्वरूपमें ही ये सारी चीजें फुरफुरा रही हैं जैसे बालूमें तरह-तरहकी तरंगें दिखायी पड़ती हैं; जैसे पानीमें छींटें उड़ते हैं; जैसे आगमें चिन्गारियाँ होती हैं; जैसे सबके शरीरमें अलग-अलग साँस चलती है; जैसे अन्तःकरणमें वृत्तियोंका आवागमन होता है; इसी प्रकार, अपने पूर्ण स्वरूपमें यह समग्र सृष्टि प्रतीत हो रही है। ईश्वर कल्पना सहित-जीव कल्पना सहित-जगत् कल्पना सहित समग्र द्वैत कल्पनायें अपने अन्दर उठती हैं और गिरती हैं। यह महात्मा दूसरेके डरसे भीतर घरमें नहीं बैठा है—दूसरेको छोड़कर भीतर

नहीं बैठा है; बल्कि, अपने स्वरूपकी अद्वितीयताको जानकर स्वच्छन्द विचरण कर रहा है। अपने स्वरूपके ज्ञानसे यह पूर्णात्मा हुआ है। इसलिए इसकी शीतलता आग बुझाकर नहीं है-आग हटा कर नहीं है। इसकी शीतलता स्वरूप-बोधसे है। पूर्णात्मा शीतलः।

अपने स्वरूपमें जो आग है, वह आग नहीं है। वह अपने अखण्ड स्वरूपकी एक चमक है। वह ज्ञानकी कणा है–प्रतीति है। वह एक मालूम पड़ना है। वह मालूम पड़ना है–एक। जलानेवाला-जलनेवाला और जलना भी। वह सन्मात्रमें विवर्त है। वह चिन्मात्रमें प्रतीति है। वह आनन्दमात्रसे उल्लास है। संस्कृतमें ये तीन शब्द हैं। आनन्दोल्लास माने थिरकना-लास्य करना। यह सृष्टि क्या है? यह आनन्दकी थिरकन है। यह आनन्दका डांस है भला! यह आनन्दका उल्लास है। यह सृष्टि क्या है? ज्ञानकी चमक। ज्ञानकी धारा। ज्ञानकी धारा बिना बदले बहती है। इसलिए, यह ज्ञानकी प्रतीति है। ज्ञान अपना स्वरूप है। सन्मात्र ज्यों-का-त्यों रहता है और आकृतियाँ दिखती हैं। भिन्न-भिन्न दीखनेवाली आकृतियोंमें सन्मात्र एक है। भिन्न-भिन्न प्रतीतियोंमें अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्मा एक है। आनन्दके भिन्न-भिन्न रूपोंमें भी–नृत्यकी भिन्न-भिन्न भाव-भंगिमामें भी आनन्द एक है। यह सृष्टि क्या है? आनन्द उल्लास। चेतनकी प्रतीति। सन्मात्रमें विवर्त। यह चिन्मात्र आत्मा परमात्मासे बिलकुल एक है। जीवन्मुक्तकी शीतलता बाह्यकारणसे नहीं आयी हुई। जीवन्मुक्तकी शीतलता तो उसके स्वरूपकी निरावरणता ही है। इसलिए, यह शीतलता समाधि और व्यवहारमें सामान्य लक्षण है। समाधि लगानेमें भी उसको कोई तनाव नहीं है और व्यवहार करनेमें भी उसको कोई तनाव नहीं है; क्योंकि, वह जानता है कि अपने स्वरूपके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

नारायण! जीवन्मुक्ति विवेकका सातवाँ श्लोक आपको सुनाया। जीवन्मुक्तके लक्षणोंमें जो सातवाँ श्लोक था, उसका अर्थ आपको सुनाया। यह सात श्लोक ही हैं। गीतामें स्थितप्रज्ञका–भक्तका–गुणातीतका-ब्रह्मवेत्ताका-ब्रह्मविद् वरिष्ठ लक्षण प्राप्त होता है। **ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः**। उपनिषदोंमें जीवन्मुक्त महापुरुषका वर्णन आता है। आप कोई एक कल्पना बना लेंगे कि जीवन्मुक्तकी आँख नहीं खुलती है। उसकी

पीठकी रीढ़ टेढ़ी नहीं होती है। उसके मुँहमें-से आवाज नहीं निकलती है। जीवन्मुक्त गूँगा हो जाता है। जीवन्मुक्त बहरा हो जाता है। जीवन्मुक्त अन्धा हो जाता है। बोले—यह तो बोलता हुआ भी गूँगा होता है। सुनता हुआ भी बहरा होता है। देखता हुआ भी अन्धा हो जाता है। जीवन्मुक्त मरनेपर भी अमर होता है। वह जन्मनेपर भी अजन्मा रहता है। वह एक व्यक्तिके रूपमें होने पर भी अव्यक्त ब्रह्मसे एक होता है। यही जीवन्मुक्तकी शीतलता है। कुछ आवे-कुछ जाये। कुछ होवे-कुछ न होवे। वह ज्यों-का-त्यों है। वह एक पन्थका आचार्य नहीं है। वह एक पन्थका प्रवर्तक नहीं है। वह छत्रचँवरके नीचे रहनेपर बड़ा नहीं होता। मठाधीश होनेपर उसको पंख नहीं लगते। मण्डलेश्वर होनेपर उसकी महिमा नहीं बढ़ती। विद्वान् होनेसे उसकी जीवन्मुक्ति चमकती नहीं है। हाँ! वह विद्वान् भी हो सकता है और वह अनपढ़ भी हो सकता है। वह गरीबीसे भी रह सकता है और वह मठाधीश भी हो सकता है। वह आचार्य भी हो सकता है और अवधूत भी हो सकता है। वह नंगा भी हो सकता है और वह राजा-महाराजाकी पोशाकमें भी हो सकता है। वह युद्धका संचालक भी हो सकता है और वह शान्तिका नेता भी हो सकता है। परन्तु, वह सब बन्धनोंसे-सब परिच्छेदोंसे मुक्त होता है। उसका परिच्छेदक संसारमें और कुछ भी नहीं है। अच्छा, देखो! अब इस समय यह जीवन्मुक्ति विवेकका प्रकरण हुआ। अब कलसे प्रवचन नहीं है। ओऽऽऽम्!

ओऽऽऽऽम्! शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

●

# जीवन्मुक्ति-विवेक

गीतामें स्थितप्रज्ञका-भक्तका-गुणातीतका-ब्रह्मवेत्ताका-ब्रह्मविद् वरिष्ठ लक्षण प्राप्त होता है-ब्रह्मविद् ब्रह्मणे स्थितः। उपनिषदोंमें जीवन्मुक्त महापुरुषका वर्णन आता है। आप कोई एक कल्पना बना लेंगे कि जीवन्मुक्तकी आँख नहीं खुलती है। उसकी पीठकी रीढ़ टेढ़ी नहीं होती है। उसके मुँहमें-से आवाज नहीं निकलती है। जीवन्मुक्त गूँगा हो जाता है। जीवन्मुक्त बहरा हो जाता है। जीवन्मुक्त अन्धा हो जाता है। बोले-यह तो बोलता हुआ भी गूँगा होता है। सुनता हुआ भी बहरा होता है। देखता हुआ भी अन्धा हो जाता है। जीवन्मुक्त मरनेपर भी अमर होता है। वह जन्मनेपर भी अजन्मा रहता है। वह एक व्यक्तिके रूपमें होने पर भी अव्यक्त ब्रह्मसे एक होता है। यही जीवन्मुक्तकी शीतलता है।